

3.1 बैंकिंग की कहानी पूरे विश्व में कमोबेश रूप से एक जैसी है। इसका विकास साहूकारों के द्वारा जमाराशियां स्वीकार करके उसके बदले में जमा रसीदें जारी करने से होता है। केंद्रीय बैंकिंग जाँच समिति (1931) के अनुसार भारत में राशि उधार देने संबंधी कार्य की जड़ें वैदिक काल अर्थात् 2000 से 1400 ईसा पूर्व में पाई जा सकती हैं। भारत में प्रोफेशनल बैंकिंग का अस्तित्व 500 ईसा पूर्व पाया गया है। 400 ईसा पूर्व के पहले *कौटिल्य अर्थशास्त्र* में लेनदारों, उधारदाताओं और उधार की दरों के बारे में उल्लेख पाया जाता है। बैंकिंग का क्षेत्र बहुत ही व्यापक था और यह अर्थव्यवस्था में व्यापार, वाणिज्य, कृषि और व्यक्तियों की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करता था। श्री डब्ल्यू.ई. प्रेस्टन, भारतीय मुद्रा और वित्त पर 1926 में स्थापित रॉयल कमीशन के सदस्य, ने टिप्पणी की है कि “.... इसे स्वीकार किया जाए कि इंग्लैंड को बैंकिंग विज्ञान की जानकारी होने से कई शताब्दी पूर्व भारत की तत्कालीन आवश्यकताओं के पूर्णतया अनुरूप बैंकिंग प्रणाली भारत में प्रचलन में थी।”¹ देशभर में भारतीय बैंकिंग गृहों का विस्तृत नेटवर्क फैला हुआ था जो वाणिज्यिक रूप से महत्वपूर्ण शहरों/कस्बों को एक-दूसरे से जोड़ता था। आपसी व्यवहार में वे अंतर्देशीय विनिमय-पत्रों अथवा हुंडियों का प्रयोग करते थे जो भारतीय बैंकों और उनके क्षेत्र के बाहर के संपर्कों के बीच लेनदेन में प्रमुख भूमिका अदा करते थे।² भारत में प्रचलित तत्कालीन बैंकिंग प्रथाएं यूरोप में प्रचलित प्रथाओं से बिल्कुल अलग थीं। हुंडियों का नकारा जाना अपवाद ही था। अधिकतर बैंकिंग का कार्य आपसी विश्वास, भरोसा और बिना किसी प्रतिभूति और सुविधा के ही किया जाता था जबकि इनकी मौजूदगी ब्रिटिश बैंकों के लिए अनिवार्य समझी जाती थी। नॉर्थकोट कुक की यह टिप्पणी कि “... यह सच्चाई कि इस देश में बैंकिंग के जनक यूरोपियन नहीं थे, हमें किसी विस्मय में नहीं डालता।”³ बैंकिंग विनियमन का भी लंबा इतिहास है जिसका विकास भारत में बैंकिंग के साथ-साथ हुआ है। वस्तुतः गौरवग्रंथ ‘अर्थशास्त्र’ में भी बैंकों के परिसमापन के बारे में मानदंडों का उल्लेख मिलता है। यदि कोई दिवालिया हो जाता था तो राज्य के प्रति उसकी देनदारी को अन्य लेनदारों की तुलना में प्राथमिकता मिलती थी (लीलाधर, 2007)।

3.2 स्वतंत्रतापूर्व की अवधि में मुख्य रूप से निजी बैंकों का ही अस्तित्व था जिनका गठन संयुक्त उद्यम कंपनियों के रूप में हुआ करता

था। अधिकतर बैंक छोटे हुआ करते थे और इनमें घनिष्ठ रूप से जुड़े विभिन्न लोगों की निजी शेयरधारिता हुआ करती थी। आम तौर पर वे स्थानीय स्तर पर कार्य करते थे और इनमें से अधिकतर विफल हो गए। ये सभी रिजर्व बैंक, जिसकी स्थापना केंद्रीय बैंक के रूप में 1935 में हुई थी, दायरे में आ गए। परंतु विनियमन और पर्यवेक्षण की प्रक्रिया भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 और कंपनी अधिनियम, 1913 के प्रावधानों के द्वारा सीमित थी। देशी बैंकर और साहूकार इस प्रणाली के संस्थागत भाग से आम तौर पर अलग-थलग ही रहे। सूदखोरी संबंधी नेटवर्क अभी भी व्यापक था और शोषण में लगा था। ऋण प्राप्ति के लिए एकमात्र उम्मीद सहकारी ऋण थे परंतु केवल कुछ ही क्षेत्रों में यह अभियान सफल रहा था।

3.3 स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में (1947 से 1967) अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में कई चुनौतियां सामने आईं जो ग्रामीण क्षेत्र में बाजार के विफल रहने का क्लासिक मामला सामने रखता है जिसमें सूचना की असममिति ने बैंकों का प्रसार सीमित कर दिया था। इसके अलावा पर्याप्त मात्रा में आस्ति उपलब्ध न होने के कारण भी बैंकों तक लोगों की पहुँच होने में कठिनाई आई। इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया के उपक्रम का अंतरण भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई) को किए जाने और बाद में कम बैंकिंग सुविधा वाले और बैंक रहित केंद्रों में इसके बड़े पैमाने पर हुए विस्तार के साथ ही ऐसे क्षेत्रों में संस्थागत ऋणों की उपलब्धता हुई जो अभी तक बैंक रहित थे। ऋण गारंटी और जमाराशि बीमा जैसे सक्रिय उपाय किए जाने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण और बचत की आदतें बढ़ीं। तथापि संबद्ध उधारी की कुछ समस्याएं थीं क्योंकि कई बैंक बिजनेस घरानों के नियंत्रण में थे।

3.4 1967 से 1991 की अवधि में प्रमुख घटनाएं अर्थात् 1967 में बैंकों को सामाजिक नियंत्रण में लाया गया तथा 1969 में 14 बैंकों का राष्ट्रीकरण किया गया और 1980 में छह और बैंकों का राष्ट्रीकरण किया गया। बैंकों के राष्ट्रीकरण बैंकिंग प्रणाली के सीमित संसाधनों का उपयोग योजनाबद्ध विकास के लिए करने का प्रयास था। बैंकों के लिए छोटे-छोटे खाते बड़ी तादाद में रखना लाभदायक कार्य नहीं था जिसके कारण ग्रामीण क्षेत्रों में उधार बांटने का उनका कार्य सीमित था। बैंकों के असमान वितरण की समस्या और कतिपय प्राथमिकता क्षेत्रों को ऋण उपलब्ध कराने की

¹ भारतीय केंद्रीय बैंकिंग जाँच समिति (1931), अध्याय II, पृष्ठ 11 में यथा उद्धृत।

² ऋण लिखतों का सबसे पुराना रूप हुंडी है जो 12वीं शताब्दी में प्रयोग किया जाता था। कुछ देशी बैंकों द्वारा ‘खाता पट्टा’ प्रणाली के अंतर्गत जमाराशियां स्वीकार की जाती थीं। तथापि अधिकतर देशी बैंक, यथा-मुल्तानी और मारवाडी, जमाराशियां स्वीकार नहीं करते थे क्योंकि वे अपनी स्वयं की निधियों पर निर्भर करते थे। देखें, बागची (1987)।

³ नॉर्थकोट कुक, ‘राइस एण्ड प्रोग्रेस ऑफ बैंकिंग इन इंडिया’ (1863) - टंडन द्वारा उद्धृत (1988)।

आवश्यकता स्पष्ट तौर पर न बताए जाने की समस्या का अंत सबसे पहले बैंकों को सामाजिक नियंत्रण में लाकर और बाद में 1969 तथा 1980 में उनका राष्ट्रीकरण करके किया जाना था। अग्रणी बैंक योजना ने बैंक शाखाओं का और विस्तार करने के लिए नक्शा तैयार किया। 1969 से भारत में बैंकिंग के विकास में बैंकों के राष्ट्रीकरण का सर्वाधिक योगदान रहा। इस अवधि में तीव्र गति से शाखाओं में विस्तार हुआ जिसके कारण पूरे देश में एक छोर से दूसरे छोर तक मुद्रा के प्रेषण के लिए सरणियों की उपलब्धता में मदद मिली। असंगठित ऋण की हिस्सेदारी में भारी-भरकम कमी आई और अर्थव्यवस्था संतुलन जाल के न्यून स्तर से उभरती प्रतीत हुई। तथापि, जिन अनुबंधों ने इसे सफल बनाया और संस्थागत ऋण का प्रसार करने में मदद की तथा वित्तीय प्रणाली का पोषण किया, उनके चलते ही प्रक्रिया में गड़बड़ी भी आई। नियंत्रित ब्याज दरों और निदेशित ऋण देने के भार ने बैंकिंग क्षेत्र को महत्वपूर्ण रूप से निरूद्ध किया। वाणिज्य बैंकों को अत्यल्प परिचालनात्मक लचीलापन ही उपलब्ध था। लाभप्रदता की बात पृष्ठभूमि में चली गई। बैंकों को खराब अभिशासन से भी नुकसान उठाना पड़ा। वित्तीय क्षेत्र बन चुका था अर्थव्यवस्था की 'कमजोर कड़ी' (रंगराजन, 1998)। भारतीय अर्थव्यवस्था का सौभाग्य था कि इन मुद्दों का हल शीघ्र निकाल लिया गया।

3.5 1990 के दशक की प्रारंभिक अवधि बैंकिंग क्षेत्र में आमूल परिवर्तनों का गवाह रही है जो वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के परिणामस्वरूप था जिन्हें 1991 में संरचनात्मक सुधारों के हिस्से के रूप में लागू किया गया था। वित्तीय क्षेत्र में सुधार प्रक्रिया प्रारंभ करने का मूल उद्देश्य था बैंकिंग प्रणाली को सुदृढ़ और लचीला बनाना। विनियामक और पर्यवेक्षी मानदंडों को सशक्त करने के क्षेत्र में प्राप्त की गई सफलता के कारण भागीदारों में उच्च जवाबदेही और बाजार अनुशासन विकसित हुआ। विभिन्न क्षेत्रों जैसे-विवेकपूर्ण मानदंड, जोखिम प्रबंध, पर्यवेक्षण, कारपोरेट गवर्नेंस और पारदर्शिता तथा प्रकटन में क्रमिक रूप से भारतीय स्थितियों के अनुरूप अंतरराष्ट्रीय बेंचमार्क प्राप्त करने की दिशा में रिजर्व बैंक निरंतर प्रयासरत रहा है। सुधार की प्रक्रिया ने बैंकिंग क्षेत्र के प्रबंध को उस स्तर तक पहुँचाने में सहायता की जहाँ रिजर्व बैंक वाणिज्य बैंकों का व्यष्टि प्रबंध करना बंद कर चुका था और समष्टि लक्ष्यों पर अपना अधिक से अधिक ध्यान केंद्रित कर रहा था। विनियमों में ढील और उदारीकरण के साथ-साथ बैंकों की बढ़ी हुई जवाबदेही पर ध्यान केन्द्रित किए जाने के फलस्वरूप बैंकिंग क्षेत्र लचीला और कई प्रकार की नई वैश्विक चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हो सका।

3.6 उपर्युक्त की पृष्ठभूमि में यह अध्याय भारत में बैंकिंग क्षेत्र के इतिहास की खोज करता है। यद्यपि केंद्र बिंदु में स्वतंत्रता के बाद का इतिहास है तथापि इसका प्रारंभ बैंकिंग के प्रारंभिक काल की तस्वीर मोटे रूप में रखते हुए होता है। यह अध्याय छह खंडों में बंटा हुआ है। खंड II में स्वतंत्रतापूर्व अवधि के इतिहास की कथा कही गई है। खंड III में 1947 से 1967 के बीच बैंकिंग क्षेत्र में हुई प्रमुख गतिविधियों का चित्रण किया गया है। खंड IV में 1967 से 1991 की अवधि में हुई प्रमुख गतिविधियों का विस्तार से उल्लेख किया गया है। 1991 और इसके आगे की अवधि में हुई गतिविधियों का उल्लेख खंड V में किया गया है। खंड VI में चर्चा की मुख्य बिंदुओं का सार दिया गया है।

II. भारत में बैंकिंग का प्रारंभिक चरण - 1947 तक

भारत में बैंकिंग का प्रारंभ

3.7 स्वतंत्रता तक की अवधि में भारतीय बैंकिंग प्रणाली की नींव स्थापित हुई। संयुक्त स्टॉक प्रकार की वाणिज्यिक बैंकिंग, जो अन्यत्र विश्व में व्याप्त था, की शुरुआत अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुई। संयुक्त स्टॉक बैंकिंग की पश्चिमी किस्म भारत में कलकत्ता और बॉम्बे (अब कोलकाता और मुंबई) की इंग्लिश एजेंसी गृहों द्वारा लायी गई। संयुक्त स्टॉक किस्म का पहला बैंक, बैंक ऑफ बॉम्बे था, जिसकी स्थापना 1720 में बॉम्बे में हुई⁴। इसके पश्चात कलकत्ता में एजेंसी हाउस के द्वारा 1770 में बैंक ऑफ हिंदुस्तान की स्थापना हुई⁵। यह एजेंसी हाउस तथा उससे बना बैंक 1832 में बंद हो गया। गवर्नर वॉरेन हस्टिंग (बाद में गवर्नर जनरल) के प्रस्ताव के बाद जनरल बैंक ऑफ बंगाल एण्ड बिहार, जो 1773 में अस्तित्व में आया, की स्थापना हुई परंतु यह थोड़े समय तक ही जीवित रह सका⁶। ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापार और प्रशासन में वृद्धि होने के बाद सारा व्यापार कलकत्ता में केंद्रित हो गया था। इसके साथ आधुनिक बैंकिंग सेवाएं बढ़ीं। विदेश व्यापार के वित्तपोषण और ब्रिटिश सैन्य कार्मिकों और सिविल सेवा-कार्मियों द्वारा अर्थप्रेषण किए जाने के लिए एक समान करेंसी की आवश्यकता हुई। पहला 'प्रेसिडेंसी बैंक' 2 जून 1806 को 50 लाख रुपए की पूंजी के साथ कलकत्ता में बैंक ऑफ बंगाल के नाम से स्थापित हुआ था। सरकार ने इसकी शेयर पूंजी में 20 प्रतिशत का अभिदान किया और मताधिकार सहित निदेशकों की नियुक्ति का विशेषाधिकार अपने हाथ में रखा। सरकार को निभाव देने के लिए राजकोष बिलों की भुनाई करना बैंक का काम था। बैंक को नोट जारी करने का अधिकार 1823 में दिया गया। 1840 में दूसरे प्रेसिडेंसी बैंक 'बैंक ऑफ बाम्बे', की स्थापना 52 लाख रुपए की पूंजी के साथ हुई और तीसरे प्रेसिडेंसी बैंक 'बैंक ऑफ मद्रास' की स्थापना 30 लाख रुपए की पूंजी के साथ

⁴ भारतीय रिजर्व बैंक (2006)

⁵ भारतीय केन्द्रीय बैंकिंग जांच समिति (1931)

⁶ भारतीय रिजर्व बैंक (इतिहास), खंड I, पृष्ठ 6

जुलाई 1843 में हुई। इन बैंकों को प्रेसिडेंसी बैंक के नाम से जाना जाता था क्योंकि इनकी स्थापना 3 प्रेसिडेंसियों में, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए देश में प्रशासनिक अधिकार-क्षेत्र की इकाइयां थीं, हुई थी। प्रेसिडेंसी बैंक रॉयल चार्टर के द्वारा शासित थे। प्रेसिडेंसी बैंक पेपर करेंसी अधिनियम, 1861 का बनने तक करेंसी नोटों का निर्गम करते रहे। इस अधिनियम के आने के साथ प्रेसिडेंसी बैंकों के द्वारा करेंसी नोट निर्गम का अधिकार समाप्त हो गया और उनका यह कार्य सरकार को सौंप दिया गया।

3.8 कंपनी अधिनियम, 1850 में अधिनियमित हुआ, संभवतः बैंकों के लिए पहला औपचारिक विनियमन था। इस अधिनियम में, जो 1844 में ग्रेट ब्रिटेन में ठीक इसी प्रकार के अधिनियम पर आधारित था, बैंकिंग और बीमा कंपनियों के लिए 1860 तक असीमित देयता की शर्तें लगायी गईं जैसाकि शेष विश्व में भी प्रचलित था। 1860 में ब्रिटेन में सीमित देयता के सिद्धांत का अनुकरण करते हुए भारतीय कानून में भी इसकी अनुमति दी गई। सीमित देयता के कारण इस अवधि में बैंकिंग कंपनियों की संख्या में वृद्धि हुई। बैंक ऑफ बॉम्बे के ध्वस्त होने के बाद जनवरी 1868 में न्यू बैंक ऑफ बॉम्बे की स्थापना हुई।

3.9 प्रेसिडेंसी बैंक अधिनियम, जो 1876 में अस्तित्व में आया, ने तीनों प्रेसिडेंसी बैंकों को एक समान कानून के अंतर्गत ले लिया और उनके कारोबार पर कुछ प्रतिबंध लगाए। इसके तहत ये बैंक अन्य बातों के साथ-साथ विदेशी बिलों का जोखिम भरा कारोबार और 6 माह से अधिक समय के लिए उधार देने हेतु विदेश से उधार लेने का कारोबार नहीं कर सकते थे। 1876 के अधिनियम XI के अनुसरण में भारत सरकार ने चार्टर को सख्ती से लागू करने और इन बैंकों की बहियों का आवधिक निरीक्षण करने का निर्णय किया। तथापि सरकार के स्वाम्य संबंध को समाप्त कर दिया गया, परंतु इन तीनों प्रेसिडेंसी शहरों में लोक ऋण कार्यालयों का प्रभार इन बैंकों के हाथ में ही रहा और सरकार की शेष राशियों के एक

अंश की कस्टडी भी इन्हीं बैंकों के हाथ में रही। इस अधिनियम में कलकत्ता, बॉम्बे और मद्रास में रिजर्व राजकोष निर्मित करने की व्यवस्था भी की गई है जिनमें प्रेसिडेंसी बैंकों के प्रति वचनबद्ध विनिर्दिष्ट न्यूनतम शेष राशि से अधिक राशि सिर्फ उनके मुख्यालयों में जमा की जानी थी। इस प्रकार के रिजर्व राजकोषों से सरकार प्रेसिडेंसी बैंकों को उधार दे सकती थी। इस अधिनियम ने सरकार को इन बैंकों की बहियों के आवधिक निरीक्षण जैसे कुछ कड़े उपाय करने में सक्षम बनाया। बड़े बैंकों को निजी शेयरधारिता कंपनियों के रूप में संगठित किया गया जिसमें अधिकांश शेयरधारक यूरोपियन थे।

3.10 सबसे पहला भारतीय स्वामित्ववाला बैंक था इलाहाबाद बैंक, जिसकी स्थापना इलाहाबाद में 1865 में हुई थी। इसके बाद दूसरा बैंक था पंजाब नेशनल बैंक, जिसकी स्थापना लाहौर में 1895 में हुई थी तथा इसके पश्चात तीसरा बैंक था बैंक ऑफ इंडिया, जिसकी स्थापना 1906 में मुंबई में हुई थी। इन सभी बैंकों की स्थापना निजी स्वामित्व के अंतर्गत हुई थी। 1906 के स्वदेशी आंदोलन ने भारतीय स्वामित्ववाले संयुक्त पूंजी बैंकों को गति प्रदान की तथा 1906 और 1913 के बीच कई अन्य भारतीय वाणिज्य बैंकों यथा सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, बैंक ऑफ बड़ौदा, केनरा बैंक, इंडियन बैंक, और बैंक ऑफ मैसूर की स्थापना की गई। दिसंबर 1913 के अंत तक देश में कुल रिपोर्टिंग वाणिज्यिक बैंकों की संख्या 3 प्रेसिडेंसी बैंकों, 18 श्रेणी 'ए' बैंकों (5 लाख रुपए से अधिक पूंजीवाले बैंक), 23 श्रेणी 'बी' बैंकों (1 लाख रुपए से 5 लाख रुपए तक पूंजीवाले बैंक) तथा 12 विनिमय बैंकों को सम्मिलित करते हुए 56 हो गई थी। विनियम बैंक विदेशी स्वामित्ववाले बैंक होते थे जो मुख्य रूप से विदेशी विनिमय बिलों तथा यात्रा और व्यापार के लिए विदेशी विप्रेषण के रूप में विदेशी मुद्रा का कारोबार करते थे। क्लास 'ए' और 'बी' संयुक्त स्टॉक बैंक थे। तथापि, इस अवधि के दौरान बैंकिंग क्षेत्र में प्रेसिडेंसी बैंकों का आधिपत्य था जैसा कि प्रदत्त पूंजी और जमाराशियों को देखने से पता चलता है (सारणी 3.1)।

सारणी 3.1 : बैंकों की संख्या, पूंजी और जमाराशियां

(राशि लाख रुपये में)

दिसं. अंत.	सूचना देने वाले वाणिज्य बैंकों की संख्या					प्रदत्त पूंजी और आरक्षित निधियां				जमाराशियां				
	प्रेसिडेंसी/ इंपीरियल बैंक @	श्रेणी क*	विनिमय बैंक	श्रेणी ख**	कुल	प्रेसिडेंसी/ इंपीरियल बैंक @	श्रेणी क*	श्रेणी ख**	कुल	प्रेसिडेंसी/ इंपीरियल बैंक @	श्रेणी क*	विनिमय बैंक	श्रेणी ख**	कुल
1870	3	2	3	—	8	362	12	—	374	1,197	14	52	—	1,263
1880	3	3	4	—	10	405	21	—	426	1,140	63	340	—	1,543
1890	3	5	5	—	13	448	51	—	499	1,836	271	754	—	2,861
1900	3	9	8	—	20	560	128	—	688	1,569	808	1,050	—	3,427
1910	3	16	11	—	30	691	376	—	1,067	3,654	2,566	2,479	—	8,699
1913	3	18	12	23	56	748	364	#	1,112	4,236	2,259	3,104	151	9,750
1920	3	25	15	33	76	753	1,093	81	1,927	8,629	7,115	7,481	233	23,458
1930	1	31	18	57	107	1,115	1,190	141	2,446	8,397	6,326	6,811	439	21,973
1934	1	36	17	69	123	1,128	1,267	149	2,544	8,100	7,677	7,140	511	23,428

@ : तीन प्रेसिडेंसी बैंकों को एक बैंक अर्थात् इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया में 1921 में समाहित किया गया।

* : 5 लाख रुपये और अधिक की पूंजी और आरक्षित निधि वाले बैंक।

** : 1 लाख रुपये से अधिक और 5 लाख रुपये तक की पूंजी और आरक्षित निधि वाले बैंक।

: नगण्य

स्रोत : भारत में बैंकों संबंधी सांख्यिकीय सारणियां, विभिन्न अंक।

3.11 स्वदेशी आंदोलन ने भी सहकारी ऋण आंदोलन को गति प्रदान की तथा इसके कारण कई कृषि ऋण समितियों तथा कुछ शहरी सहकारी संस्थाओं की स्थापना हुई। भारत में सहकारी बैंकिंग आंदोलन का विकास 19वीं सदी के अंतिम दशक में खोजा जा सकता है। दिवंगत श्री विट्टल एल. कवठेकर ने उस समय के राजघराने बड़ोदा राज्य में वर्ष 1889 में शहरी सहकारी ऋण आंदोलन की अगुवाई की⁷। पहली पंजीकृत शहरी सहकारी ऋण समिति का नाम कोंजीवरम अर्बन को-ऑपरेटिव बैंक था, जिसकी स्थापना उस समय के मद्रास प्रेसीडेंसी में कोंजीवरम में की गयी थी। जर्मनी तथा इटली में शहरी सहकारी ऋण संस्थाओं की सफलता से इस प्रकार की सहकारी संस्था की स्थापना को प्रेरणा मिली। दूसरा शहरी सहकारी बैंक पीपल्स को-ऑपरेटिव सोसाइटी था जिसकी स्थापना उस समय के राजघराने मैसूर राज्य में बेंगलूर शहर में 1905 में की गयी। संयुक्त पूंजी बैंकों ने मुख्यतः उद्योग और वाणिज्य की जरूरतें पूरी कीं। सीमित साधनों के साथ ग्राहक वर्ग की जरूरतों को स्वीकारने और उन्हें पूरा करने की उनकी असमर्थता ने उधारकर्ताओं को अत्यधिक ऊंची ब्याज दरों पर ऋण लेने के लिए साहूकारों तथा इसी प्रकार की एजेंसियों के पास कारगर तौर पर भेज दिया - यह स्थिति भारत में कृषीतर ऋण सहकारी संस्थाओं के अस्तित्व में आने का प्रमुख कारण थी। इस प्रकार की सहकारिताओं का उद्देश्य अल्प साधन वाले लोगों की बैंकिंग एवं ऋण संबंधी जरूरतें पूरी करना था ताकि उनको शोषण से बचाया जा सके। इस प्रकार, शहरी सहकारी बैंकों का उदय एक समर्थक विधायी वातावरण के प्रति स्थानीय प्रतिसाद का परिणाम था, जो मुख्य तौर पर राज्य द्वारा चालित ग्रामीण सहकारी आंदोलन से भिन्न था (थोरात, 2006)।

3.12 सहकारिताओं की भूमिका को शीघ्र मान्यता देने के बाद, ग्रामीण ऋण प्रदान करने पर निरंतर आधिकारिक ध्यान दिया गया। 1912 में एक नया अधिनियम पारित कर ऋण समितियों और ऐसी संस्थाओं को कानूनी मान्यता दी गयी। भारत में सहकारिताओं के कार्यनिष्पादन की समीक्षा करने तथा उन्हें सुदृढ़ बनाने के उपाय सुझाने के लिए स्थापित मैकलागन समिति ने 1915 में एक रिपोर्ट जारी कर प्रांतीय सहकारी बैंकों की स्थापना की वकालत की। इसने पाया कि 602 शहरी सहकारी ऋण समितियां 13,745 कृषि ऋण समितियों की तुलना में मात्र 4.4 प्रतिशत थीं। समिति ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया कि शहरी सहकारी समितियां समाज के निम्नतर और मध्यम आय वर्ग की जरूरतें पूरी करने के लिए काफी उपयुक्त हैं तथा ऐसी संस्थाएं मध्यम वर्गों के बीच बैंकिंग की आदत डालेंगी।

3.13 वाणिज्य तथा सहकारी बैंकों के अलावा, भारत में कई अन्य प्रकार के बैंक अस्तित्व में थे। ऐसा इसलिए था क्योंकि 'बैंक' नामक शब्द

बहुप्रयोजनीय शब्द था तथा इसका प्रयोग उन संस्थाओं द्वारा किया जाता था जो वस्तुतः बैंक नहीं थे। इनमें ऋण कंपनियां, देशी बैंकर तथा निधियां शामिल थीं, जिनमें से कुछ कंपनी अधिनियम, 1913 के तहत पंजीकृत थीं। यद्यपि, ऐसे बैंकों के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध थी, उनकी संख्या बहुत अधिक मानी जा रही थी। पंजीकृत संस्थाओं की संख्या भी व्यापक थी। कई संदिग्ध कंपनियों ने स्वयं को बैंकों के रूप में पंजीकृत करा लिया तथा उनके आंकड़े बैंकों के विफल होने की सांख्यिकी में शामिल हो गये। फलस्वरूप, विशेष तौर पर 1913 से पहले की अवधि में संगठित बैंकिंग की व्याप्ति की सख्त कानूनी परिभाषा करना कठिन था (चंदावरकर, 2005)।

पहला विश्व युद्ध तथा भारत में बैंकिंग पर इसका प्रभाव

3.14 पहले विश्व युद्ध के वर्ष (1913 से 1918) वस्तुतः विश्व अर्थव्यवस्था के लिए कठिन वर्ष थे। युद्ध के वित्तपोषण तथा युद्ध पर संकेंद्रण के फलस्वरूप जो खतरनाक मुद्रास्फीतिकारी स्थिति विकसित हुई थी, उसने कृषि तथा उपभोक्ताओं की उपेक्षा जैसी अन्य समस्याएं पैदा कर दी। युद्ध के दौरान अधिकांश कार्यकलाप शहरी क्षेत्रों में संकेंद्रित थे। इसने शहरी-ग्रामीण क्षेत्रों के पहले से प्रतिकूल संतुलन को और बिगाड़ दिया। ग्रामीण क्षेत्रों में संगठित बैंकिंग का अभाव था तथा इसकी वजह से किसान लगभग पूरी तरह से साहूकारों पर निर्भर रहते थे जो उनसे अत्यधिक ऊंची दरों पर ब्याज लेते थे। युद्ध की अवधि के दौरान अनेक बैंक विफल हो गये। विफल होने वाले बैंकों ने बैंकिंग कार्यों के साथ ट्रेडिंग संबंधी कार्य जोड़ दिए थे। इससे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि विफल होने वाले कई बैंकों का पूंजी आधार कम था। उदाहरण के लिए, 1913 में विफल हुए बैंकों की औसत पूंजी 2.9 लाख रुपए थी जबकि श्रेणी क तथा ख बैंकों के वर्ग के लिए औसत पूंजी 12 लाख रुपए थी। संकट की शुरुआत पहले विश्व युद्ध के पहले हो गयी थी, परंतु युद्ध के दौरान यह गहरा गया (सारणी 3.2)।

3.15 इनमें से अधिकांश बैंकों ने अनुचित रूप से कम अनुपात में नकद तथा अन्य तरल आस्तियों का रखरखाव किया था। फलस्वरूप, उनके भीतर कठिन समय के दौरान कार्य करने के लिए पर्याप्त लचीलापन नहीं था। विफल होने वाले बैंकों में कुछ बड़े बैंक भी थे, यथा इंडियन स्पेसी बैंक, एक ब्रिटिश बैंक जिसकी प्रदत्त पूंजी 75.6 लाख रुपए थी। यह कम पूंजी के कारण नहीं अपितु चांदी में सट्टेबाजी में भाग लेने के कारण विफल हुआ (टंडन, 1988)।

3.16 पीछे देखें तो, विद्वानों और समितियों की राय में भारत में बैंकों की विफलता का कारण अधिकांशतः व्यक्तिगत अविवेक तथा कुप्रबंधन, निदेशकों एवं प्रबंधकों द्वारा कपटपूर्ण व्यवहार तथा अयोग्यता और अनुभवहीनता था। कई बैंकों ने निदेशकों तथा उनकी कंपनियों को

⁷ आरबीआइ (1999), माधवराव समिति रिपोर्ट, अध्याय II.

सारणी 3.2 : भारत में बैंकों की विफलता - 1913 से 1921

वर्ष (जनवरी - दिसंबर)	विफल हुए बैंकों की संख्या	विफल हुए बैंकों की प्रदत्त पूंजी (रु. '000)	विफल हुए बैंकों की औसत प्रदत्त पूंजी (रु. '000)	श्रेणी क और ख में सूचना देने वाले बैंकों की औसत प्रदत्त पूंजी (रु. '000)
1	2	3	4	5
1913	12	3514	293	1152
1914	42	10902	260	1195
1915	11	451	41	1190
1916	13	423	33	1170
1917	9	2526	281	1315
1918	7	146	21	1433
1919	4	403	101	1585
1920	3	725	242	1675
1921	7	125	18	1901

नोट : श्रेणी क : 5 लाख रुपये और अधिक की पूंजी और आरक्षित निधि वाले बैंक।
श्रेणी ख : 1 लाख रुपये से अधिक और 5 लाख रुपये तक की पूंजी और आरक्षित निधि वाले बैंक।

स्रोत : भारत में बैंकिंग और मौद्रिक सांख्यिकी, भा.रि.बैंक, 1954।

बड़ी मात्रा में बेजमानती अग्रिम स्वीकृत किए थे। पर्याप्त विनियामक सुरक्षोपायों के अभाव ने निदेशकों तथा प्रबंधकों के लिए जमाकर्ताओं / शेयरधारकों को बहकाना आसान बना दिया। इसने भारत में वाणिज्य बैंकिंग के विनियमन के लिए उपयुक्त प्रक्रिया की आवश्यकता को महत्वपूर्ण बताया। इस अवधि के दौरान कई विनिमय बैंक भी मुख्यतः उनके मूल देश/कंपनी संबंधी बाह्य कारणों से विफल हो गए। विनिमय बैंकों के बीच मृत्युदर अत्यधिक ऊंची थी। विनिमय बैंकों के विफल होने के सर्वाधिक सामान्य कारण वैश्विक, विश्व युद्धों तथा मुद्रास्फीति की ऊंचाई और निचाई थे।

3.17 दिलचस्प बात यह है कि सहकारी संस्थाओं ने कुछ अलग तस्वीर पेश की, जिसका प्रमुख कारण यह था कि ये संगठन पारस्परिक विश्वास

पर आधारित थे तथा इनके सदस्य स्वामियों का इन पर कारगर नियंत्रण था। सदस्य जमाकर्ताओं का सहकारी संस्थाओं की कार्यप्रणाली पर उनके लघु आकार के कारण विश्वास था। संयुक्त पूंजी बैंकों से शहरी सहकारी बैंकों की ओर जमाराशियों की उड़ान की प्रवृत्ति शुरू हो गयी थी। इस संकट की जांच करने वाली मैकलागन समिति का कहना था कि “वस्तुतः, इस संकट का विपरीत प्रभाव पड़ा तथा अधिकांश प्रांतों में गैर-सहकारी संस्थाओं से जमाराशियां हटाकर उन्हें सहकारी संस्थाओं में रखने का आंदोलन चल पड़ा। दो प्रकार की प्रतिभूति के बीच अंतर को भलीभांति स्वीकारा गया तथा अंशतः स्थानीय स्वरूप का होने के कारण परंतु मुख्यतः सहकारी आंदोलन के साथ सरकार के जुड़े होने के कारण सहकारी संस्थाओं को तरजीह दी गयी” (थोरात, 2006)।

3.18 1921 में प्रेसीडेंसी बैंकों को इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया नामक एक बैंक में समामेलित कर दिया गया⁸। जयपुर, मैसूर, पटियाला तथा जोधपुर जैसे पुराने राजघरानों से संबंधित कई बैंकों का विलय कर इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया को और पुनर्गठित किया गया। 1935 में रिजर्व बैंक की स्थापना के पहले इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया ने एक केंद्रीय बैंक के रूप में भी कार्य किया। इस प्रकार, इस चरण के दौरान इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया ने तीन तरह के कार्य अर्थात् वाणिज्य बैंकिंग, केंद्रीय बैंकिंग और सरकार के बैंकर के कार्य किए।

3.19 1930 तक, वाणिज्य बैंकों की संख्या बढ़कर 107 हो गयी तथा इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया भारतीय बैंकिंग क्षेत्र में अभी भी प्रधान बैंक बना रहा (देखें सारणी 3.1)। इसके अलावा मार्च 1929 के अंत में, 158 सहकारी बैंक भी थे। 1922-23 से 1928-29 के बीच सहकारी बैंकों की संख्या में तीव्र वृद्धि (दुगुनी से अधिक) हुई (सारणी 3.3)। संख्या में वाणिज्य बैंकों से अधिक होने के बावजूद सहकारी बैंकों की जमाराशियों की मात्रा काफी कम थी।

सारणी 3.3 : सहकारी बैंकों की संख्या

(राशि लाख रुपये में)

वर्ष #	श्रेणी क*			श्रेणी ख**			कुल		
	संख्या	पूंजी और आरक्षित निधियां	जमाराशियां	संख्या	पूंजी और आरक्षित निधियां	जमाराशियां	संख्या	पूंजी और आरक्षित निधियां	जमाराशियां
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)
1922-23	5	44	341	63	131	502	68	175	843
1925-26	10	91	538	104	203	930	114	294	1,468
1928-29	18	163	901	140	277	1,487	158	440	2,388

* : 5 लाख रुपये और अधिक की पूंजी और आरक्षित निधि वाले बैंक।

** : 1 लाख रुपये से अधिक और 5 लाख रुपये तक की पूंजी और आरक्षित निधि वाले बैंक।

: वर्ष से सहकारी वर्ष अभिप्रेत है, जो संदर्भाधीन अवधि में प्रांतों के बीच अलग-अलग रहा है।

स्रोत : भारतीय केन्द्रीय बैंकिंग जांच समिति, 1931।

⁸ इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया का नाम लार्ड जॉन मेनार्ड कींस द्वारा सुझाया गया था।

सारणी 3.4 : भारत में बैंकों का प्रांतवार वितरण - 1930*

क्रम संख्या	राज्य	सूचित करनेवाले बैंकों की संख्या
1.	मद्रास	167
2.	बंबई	30
3.	बंगाल	919
4.	आगरा और अवध का संयुक्त प्रांत	33
5.	पंजाब	29
6.	बर्मा	4
7.	बिहार और उड़ीसा	18
8.	केन्द्रीय प्रांत और बेरार	3
9.	आसाम	51
10.	उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत	1
11.	दिल्ली प्रांत	3
	कुल	1258

* : भारतीय कंपनी अधिनियम 1913 के तहत पंजीकृत।
 स्रोत: भारतीय केन्द्रीय बैंकिंग जांच समिति, 1930।

3.20 1930 में, बैंकिंग प्रणाली में कुल मिलाकर 1258 बैंकिंग संस्थाएं थीं जिनका पंजीकरण भारतीय कंपनी अधिनियम, 1913 के तहत किया गया था (सारणी 3.4)।

3.21 1930 में बैंकों के रूप में पंजीकृत 1258 संस्थाओं में से, जहां कुछ वास्तविक अर्थों में बैंक थीं, अन्य संस्थाएं देशी बैंक, निधि तथा ऋण कंपनियां थीं। बड़ी संख्या में शहरों तथा गांवों में, देशी बैंक ऋण के मुख्य स्रोत थे। भारतीय केन्द्रीय बैंक जांच समिति के अनुसार, “कुछ देशी बैंकर आधुनिक तरीके से कार्य करते हैं तथा सामान्य संयुक्त पूंजी बैंकों द्वारा किए जाने वाले सभी प्रकार के लेनदेन, पासबुक तथा चेकबुक जारी करने सहित, करते हैं।” उन्होंने तुलनपत्र प्रकाशित नहीं किए तथा उनका प्रबंधन मालिकों द्वारा किया गया। इनमें से ‘बैंक ऑफ चेटीनाडट’ जैसे कुछ बैंक भारतीय कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत थे। तथापि, कुछ अन्य ऐसे छोटे बैंक थे जिन्होंने अपना पंजीकरण नहीं कराया।

3.22 1928 से 1934 के अवधि के दौरान विश्व अर्थव्यवस्था महान मंदी की चपेट में थी। इसका असर भारतीय बैंकिंग उद्योग पर भी पड़ा तथा ऋण अशोध्य होने के कारण विफल होने वाले बैंकों की संख्या तेजी से बढ़ गई। विफल होने वाले बैंकों की पूंजी श्रेणी क तथा ख में सूचना देने वाले बैंकों की पूंजी के औसत आकार की तुलना में औसतन कम थी, जो इस बात का संकेत है कि विफल होने वाले बैंक छोटे आकार के थे (सारणी 3.5)।

3.23 भारतीय बैंकिंग की समस्याओं का व्यापक सर्वेक्षण करने के लिए 1929 में स्थापित भारतीय बैंकिंग केन्द्रीय बैंक समिति की राय थी कि देश के लिए एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना की जाए तथा एक विशेष अधिनियम बनाकर उसमें उस समय मौजूद भारतीय कंपनी अधिनियम

(1913) के सुसंगत उपबंध तथा (i) संगठन, (ii) प्रबंधन, (iii) लेखा परीक्षा और निरीक्षण तथा (iv) परिसमापन और समामेलन संबंधी नए उपबंध शामिल किए जाएं। इसमें यह भी नोट किया गया कि कृषि उत्पादन और सहकारी ऋण संबंधी जरूरतों के वित्तपोषण में वाणिज्य बैंक नगण्य भूमिका निभाते हैं। खेती करने वालों की ऋण संबंधी जरूरतों की जांच करते हुए इसमें नोट किया गया कि “यदि उसकी जरूरतें संतुष्ट होती हैं तो वह अपर्याप्त रूप में होता है तथा उसकी लागत बरबाद करने वाली होती है”। उस समय भारत जैसी कृषि अर्थव्यवस्था में कृषि के लिए ऋण का बहुत महत्व था। कृषि के लिए बैंक ऋण जीडीपी का 0.3 प्रतिशत था। 1931 में ग्रामीण ऋणग्रस्तता 900 करोड़ रुपए होने का अनुमान था, तथा यह अतीत की ऋणग्रस्तता; सामाजिक और आनुष्ठानिक कार्यों में अत्यधिक व्यय; उच्च ब्याज दरों; सूखे और बीमारी के कारण पशुओं की आवर्ती हानि; उच्च कीमतों तथा उच्च किरायों पर जमीन पट्टे पर देने के फलस्वरूप भूमि का अंतरण किसानों से साहूकारों को होने के कारण बढ़ती जा रही थी।

3.24 ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग के प्रसार की कमी तथा फलस्वरूप ग्रामीण आबादी की अनौपचारिक स्रोतों पर निर्भरता इस समय चिंता का प्रमुख विषय था। ग्रामीण ऋण की समस्या का कुछ सीमा तक यह कारण भी था कि

सारणी 3.5 : विफल बैंकों की पूंजी और आरक्षित निधियां

वर्ष (जनवरी-दिसंबर)	विफल बैंकों की संख्या	विफल बैंकों की प्रदत्त पूंजी (रु. '000)	विफल हुए बैंकों की औसत प्रदत्त पूंजी (रु. '000)	श्रेणी क और ख में सूचना देने वाले बैंकों की औसत प्रदत्त पूंजी (रु. '000)
1	2	3	4	5
1926	14	398	28	1017
1927	16	311	19	1005
1928	13	2312	178	1022
1929	11	819	74	1105
1930	12	4060	338	952
1931	18	1506	84	984
1932	24	809	34	1008
1933	26	300	12	973
1934	30	623	21	851
1935	51	6596	129	861

नोट : श्रेणी क : 5 लाख रुपये और अधिक की पूंजी और आरक्षित निधि वाले बैंक।
 श्रेणी ख : 1 लाख रुपये से अधिक और 5 लाख रुपये तक की पूंजी और आरक्षित निधि वाले बैंक।

स्रोत : भारत में बैंकों संबंधी सांख्यिकीय सारणियां, विभिन्न अंक।

⁹ भारतीय रिजर्व बैंक (इतिहास) खण्ड II, पृष्ठ 235

वितरित ऋण के प्रकार तथा जिस अवधि के लिए उसकी स्वीकृति की जाती थी उनके बीच कोई अंतर नहीं था। निवेश प्रयोजन के लिये गए ऋणों की बड़ी मात्रा की अदायगी एक मौसम में होना संभव नहीं था। यह सूचित किया गया कि कई प्रांतों में ऋण सहकारी संस्थाओं को अतिदेय ऋण की मात्रा देय बकाया मूल के 60 से 70 प्रतिशत तक थी¹⁰।

रिजर्व बैंक की स्थापना तथा इसकी भूमिका

3.25 बैंक विफलताओं के कारणों का पता लगाने वाली विभिन्न समितियों ने देश के लिए एक केंद्रीय बैंक की स्थापना की सिफारिश की थी¹¹। यह नोट करना दिलचस्प है कि कई केंद्रीय बैंकों की स्थापना विशेषतः बैंक विफलताओं का खयाल रखने के लिए की गयी थी। उदाहरण के लिए 1913 में यूएस फेडरल रिजर्व की स्थापना प्रमुखतया बार-बार हो रहे बैंकिंग संकटों की पृष्ठभूमि में की गयी थी। यह महसूस किया गया कि एक केंद्रीय बैंक की स्थापना से गुरुतर नियंत्रण संभव होगा तथा वह देश में शिथिल रूप से जुड़ी बैंकिंग संरचना को समन्वित करेगी। यह भी विश्वास किया गया कि एक अलग संस्था के रूप में, जो (इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया की तरह) सामान्य बैंकिंग व्यवसाय नहीं करेगी, केंद्रीय बैंक की स्थापना से उसकी ऐसी स्थिति संभव होगी जिससे वह अन्य संयुक्त पूंजी बैंकों द्वारा उसके प्रति किसी प्रतिस्पर्धा की भावना के बिना केंद्रीय बैंकिंग संबंधी कार्य करने में समर्थ होगा¹²। तदनुसार, भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 बनाकर भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया गया। बैंक की विफलताओं का मुद्दा तथा कृषि की अपेक्षाओं को पूरा

करने की जरूरत रिजर्व बैंक की स्थापना के दो प्रमुख कारण थे। बैंकिंग क्षेत्र 1935 में रिजर्व बैंक की परिधि में आ गया। रिजर्व बैंक की स्थापना के समय, बैंकिंग क्षेत्र द्वारा धारित जमाराशियों का सबसे बड़ा भाग संयुक्त पूंजी बैंकों के पास था, जिसके बाद इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया तथा विनिमय बैंकों का स्थान था (सारणी 3.6)।

3.26 भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 ने रिजर्व बैंक को बैंक नोट निर्गम को विनियमित करने, वाणिज्य बैंकों की नकद आरक्षित निधियों की अभिरक्षा तथा उन्हें निभाव स्वीकृत करने के विवेकाधिकार संबंधी शक्तियां प्रदान कीं। रिजर्व बैंक अधिनियम की प्रस्तावना में उसके कार्य इस प्रकार प्रस्तुत किए गए “बैंक-नोटों को निर्गमता करना और भारत में मौद्रिक स्थिरता बताए रखने की दृष्टि से आरक्षित राशियों का रखा जाना नियंत्रित करना तथा समष्टिगत रूप से देश की करेंसी और ऋण व्यवस्था को देश के लाभार्थ चलाना” रिजर्व बैंक के मुख्य कार्यों को निम्नलिखित व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है (क) सरकार के बैंकर के रूप में कार्य करना; (ख) नोटों का निर्गम; (ग) अन्य बैंकों के बैंकर के रूप में कार्य करना; तथा (घ) विनिमय अनुपात बनाये रखना। रिजर्व बैंक अधिनियम का बैंकों पर सीमित नियंत्रण था हालांकि प्रत्येक क्षेत्र में इसके दायित्व स्पष्ट शब्दों में बताये गये थे। कुछ सीमा तक अंतर्निर्मित लचीलापन था क्योंकि रिजर्व बैंक को असाधारण परिस्थितियों के तहत अतिरिक्त अधिकार और युक्तिचालनीयता प्रदान की गयी थी, जिनका उपयोग प्रत्येक मामले में निर्धारित किए गए अनुसार ‘गवर्नर जनरल इन कौंसिल’ अथवा बैंक के केंद्रीय बोर्ड के पूर्वानुमोदन से ही किया जा सकता था।

सारणी 3.6 : भारत में वाणिज्य बैंकों की संख्या तथा उनके पास रखी गई जमाराशियां

(राशि करोड़ रुपये में)

दिसंबर-अंत	इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया		विनिमय बैंक		संयुक्त पूंजी बैंक		कुल - सभी बैंक	
	संख्या	जमाराशियां	संख्या	जमाराशियां	संख्या	जमाराशियां	संख्या	जमाराशियां
1	2	3	4	5	6	7	8	9
1926	1	80 (37.4)	18	72 (33.3)	76	63 (29.4)	95	215
1929	1	79 (37.3)	18	67 (31.4)	79	66 (31.2)	98	212
1932	1	75 (33.6)	18	73 (32.5)	87	76 (33.9)	106	225
1935	1	79 (32.3)	17	76 (31.1)	106	90 (36.7)	124	245

नोट : कोष्ठकों के आंकड़े कुल का प्रतिशत अंश हैं।

स्रोत : भारत में बैंकों से संबंधित सांख्यिकीय सार, 1935।

¹⁰ भारतीय केंद्रीय बैंकिंग जांच समिति (1931)।

¹¹ भारतीय केंद्रीय बैंकिंग जांच समिति (1931)।

¹² भारतीय केंद्रीय बैंकिंग जांच समिति (1931)।

3.27 उधार के अंतिम आश्रयदाता के रूप में वाणिज्य बैंकों की अल्पावधि आस्तियों की तरलता सुनिश्चित करने में रिजर्व बैंक की निर्णायक भूमिका थी। आरंभ के वर्षों में बैंकिंग क्षेत्र के पास पर्याप्त चलनिधि थी क्योंकि उसके पास सरकारी प्रतिभूतियां मुक्त रूप से रिजर्व बैंक को बेचने की सुविधा थी¹³। 1935 में, बैंकों से यह अपेक्षा थी कि वे दैनिक आधार पर अपनी मांग देयताओं का 5 प्रतिशत तथा मीयादी देयताओं का 2 प्रतिशत नकदी आरक्षित निधि के रूप में बनाए रखें। मुद्रा के प्रबंध का जो कार्य पहले मुद्रा नियंत्रक के पास था वह भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 3 के तहत मार्च 1935 में रिजर्व बैंक के पास आ गया। रिजर्व बैंक अधिनियम के उपबंधों में रिजर्व बैंक से यह भी अपेक्षित था कि वह बैंकों के बैंक के रूप में कार्य करे। सामान्य केंद्रीय बैंकिंग प्रथा के अनुसार, मुद्रा बाजार संबंधी रिजर्व बैंक के परिचालन मोटे तौर पर सदस्य बैंकों अर्थात् 'अनुसूचित' बैंकों और प्रांतीय सहकारी बैंकों के माध्यम से संचालित किए जाने थे। 'अनुसूचित' बैंक उन बैंकों को कहा जाता था जिन्हें रिजर्व बैंक अधिनियम की दूसरी अनुसूची में शामिल किया गया था तथा ब्रिटिश इंडिया के वे बैंक जो अपनी प्रदत्त पूंजी एवं आरक्षित निधियां कुल मिलाकर 5 लाख रुपये से अधिक होने के कारण बाद में इस अनुसूची में शामिल किए जाने के पात्र बन गए। अनुसूची में शामिल करने अथवा उससे बैंकों को निकालने की शक्ति 'गवर्नर जनरल इन कौंसिल' के पास थी। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की स्वीकृत की गयी प्रस्तावना में 1928 के विधेयक की आरंभिक प्रस्तावना में की गयी परिकल्पना से भिन्न ब्रिटिश भारत के लिए 'स्वर्णमानक मुद्रा' के प्रति कोई संदर्भ नहीं था। यह बदलाव सितंबर 1931 में ग्रेट ब्रिटेन के स्वर्णमानक से अलग हो जाने के कारण इस बीच की अवधि में अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक स्थिति की अस्थिरता के कारण आया।

3.28 आरंभ से ही रिजर्व बैंक के लिए कुछ संवर्धनात्मक भूमिका की परिकल्पना की गयी क्योंकि भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम के अनुसार कृषि संबंधी ऋण रिजर्व बैंक की विशेष जिम्मेदारी थी। रिजर्व बैंक ने अर्थव्यवस्था के लिए कृषि ऋण के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका स्वीकार की तथा इस क्षेत्र में 1936 और 1937 में दो अध्ययन शुरू कर ठोस कार्रवाई की। उस समय कृषि के लिए अपेक्षित प्रायः संपूर्ण वित्त की आपूर्ति साहूकारों द्वारा की जाती थी; सहकारी संस्थाओं तथा अन्य एजेंसियों की भूमिका नगण्य थी (मोहन, 2004क)। 1935 से 1950 तक के अवधि के दौरान, रिजर्व बैंक सहकारी संस्थाओं को वित्तीय निभाव के प्रावधान के जरिए सहकारी ऋण आंदोलन का पोषण कर कृषि ऋण पर ध्यान केंद्रित करता रहा। रिजर्व बैंक के समन्वित प्रयासों और नीतियों के फलस्वरूप, कृषि तथा संबद्ध कार्यकलापों के लिए ऋण प्रदान करने हेतु ऋण संस्थाओं का भलीभांति पृथक ढांचा उभरकर सामने आया। अल्पावधि ढांचे के भीतर,

ग्राम स्तर पर प्राथमिक कृषि ऋण समितियां आधार स्तरीय ढांचा थीं, जबकि मध्यवर्ती स्तर पर जिला मध्यवर्ती सहकारी बैंकों को रखा गया था, तथा शीर्ष स्तर पर राज्य सहकारी बैंक थे। ग्रामीण सहकारिताओं के दीर्घावधि ढांचे में राज्य स्तर पर राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, तथा विकेंद्रीकृत जिला अथवा खंड स्तर पर प्राथमिक सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक शामिल थे। इन संस्थाओं ने कृषि तथा ग्रामीण उद्योगों में निवेश करने के लिए प्रतिरूपी तौर पर मध्यावधि से दीर्घावधि ऋण प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित किया।

3.29 एक पर्यवेक्षी प्राधिकरण होने पर केंद्रीय बैंक के पास लेखा-परीक्षा तथा निरीक्षण जैसे कार्य करने की पर्याप्त शक्तियां होनी चाहिए ताकि वह अस्वस्थ प्रथाओं का पता लगाकर उन्हें रोक सके तथा लाइसेंस वापस लेने अथवा अस्वीकार करने जैसे सुधारात्मक उपाय सुझा सके। तथापि, शुरू के वर्षों में रिजर्व बैंक के पास नियंत्रण अथवा विनियमन की पर्याप्त शक्तियां नहीं थीं। वाणिज्य बैंक साधारण गैर-बैंकिंग कंपनियों पर लागू कंपनी कानून द्वारा नियंत्रित थे तथा नए बैंक की स्थापना तक के लिए रिजर्व बैंक की अनुमति जरूरी नहीं थी। रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद की अवधि में सूचना देनेवालों की संख्या बढ़ गयी। बैंकों के वर्गीकरण का विस्तार कर अल्पतर पूंजी और आरक्षित निधि आधार वाले बैंकों को शामिल किया गया। श्रेणी 'क' बैंकों को क 1 तथा क 2 में विभाजित किया गया। साथ ही, अल्पतर बैंकों को शामिल करने के लिए 'ज' तथा 'घ' नामक बैंकों की दो नई श्रेणियां जोड़ी गयीं। 5 लाख रुपए से अधिक पूंजी और आरक्षित निधि वाले उन बैंकों को, जिन्हें रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 की दूसरी अनुसूची में शामिल किया गया था, श्रेणी क 1 में रखा गया, जबकि 5 लाख रुपए से अधिक पूंजी और आरक्षित निधि वाले शेष गैर अनुसूचित बैंकों को श्रेणी क 2 में वर्गीकृत किया गया। शेष गैर-अनुसूचित बैंकों को उनके आकार के अनुसार वर्गीकृत किया गया; 1 लाख रुपए से अधिक तथा 5 लाख रुपए से कम पूंजी और आरक्षित निधि वाले बैंकों को श्रेणी ख के रूप में वर्गीकृत किया गया; 50,000 रुपए से अधिक तथा 1 लाख रुपए तक पूंजी और आरक्षित निधि वाले बैंकों को श्रेणी ग के रूप में वर्गीकृत किया गया; तथा 50,000 रुपए से कम पूंजी और आरक्षित निधि वाले बैंकों को श्रेणी घ के रूप में वर्गीकृत किया गया। 1940 में सूचना देने वाले बैंकों की संख्या 654 थी (सारणी 3.7)।

3.30 अर्थव्यवस्था के अल्पविकसित स्वरूप तथा उपयुक्त विनियामक ढांचे में अभाव ने बड़ी संख्या में छोटे बैंकों के कारगर विनियमन की समस्या खड़ी कर दी। अहस्तक्षेप की नीति, जिसमें मुक्त प्रवेश और निकासी की अनुमति दी गयी, में मुक्त प्रतिस्पर्धा के गुण थे। तथापि, ऐसी नीति के लाभ सर्वाधिक मात्रा में ऐसी प्रणाली में

¹³ नवम्बर 1951 तक, जब रिजर्व बैंक ने आपवादिक परिस्थितियों को छोड़कर ऐसी प्रतिभूतियों को खरीदने की प्रथा बंद कर दी।

सारणी 3.7 : सूचना देनेवाले बैंकों की संख्या तथा उनके पास रखी गई जमाराशियां

(लाख रुपये)

दिसंबर- अंत	सूचना देने वाले वाणिज्य बैंकों की संख्या							सूचना देने वाले वाणिज्य बैंकों की जमाराशियां								
	इंपीरियल बैंक	श्रेणी क1	विनिमय बैंक	श्रेणी क2	श्रेणी ख	श्रेणी ग	श्रेणी घ	कुल	इंपीरियल बैंक	श्रेणी क1	विनिमय बैंक	श्रेणी क2	श्रेणी ख	श्रेणी ग	श्रेणी घ	कुल
	अनुसूचित बैंक			गैर अनुसूचित बैंक					अनुसूचित बैंक			गैर अनुसूचित बैंक				
1936	1	27	19	9	71			127	7880	9007	7523	540	546			25496
1940	1	41	20	17	122	121	332	654	9603	10611	8533	788	1104	286	272	31197
1947	1	80	15	68	185	119	188	656	28659	62334	17881	5192	2947	455	300	117768
1950	1	74	16	73	189	123	124	600	23137	52270	17039	4659	2176	370	131	99782
1951	1	75	16	70	186	117	96	561	23091	51734	16804	4426	2079	367	105	98606
1952	1	75	15	70	194	114	60	529	20585	50952	17523	3882	2023	303	68	95336

नोट : 1. श्रेणी क1 में ऐसे बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 5 लाख रुपये से अधिक हों और जो भार.बैंक अधिनियम, 1934 की दूसरी अनुसूची में शामिल हों।
2. श्रेणी क2 में गैर अनुसूचित बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 5 लाख रुपये से अधिक हों।
3. श्रेणी ख में गैर अनुसूचित बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 1 लाख रुपये से अधिक परंतु 5 लाख रुपये से कम हों।
4. श्रेणी ग में गैर अनुसूचित बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 50,000 रुपये से अधिक परंतु 1 लाख रुपये तक हों।
5. श्रेणी घ में ऐसे बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 50,000 रुपये से कम हों।

स्रोत : भारत में बैंकों संबंधी सांख्यिकीय सारणियां, विभिन्न अंक।

मिलते हैं जिसमें 'पूर्ण प्रतिस्पर्धा' की विशेषता हो, जो बाजार की असफलताओं तथा अपूर्ण बाजारों द्वारा अमिश्रित हो। तथापि, उस अवस्था में भारतीय वित्तीय बाजार निश्चय ही पूर्ण होने से दूर थे। मुक्त प्रवेश से बैंकिंग कंपनियों की अत्यधिक वृद्धि हुई जो बड़े पैमाने पर बैंकों के विफल होने की समस्या द्वारा बिगाड़ दी गयी। एक ऐसे परिदृश्य में, जिसमें पर्याप्त विनियमन लागू नहीं था, छोटे बैंकों की अत्यधिक वृद्धि के कारण नियंत्रण संबंधी अनेक समस्याएं सामने आयीं। उस समय मात्र रिजर्व बैंक के कानून में सुदृढ़ बैंकिंग प्रथा सुनिश्चित करने के लिए वाणिज्य बैंकिंग परिचालनों के विस्तृत विनियमन का कोई प्रावधान नहीं था। अधिनियम की धारा 42(2) के तहत अनुसूचित बैंकों द्वारा साप्ताहिक विवरणों के प्रस्तुतीकरण के द्वारा मुख्यतः रिजर्व बैंक के पास नकदी आरक्षित निधियों के रखरखाव संबंधी अपेक्षाओं के अनुपालन पर निगरानी रखना अभिप्रेत था। रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों के निरीक्षण की परिकल्पना अधिनियम की दूसरी अनुसूची में शामिल करने अथवा बनाए रखने हेतु बैंकों की पात्रता निर्धारित करने के सीमित प्रयोजन के लिए की गयी थी। इस प्रकार, अनुसूचित बैंकों पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण संबंधी रिजर्व बैंक की शक्तियों की सीमित व्याप्ति के अलावा, गैर-अनुसूचित बैंकों के रूप में जानी जानेवाली बड़ी संख्या में छोटी बैंकिंग संस्थाएं उसके नियंत्रण की परिधि से पूर्णतः बाहर थीं। रिजर्व बैंक द्वारा परिचालन आरंभ किए जाने पर भारतीय कंपनी अधिनियम, 1913 में बैंकिंग कंपनियों से संबंधित बहुत कम तथा अपेक्षाकृत छोटे उपबंध थे। वाणिज्य बैंकों के परिचालनों पर नियंत्रण के लिए विनियमनों का वास्तविक अभाव बैंकिंग प्रणाली पर इसकी विनियामक कार्यप्रणाली के दायरे में गंभीर रुकावट साबित हुआ। छोटे बैंकों की कार्यप्रणाली के संबंध में अस्पष्टता थी क्योंकि उनके आंतरिक नियंत्रण अथवा शोधनीयता पर कोई नियंत्रण नहीं था।

3.31 पहले भारतीय कंपनी अधिनियम को 1936 में संशोधित कर विनियमन को सुदृढ़ बनाने के उपाय किए गए। इस संशोधन में बैंकिंग कंपनियों संबंधी उपबंधों के बारे में एक अलग अध्याय शामिल किया गया। इस अधिनियम के पहले बैंक अन्य बातों के साथ-साथ निगमन, संगठन और प्रबंधन जैसे सभी महत्वपूर्ण मामलों में भारतीय कंपनी अधिनियम, 1913 द्वारा नियंत्रित थे जो बैंकिंग तथा गैर-बैंकिंग कंपनियों पर सामान्य रूप से लागू था। सिर्फ कुछ अपेक्षाकृत अहानिकर प्रावधान कंपनी अधिनियम 1913 में थे, जो बैंकों तथा अन्य कंपनियों के बीच अंतर करते थे। भारतीय कंपनी (संशोधन) अधिनियम, 1936 में न्यूनतम पूंजी तथा नकदी आरक्षित निधि अपेक्षा और कुछ परिचालनात्मक दिशा-निर्देशों सहित बैंकिंग कंपनियों से संबंधित उपबंधों के बारे में एक अलग अध्याय शामिल किया गया। इस संशोधन में यह स्पष्ट किया गया कि बैंकिंग कंपनियां अन्य कंपनियों से अलग थीं।

3.32 गैर अनुसूचित बैंकों को शेष संगठित बैंकिंग के साथ क्रमिक रूप से समन्वित करने के लिए, रिजर्व बैंक ने गैर अनुसूचित बैंकों के साथ संपर्क में रहने तथा उन्हें सलाह और मार्गदर्शन देने का प्रयास जारी रखा। रिजर्व बैंक संयुक्त पूंजी कंपनी के रजिस्ट्रारों के जरिए इन बैंकों के तुलनपत्र तथा नकदी आरक्षित विवरणियां भी प्राप्त करता रहा। उनसे प्राप्त जानकारी के अनुसार, 31 दिसम्बर 1938 को ब्रिटिश भारत में कार्यरत लगभग 1,421 संस्थाओं को गैर अनुसूचित बैंकों के रूप में माना जा सकता था। वास्तविक मुद्दा यह था कि उन्हें रिजर्व बैंक की विनियामक परिधि के तहत लाया जाए क्योंकि इनमें से अधिकांश कंपनियों का यह दावा था कि वे कंपनी अधिनियम की धारा 277 (एफ) के तहत वस्तुतः 'बैंक' नहीं थे क्योंकि उक्त धारा के अनुसार बैंकिंग कंपनी से अभिप्राय "ऐसी कंपनी से है जिसका मुख्य व्यवसाय ऐसी जमाराशियां स्वीकार करना है जो चेक, ड्राफ्ट, अथवा आदेश द्वारा

आहरणयोग्य हों', तथा वे इस प्रकार आहरणयोग्य जमाराशियां स्वीकार नहीं करते थे।

3.33 एक अर्थक्षम बैंकिंग प्रणाली सुनिश्चित करने के लिए, यह निर्णायक था कि बैंकिंग प्रणाली की कमजोर कड़ियों का खयाल रखा जाए। इसके लिए, बैंक विफलता के मूल कारण का निवारण आवश्यक था, जो उस समय पर्याप्त विनियमन के अभाव से संबंधित था। अतः, ऐसी जरूरत महसूस की गयी कि सुदृढ़ विनियामक मानदण्ड लागू किए जाएं। यह तथ्य कि विफल होनेवाले अधिकांश बैंक छोटे तथा गैर अनुसूचित थे, गैर अनुसूचित बैंकों के परिचालन पर नियमित निगरानी रखने की आवश्यकता को रेखांकित करता है। अक्टूबर 1939 में, गैर अनुसूचित बैंकों के बारे में एक रिपोर्ट, उनकी आस्तियों तथा देयताओं के प्रति विशेष संदर्भ के साथ, रिजर्व बैंक के केंद्रीय बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत की गयी। रिपोर्ट में इन बैंकों में आरक्षित निधि की कमी की स्थिति, अग्रिम संविभाग में अत्यधिक विस्तार तथा अशोध्य एवं संदिग्ध ऋणों के बड़े अनुपात का उल्लेख किया गया। इस रिपोर्ट में देश के लिए व्यापक बैंकिंग विनियमन की आवश्यकता पर बल दिया गया।

3.34 1939 में, रिजर्व बैंक ने भारत में बैंकिंग संबंधी कानून के लिए अपना प्रस्ताव केंद्र सरकार को प्रस्तुत किया। इन प्रस्तावों की महत्वपूर्ण विशेषताएं ये थीं कि बैंकिंग की परिभाषा को भारतीय कंपनी अधिनियम, 1936 में की गयी परिभाषा की तुलना में अधिक आसान और स्पष्ट किया जाए। दूसरा, इन प्रस्तावों में यह सुनिश्चित करने की मांग की गयी कि स्वयं को 'बैंक' कहनेवाली संस्थाएं पर्याप्त न्यूनतम पूंजी के साथ कार्य शुरू करें ताकि वे इतने बड़े पैमाने पर कार्य कर सकें जिससे एक उचित लाभ कमाना संभव हो सके। तीसरा, इन प्रस्तावों में जमाकर्ताओं के संरक्षण के लिए बैंक निवेशों पर कुछ सामान्य प्रतिबंधों की परिकल्पना की गयी। अंततः, परिसमापन संबंधी कार्यवाहियां तेज करने का प्रयास किया गया ताकि बैंक विफल होने की स्थिति में जमाकर्ताओं को न्यूनतम विलंब और व्यय के साथ चुकौती की जा सके। तथापि, सरकार ने निर्णय लिया कि युद्ध की उस अवधि के दौरान कोई व्यापक कानून न बनाया जाए जब

सरकार की सारी शक्तियां अनिवार्य रूप से युद्ध के प्रयास पर संकेंद्रित थीं। कुछ मुद्दों, जिन पर तत्काल ध्यान देना जरूरी था, का विनियमन और नियंत्रण कानून द्वारा करने के लिए कुछ अंतरिम उपाय किए गए। युद्ध के बाद, रिजर्व बैंक कंपनी (निरीक्षण) अध्यादेश, 1946 जारी कर अपर्याप्त विनियमन के पहलू का आंशिक समाधान किया गया। बैंककारी कंपनी (शाखाओं पर प्रतिबंध) अधिनियम, 1946 तथा बैंककारी कंपनी (नियंत्रण) अध्यादेश, 1948 के तहत रिजर्व बैंक को नयी शक्तियां प्रदान की गयीं। इन अधिनियमों के अधिकांश उपबंधों को बाद में 1949 में बैंककारी कंपनी अधिनियम में शामिल किया गया। इस अधिनियम में समस्त बैंकिंग प्रणाली पर पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण के लिए रिजर्व बैंक को बहुत व्यापक शक्तियां प्रदान की गयीं जिनके ब्यौरे बाद के खण्ड में दिए गए हैं।

विश्व युद्ध II तथा भारतीय बैंकिंग पर इसका प्रभाव

3.35 भारतीय बैंकिंग पर द्वितीय विश्व युद्ध (1939 से 1944) के व्यापक प्रभाव पड़े। जैसे-जैसे मध्यपूर्व तथा दक्षिणपूर्व एशिया में मित्र देशों की फौजों के लिए भारत अधिकाधिक बड़ा आपूर्ति आधार बनता गया, रक्षा तथा मित्र देशों को आपूर्ति पर सरकारी व्यय के कारण मुद्रा का व्यापक विस्तार हुआ। फलस्वरूप, समुदाय के कुछ वर्गों की कुल मौद्रिक आय में वृद्धि हुई। इसके साथ अनेक कारणों यथा अन्य के साथ-साथ आयात प्राप्त करने में कठिनाई, आंतरिक आपूर्तियों के युद्ध की जरूरतों के लिए विपथन, निवेश की सरणियों के नियंत्रण तथा आय वितरण के स्वरूप में विकृति से उच्चतर आय समूहों में 'खर्च न किए गए मार्जिन' में तेज वृद्धि हुई जिससे बदले में बड़ी मात्रा में बैंक जमाराशियां प्राप्त हुईं। ऐसी स्थिति से विनियम बैंकों, जिनका कार्यनिष्पादन मुख्यतः बाह्य कारकों द्वारा चालित था, के अलावा बैंकिंग उद्यमों के विकास को प्रोत्साहन मिला। 1940 तथा 1945 के बीच शाखाओं की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई तथा इस शाखा विस्तार का अधिकांश हिस्सा अनुसूचित वाणिज्य बैंकों (इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया तथा विनियम बैंकों से इतर) और गैर अनुसूचित बैंकों से संबंधित था (सारणी 3.8)।

सारणी 3.8 : बैंक शाखाओं की संख्या : 1940-1945

दिसंबर-अंत	इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया	विनियम बैंक	अन्य अनुसूचित बैंक	कुल अनुसूचित बैंक	श्रेणी 'क 2' गैर अनुसूचित बैंक*	श्रेणी 'ख' तथा 'ग' गैर अनुसूचित बैंक **	सभी बैंक (5+6+7)
1	2	3	4	5	6	7	8
1940	383	87	844	1,314	105	545	1,964
1941	393	84	937	1,414	204	678	2,296
1942	392	84	971	1,447	263	869	2,579
1943	399	84	1,395	1,878	400	996	3,274
1945	428	77	2,451	2,956	811	1,434	5,201

* : 5 लाख रुपये से अधिक प्रदत्त पूंजी और आरक्षित निधियों वाले बैंक।

** : 50,000 रुपये से 5 लाख रुपये से तक प्रदत्त पूंजी और आरक्षित निधियों वाले बैंक।

स्रोत : रिजर्व बैंक (इतिहास) खंड I

3.36 व्यापक होनेवाले कई बैंकों के पास बहुत कम पूंजी थी। उदाहरण के लिए, 2 लाख रुपए से कम पूंजी वाले एक बैंक ने 75 से अधिक शाखाएं खोली थीं। अतः उस समय मौजूद बैंकिंग प्रणाली 'सिविल युद्ध के आसपास यूएस में प्रचलित मुक्त बैंकिंग' की तुलना में अधिक मुक्त थी। इसका कारण यह था कि मुक्त बैंकिंग के तहत भी प्रवेश स्तर की पूंजी संबंधी कुछ मानदंड थे, तथा निष्ठा और पूंजी की न्यूनतम अपेक्षा पूरी करने वाले किसी भी व्यक्ति को अधिकार पत्र प्राप्त हो सकता था। भारत में, प्रवेश स्तर की ये अपेक्षाएं भी प्रवर्तनीय नहीं थीं। जनता द्वारा जमा की गयी निधियों का उपयोग प्रायः अत्यधिक बढ़े हुए मूल्यों पर गैर बैंकिंग कंपनियों के शेयरों की खरीद कर उन पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए किया जाता था। इन छोटे बैंकों की अन्य स्पष्ट विशेषताएं इस प्रकार थीं - बैंकों तथा अन्य कंपनियों, जिनमें प्रबंधन का हित निहित था, के बीच शेयरों की प्रतिधारिता, प्रबंधन से जुड़े व्यक्तियों को बड़ी मात्रा में अप्रतिभूत अग्रिम, कीमतें अत्यधिक ऊंची रहने पर संदिग्ध शेयरों की जमानत पर अग्रिम तथा अचल संपत्ति की जमानत पर अग्रिम जिसे जरूरत के समय आसानी से वसूल न किया जा सकता हो। 1936 तथा 1945 के बीच कई बैंक विफल हो गए (सारणी 3.9)।

3.37 विस्तार की प्रक्रिया में कई बैंक कमजोर हो गए जिससे विफल होने की जोखिम बढ़ गई। दिलचस्प बात यह है कि, बैंक विफलता के दौर के बावजूद, बैंकिंग क्षेत्र के बीच बहुत कम संक्रमण हुआ। इसका कारण यह था कि भारतीय बैंकिंग क्षेत्र अल्पविकसित था तथा शिथिल रूप से संबद्ध था। समन्वय की इस कमी ने बैंक विफलताओं के प्रभाव को क्षेत्र विशेष तक सीमित रखा, उस समय भी जब अपेक्षाकृत बड़े बैंक विफल हुए। भारतीय बैंकिंग प्रणाली में

सारणी 3.9 : बैंकों की विफलता : 1936-1945

(राशि '000 रुपये में)

वर्ष (जनवरी - दिसंबर)	विफल हुए बैंकों की संख्या	विफल हुए बैंकों की प्रदत्त पूंजी	विफल हुए बैंकों की औसत प्रदत्त पूंजी	सूचना देने वाले बैंकों की औसत प्रदत्त पूंजी*
1	2	3	4	5
1936	88	500	6	684
1937	65	1152	18	552
1938	73	3000	41	514
1939	117	2491	21	162
1940	107	2390	22	188
1941	94	1239	13	281
1942	50	1407	28	327
1943	59	749	13	406
1944	28	627	22	468
1945	27	474	18	503

* : आंकड़े सिर्फ श्रेणी क, ख, ग और घ के सूचना देने वाले बैंकों से संबंधित हैं।

स्रोत : भारत में बैंकों संबंधी सांख्यिकीय सारणियां, विभिन्न अंक।

यह लचीलापन काफी हद तक बैंकों के सापेक्ष अलगाव तथा बैंकिंग क्षेत्र में समन्वयन के अभाव के कारण आया। इसके अलावा, उन वर्षों में निम्नतर संप्रेषण ने विरोधाभासी तौर पर इसे व्यापक संकट से बचा लिया (चंदावरकर, 2005)।

3.38 कुल मिलाकर, आजादी तक की अवधि भारतीय बैंकों के लिए कठिन अवधि थी। कम पूंजी आधार वाले छोटे बैंकों की संख्या काफी अधिक थी, हालांकि उनकी ठीक संख्या ज्ञात नहीं थी। संगठित क्षेत्र में इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया, संयुक्त पूंजी बैंक (जिनमें संयुक्त पूंजी अंग्रेजी तथा भारतीय दोनों बैंक शामिल थे) तथा विदेशी मुद्रा विनिमय का कार्य करने वाले विनिमय बैंक शामिल थे। इस अवधि में बड़ी संख्या में बैंक विफल हुए। इसके कई कारण थे। इस अवधि के दौरान दो विश्व युद्ध तथा 1930 की महान मंदी देखी गयी। यद्यपि, वैश्विक कारकों ने बड़ी मात्रा में बैंकों की विफलता में अंशदान किया, कई देशी कारक भी सक्रिय थे। कम पूंजी आधार, अपर्याप्त चल आस्तियां तथा अंतर-संबद्ध उधार कुछ देशी कारक थे। 1935 में रिजर्व बैंक की स्थापना होने पर, प्रमुख चिंता थी - बैंकों का विफल होना तथा उपयुक्त बैंकिंग विनियमन के रूप में पर्याप्त सुरक्षोपाय तैयार करना। फिर भी, रिजर्व बैंक की स्थापना के बारह वर्ष से अधिक समय के बाद भी, अलग कानून के जरिए रिजर्व बैंक को सुदृढ़ बनाने के मुद्दे पर विचार नहीं हुआ। गैर अनुसूचित बैंकों की मौजूदगी प्रमुख चिंता का विषय थी क्योंकि वे रिजर्व बैंक की परिधि के बाहर बने हुए थे। बैंकिंग शहरी क्षेत्रों में अधिक केंद्रित था तथा कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्रों की ऋण संबंधी जरूरतों की उपेक्षा की जा रही थी। देश आजाद होने के समय ये मुद्दे सुसंगत थे।

III. स्वतंत्र भारत के आरंभिक वर्षों में बैंकिंग - 1947 से 1967

3.39 देश आजाद होने पर, भारतीय बैंकिंग पूरी तरह से निजी क्षेत्र में थी। इंपीरियल बैंक के अलावा, पांच ऐसे बड़े बैंक थे जिनमें से प्रत्येक के पास 100 करोड़ रुपए अथवा अधिक सार्वजनिक जमाराशियां थीं यथा, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड, पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड, बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड, बैंक ऑफ बड़ौदा लिमिटेड तथा यूनाइटेड कामर्शियल बैंक लिमिटेड। अन्य सभी वाणिज्य बैंक भी निजी क्षेत्र में थे तथा वे क्षेत्रीय स्वरूप के थे; उनमें से अधिकांश की जमाराशियां 50 करोड़ रुपए से कम थीं। दिलचस्प बात यह है कि रिजर्व बैंक भी उस समय तक पूर्णतः राज्य के स्वामित्व में नहीं था, जब तक इसका राष्ट्रीयकरण भारतीय रिजर्व बैंक (सार्वजनिक स्वामित्व का अंतरण) अधिनियम, 1948 के अनुसार नहीं कर दिया गया।

3.40 स्वतंत्रता के कारण आर्थिक कार्यकलाप के कई क्षेत्रों में काफी अंतर आया तथा बैंकिंग उन अत्यधिक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक था जहां अत्यधिक रूपांतरण हुआ। स्वतंत्रता की पूर्वसंध्या पर बैंकिंग प्रणाली कई

कठिनाइयों से ग्रस्त थी जैसाकि उस समय के गवर्नर सी.डी.देशमुख ने नोट किया है :

“ देश में बैंकिंग प्रणाली से निपटने में भारतीय रिज़र्व बैंक की कठिनाई बैंकिंग इकाइयों की बहुलता मात्र में नहीं है। यह इसके विशाखीकरण और दायरे के द्वारा गंभीर हो गयी है। व्यवहार में कोई मानक उपचार नहीं हो सकता यद्यपि सिद्धांत में एक ही कानून द्वारा सभी नियंत्रित हैं।”¹⁴

3.41 आज़ादी के समय बैंकिंग के ढांचे में देशी अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की प्रधानता थी। गैर अनुसूचित बैंक, यद्यपि बड़ी संख्या में थे, बैंकिंग क्षेत्र का एक छोटा हिस्सा थे (सारणी 3.10)।

सारणी 3.10 : भारतीय बैंकों की संख्या और जमाराशियां - दिसंबर 1947 के अंत में

सूचना देने वाले बैंकों की संख्या	संख्या	जमाराशियां (करोड़ रुपये)
1	2	3
क. अनुसूचित बैंक	97	1090
इंपीरियल बैंक	1	287 (22.8)
अन्य बैंक (क1 बैंक)	81	623 (49.4)
विनिमय बैंक*	15	180 (14.3)
ख. गैर-अनुसूचित बैंक	557	89 (7.1)
i) श्रेणी क2	65	52
ii) श्रेणी ख	185	29
iii) श्रेणी ग	119	5
iv) श्रेणी घ	188	3
ग. सहकारी बैंक	395	82 (6.5)
घ. सभी बैंक - कुल	1034	1261

* : आंकड़े विदेशी विनिमय बैंकों के भारतीय परिचालनों से संबंधित हैं।

- नोट:**
- कोष्ठकों के आंकड़े कुल में प्रतिशत हिस्सा हैं।
 - श्रेणी क 1 में ऐसे बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 5 लाख रुपये से अधिक हों और जो भा.रि.बैंक अधिनियम, 1934 की दूसरी अनुसूची में शामिल हों।
 - श्रेणी क 2 में गैर अनुसूचित बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 5 लाख रुपये से अधिक हों।
 - श्रेणी ख में गैर अनुसूचित बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 1 लाख रुपये से अधिक परंतु 5 लाख रुपये से कम हों।
 - श्रेणी ग में गैर अनुसूचित बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 50,000 रुपये से 1 लाख रुपये तक हों।
 - श्रेणी घ में ऐसे बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 50,000 रुपये से कम हों।

स्रोत: भारत में बैंकों संबंधी सांख्यिकीय सारणियां, 1947।

सारणी 3.11 : वाणिज्य बैंकों का वितरण - दिसंबर 1947 के अंत में

(राशि करोड़ रुपये में)

राज्य	अनुसूचित बैंक		गैर अनुसूचित बैंक		कुल	
	बैंकों की संख्या	प्रदत्त पूंजी	बैंकों की संख्या	प्रदत्त पूंजी	बैंकों की संख्या	प्रदत्त पूंजी
1	2	3	4	5	6	7
आसाम	1	1	14	2	15	3
बिहार	2	6	10	1	12	6
बंबई	13	71	27	7	40	78
मद्रास	14	24	186	20	200	45
पश्चिम बंगाल	22	146	84	12	106	158
दिल्ली	5	32	3	1	8	33
पूर्वी पंजाब	7	14	20	5	27	19
सी.पी. और बेरार	2	4	3	1	5	5
संयुक्त प्रांत	5	15	20	2	25	17
अजमेर मेरवाड़	0	0	1	-	1	-
भारतीय राज्य	11	53	187	38	198	91
कुल	82	365	555	89	637	454

‘-’ : नगण्य।

स्रोत: भारत में बैंकों संबंधी सांख्यिकीय सारणियां, 1947।

3.42 जैसा पहले बताया जा चुका है, वाणिज्य बैंक क्षेत्र विशेष में केंद्रित थे। पश्चिम बंगाल में अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की संख्या सर्वाधिक थी, जिसके बाद मद्रास और बम्बई का स्थान था। जहां तक गैर अनुसूचित बैंकों का संबंध है, मद्रास की संख्या सर्वाधिक थी तथा उसे काफी पीछे दूसरे और तीसरे स्थान पर क्रमशः पश्चिम बंगाल और बम्बई थे (सारणी 3.11)।

बैंकों की विफलता तथा छोटे बैंकों का परिसमापन/समेकन

3.43 देश के विभाजन में देशी अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुंचा तथा बैंकिंग क्षेत्र इससे अलग नहीं था। आज़ादी से पहले संगठित क्षेत्र में देश में कार्यरत 84 बैंकों में से दो बैंक पाकिस्तान में चले गए। पंजाब और पश्चिम बंगाल के दो राज्यों में शेष बचे कई बैंक गंभीर रूप से प्रभावित हुए। 1947 में, 38 बैंक विफल हुए जिनमें से 17 पश्चिम बंगाल में ही थे जिनकी कुल प्रदत्त पूंजी 18 लाख रुपए थी। 1947 में विफल हुए बैंकों की प्रदत्त पूंजी सूचना देने वाले बैंकों की प्रदत्त पूंजी के 2 प्रतिशत से थोड़ी अधिक थी¹⁵। 1947 तथा 1955 के बीच विफल हुए बैंकों की औसत पूंजी उद्योग में सूचना देने वाले बैंकों की प्रदत्त पूंजी के औसत आकार की तुलना में उल्लेखनीय रूप से कम थी जो यह सुझाता है कि आम तौर पर छोटे बैंक विफल हुए (सारणी 3.12)।

¹⁴ ‘भारत में केंद्रीय बैंकिंग, एक सिंहावलोकन’, गोखले इंस्टिट्यूट ऑफ पॉलिटिक्स एण्ड इकॉनॉमिक्स में श्री आर.आर.काले स्मारक व्याख्यान हेतु श्री सी.डी.देशमुख का व्याख्यान, 1948।

¹⁵ सूचना देने वाले बैंकों में श्रेणी क 1, क 2, ख, ग तथा घ के बैंक शामिल थे।

सारणी 3.12 : विफल बैंकों की संख्या : 1947-1955

(राशि लाख रुपये में)

वर्ष (जनवरी - दिसंबर)	विफल हुए बैंकों की संख्या	विफल हुए बैंकों की प्रदत्त पूंजी	विफल हए बैंकों की औसत प्रदत्त पूंजी	सूचना देने वाले बैंकों की औसत प्रदत्त पूंजी*
1	2	3	4	5
1947	38	83	2	105
1948	45	183	4	90
1949	55	131	2	84
1950	45	129	3	102
1951	60	62	1	73
1952	31	16	1	139
1953	31	114	4	135
1954	27	48	2	154
1955	29	47	2	142

* : सूचना देने वाले बैंकों में श्रेणी क1, क2, ख, ग और घ के बैंक शामिल हैं।

स्रोत : भारत में बैंकों संबंधी सांख्यिकीय सार, विभिन्न अंक।

3.44 अपेक्षाकृत बड़े बैंकों के लिए वर्ष 1948 सबसे खराब वर्षों में से एक था क्योंकि लगभग औसतन 4 लाख रुपए की प्रदत्त पूंजीवाली 45 संस्थाएं (637 से अधिक बैंकों में से) बंद हो गयीं। वे इसलिए विफल हो गईं क्योंकि उन्होंने अपने संसाधनों के बल पर खोली जा सकने वाली शाखाओं की तुलना में अधिक शाखाएं खोलकर अपना अति विस्तार कर लिया था तथा संपत्ति या अपर्याप्त प्रतिभूति की जमानत पर बड़ी मात्रा में ऋण प्रदान किये थे। तथापि, इनमें से कुछ के पास विवेकपूर्ण मुद्दे थे क्योंकि वे बहुत कम पूंजी आधार के साथ कार्य कर रहे थे। बार-बार बैंक विफल होने से बचतकर्ताओं को अत्यधिक कठिनाइयां हुईं। विफलताओं के कारण बैंकिंग प्रणाली में विश्वास भी कम हो गया। इस अवधि के दौरान अधिकांश बचतें जमीन और सोने के रूप में थीं। घरेलू बचतें कुल देशी बचतों का 66 प्रतिशत थीं। कुल घरेलू बचतों में से, 89 प्रतिशत भौतिक आस्तियों के रूप में थीं¹⁶। वित्तीय बचतों का बड़ा हिस्सा डाक विभाग में गया जिसे सरकारी स्वामित्व के कारण अधिक सुरक्षित माना जाता था। वाणिज्य बैंकों द्वारा जुटायी गयी बैंक जमाराशियों का अधिकांश व्यापार और उद्योग में प्रतिभूति आधारित उधारकर्ताओं को ऋण के रूप में दिया जाता था।

3.45 इस प्रकार आजादी के बाद रिजर्व बैंक के समक्ष पहला कार्य यह था कि समसामयिक तरीके से सुदृढ़ संरचना का विकास किया जाए। यह माना गया कि आर्थिक संपन्नता और स्थिरता के संवर्धन में बैंक और बैंकिंग संबंधी सुदृढ़ता का काफी महत्व है। अपने विस्तार तथा जमाराशियों

के संग्रहण के माध्यम से बैंक बैंकिंग आदतों तथा अर्थव्यवस्था में बचतों को बढ़ाते हैं। इससे निवेश तथा विकास के लिए संसाधन जुटाने में मदद मिल सकती है। योजनाबद्ध आर्थिक विकास आरंभ करने के लिए बैंकिंग उद्योग को व्यापक करना जरूरी है ताकि जमा संग्रहण को बढ़ाया जा सके और बैंकिंग सेवाएं उपलब्ध करायी जा सकें।

3.46 बैंक विफलता संबंधी मुद्दे का कुछ सीमा तक समाधान बैंककारी कंपनी अधिनियम, 1949 (बाद में जिसका नाम बैंककारी विनियमन अधिनियम किया गया) द्वारा किया गया, परंतु इसकी मात्रा बहुत सीमित थी। 1949 के बैंककारी कंपनी अधिनियम में देश के केंद्रीय बैंकिंग अधिकरण के रूप में बैंकिंग पर्यवेक्षण हेतु रिजर्व बैंक को व्यापक शक्तियां प्रदान की गयीं¹⁷। इसमें जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा करने के लिए मौलिक विवेकपूर्ण विशेषताएं थीं तथा बैंकिंग कंपनियों के संगठन, प्रबंधन, लेखा-परीक्षा और परिसमापन जैसे विभिन्न पहलुओं को शामिल किया गया था। इसने रिजर्व बैंक को नए बैंक तथा शाखा कार्यालय खोलने पर नियंत्रण, बैंकिंग कंपनियों की लेखाबहियों के निरीक्षण तथा लाइसेंस-प्राप्त बैंकिंग कंपनियों के ऐच्छिक समापन को रोकने की शक्तियां प्रदान कीं। उक्त अधिनियम स्वतंत्र भारत की सरकार द्वारा उठाया गया पहला विनियामक कदम था जिसे भारत में वाणिज्य बैंकों की कार्यप्रणाली तथा कार्यकलाप को कारगर बनाने की दृष्टि से तैयार किया गया था। इस अधिनियम की जरूरत लम्बे समय से थी क्योंकि भारतीय केंद्रीय बैंकिंग जांच समिति ने 1931 में भारत के लिए ऐसा अधिनियम बनाने की संस्तुति की थी। किसी भी समय बैंकिंग कंपनियों का निरीक्षण करने का अधिकार रिजर्व बैंक को दी गयी सर्वाधिक प्रभावी पर्यवेक्षणात्मक शक्ति थी। रिजर्व बैंक को किसी भी बैंकिंग कंपनी का निरीक्षण करने का अधिकार था ताकि वह लाइसेंस की पात्रता, शाखा खोलने, समामेलन, रिजर्व बैंक द्वारा जारी निदेशों के अनुपालन के बारे में स्वयं को संतुष्ट कर ले। इस अधिनियम में निहित एक प्रमुख विशिष्टता यह थी कि 'बैंकिंग' को अन्य वाणिज्यिक परिचालनों से भिन्न रूप में वर्णित किया गया। यह वाणिज्य बैंकों की परंपरागत भूमिका के अनुरूप था, जहां बैंकों को वित्तीय प्रणाली की एक विशेष संस्था के रूप में माना जाता है, जिसके लिए गुरुतर ध्यान तथा अलग उपचार अपेक्षित है (सेलगिन, 1996)।

3.47 तथापि, बैंककारी कंपनी अधिनियम की कुछ सीमाएं थीं। इसमें वाणिज्य बैंकों के प्रबंधन का नियंत्रण करने वाले व्यक्तियों द्वारा अधिकारों के दुरुपयोग के विरुद्ध पर्याप्त प्रावधान नहीं किए गए थे। रिजर्व बैंक ने जुलाई 1949 में यह निर्णय लिया कि आकार और स्थिति से निरपेक्ष होकर देश में सभी बैंकिंग कंपनियों के प्रणालीगत और आवधिक निरीक्षण

¹⁶ हैंडबुक ऑफ स्टैटिस्टिक्स ऑन द इंडियन इकॉनॉमी, 2006-07

¹⁷ इस अधिनियम (1965 का 23) में कंपनी शब्द के स्थान पर 'विनियमन' शब्द रखा गया : 1 मार्च 1966 से अधिनियम का नाम बदलकर बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 कर दिया गया।

के लिए सक्षम तंत्र का संगठन किया जाए। अंतिम उद्देश्य यह था कि प्रत्येक बैंक के वार्षिक निरीक्षण के लिए एक संगठन तैयार किया जाए। यह स्पष्ट किया गया कि निरीक्षण का प्राथमिक उद्देश्य यह था कि अपनी कार्यपद्धतियों में मौजूद कमियों अथवा असंतोषजनक बातों के प्रति ध्यान आकृष्ट कर सुदृढ़ बैंकिंग प्रथाओं की स्थापना में बैंकों की सहायता की जाए, इससे पहले कि वे गंभीर स्वरूप के हो जाएं जिससे गंभीर कार्रवाई की जरूरत पड़े। सभी बैंकों का निरीक्षण करने के लिए दक्ष तंत्र और संगठन के विकास का कार्य काफी कठिन था।

3.48 स्वतंत्रता के बाद तथा बैंककारी कंपनी अधिनियम बनने के बाद की अवधि में बैंकों की विफलता जारी रही, यद्यपि ऐसी विफलताओं में काफी कमी आयी। सार्वजनिक बचतों की रक्षा करने के लिए, ऐसा महसूस किया गया कि अशोधनीय बैंकों का समापन करना अथवा सुदृढ़ बैंकों के साथ उनका सामामेलन करना बेहतर होगा। तदनुसार, 1950 के दशक में बैंकों के समेकन, अनिवार्य सामामेलन तथा परिसमापन के लिए समर्थकारी कानून बनाने के प्रयास किए गए। यह जरूरी था क्योंकि उसमें मौजूद परिसमापन की प्रक्रिया लम्बी और अधिक समय लेनेवाली थी। इसमें उच्च न्यायालय में कार्यवाही शामिल थी तथा यह काफी खर्चीली थी और जमाकर्ताओं को इससे काफी दिक्कत होती थी। इसी तरह, लाइसेंस-प्राप्त बैंकिंग कंपनियों के लिए कारोबार के निलंबन में भी काफी समय लगता था क्योंकि इसमें ऋणस्थगन की घोषणा, उच्च न्यायालय द्वारा शासकीय परिसमापक की नियुक्ति तथा रिजर्व बैंक द्वारा संबंधित बैंकिंग कंपनियों की लेखाबहियों का निरीक्षण करना शामिल था। धारा 22 के तहत जिन बैंकिंग कंपनियों को लाइसेंस स्वीकृत नहीं किया गया था उनके सामने ऐच्छिक समापन का आसान निकास मार्ग था, क्योंकि ऐसी बैंकिंग कंपनियों पर धारा 44 के उपबंध लागू नहीं होते थे तथा ऐसी कंपनियों के ऐच्छिक परिसमापन के पहले रिजर्व बैंक की पूर्वानुमति अपेक्षित नहीं थी। इससे रातोंरात अमीर बनने की इच्छा रखने वालों के लिए अपने परिचालनों का ऐच्छिक समापन आसान हो गया। विशेष तौर पर पश्चिम बंगाल में अनेक गैर अनुसूचित बैंकों का पता नहीं लगाया जा सका। जून 1954 में मौजूद 165 गैर अनुसूचित बैंकों में से, 107 बैंकों का अता-पता नहीं था¹⁸। 6 बैंकों को छोड़कर उक्त सभी तथा शेष गैर-अनुसूचित बैंकों का लाइसेंस रद्द कर दिया गया।

3.49 त्रावणकोर - कोचीन क्षेत्र में भी बड़ी संख्या में छोटे बैंक थे। 1954 में त्रावणकोर - कोचीन जांच समिति द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार, क्षेत्र के 163 बैंकों में से 136 पुरवों में स्थापित छोटे बैंक थे। इनमें से सिर्फ 16 बैंकों में 40 लाख रुपए से अधिक की जमाराशियां

थीं। 95 बैंकों की कार्यशील पूंजी 10 लाख रुपए से कम थी। 39 बैंकों के पास बैंककारी कंपनी अधिनियम, 1949 की धारा 11 के तहत उन पर लागू स्तर से कम पूंजी और आरक्षित निधियां थीं। समिति ने सुझाव दिया कि इन बैंकों को अपनी पूंजी बढ़ाने के लिए समय दिया जाए। 18 बैंकों को लाइसेंस देने से मना कर दिया गया। भारत में अन्यत्र बैंकों के सामने कम समस्याएं थीं। अखिल भारतीय स्तर पर दिसम्बर 1957 में सिर्फ 21 बैंकों को लाइसेंस देने से मना किया गया क्योंकि उनको सुधारना संभव नहीं था।

3.50 पलै सेंट्रल बैंक जैसे कुछ बड़े बैंक भी अच्छी तरह कार्य नहीं कर रहे थे। उनका कार्यनिष्पादन आरक्षित निधियों के खराब स्तर तथा बेजमानती अग्रिमों के ऊंचे प्रतिशत द्वारा दुष्प्रभावित हुआ। रिजर्व बैंक के केंद्रीय बोर्ड की समिति ने अक्टूबर 1952 में इस बात की संभावना पर विचार किया कि क्या निरीक्षण रिपोर्ट में उल्लिखित अनियमितताओं के आधार पर बैंक को भारतीय रिजर्व बैंक की दूसरी अनुसूची से निकाला जा सकता है¹⁹। रिजर्व बैंक के सामने दो विकल्प थे अर्थात्, या तो बैंक बंद करने की शक्ति का प्रयोग किया जाए अथवा बैंक को सामान्य बनाने के लिए उसका पोषण किया जाए। पहला विकल्प आसान था परंतु उसमें यह जोखिम था कि इससे प्रणालीगत संकट उत्पन्न हो सकता है। दूसरा विकल्प अधिक कठिन था। जमाकर्ताओं के हित को ध्यान रखते हुए, पलै बैंक को अपने कामकाज में सुधार लाने के लिए समय दिया गया तथा उसे स्थगन के अधीन रखा गया। तथापि 1960 में वह बैंक विफल हो गया। इस विफलता के बाद जनता तथा संसद में हो-हल्ला मचा जिससे बैंक विफलता संबंधी मामले को निपटाने हेतु अपेक्षित कानून बनाने के प्रति अभियान में तेजी आयी।

3.51 इस गतिविधि को देखते हुए, बैंकों के सामामेलन को एक समाधान के रूप में देखा गया। केरल स्थित बैंकों के अधिस्थगन तथा फलस्वरूप उनके सामामेलन से भारतीय बैंकिंग प्रणाली में त्वरित समेकन का एक नया युग शुरू हुआ। तदनुसार, बैंककारी कंपनी (संशोधन) अधिनियम, 1961 तैयार किया गया जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ बैंकों के अनिवार्य पुनर्निर्माण अथवा सामामेलन से संबंधित बैंककारी कंपनी अधिनियम की धारा 45 के तहत उपबंधों को स्पष्ट करने तथा उनकी अनुपूर्ति करने का प्रयास किया गया। इस अधिनियम में एक बैंकिंग कंपनी के भारतीय स्टेट बैंक अथवा उसके सहायक बैंकों के साथ अनिवार्य सामामेलन को समर्थ बनाया गया। उस समय तक इस प्रकार का सामामेलन सिर्फ अन्य बैंकिंग कंपनी के साथ संभव था। इस कानून द्वारा एक योजना में दो से अधिक बैंकिंग कंपनियों के सामामेलन को भी समर्थ बनाया गया। पुनर्निर्माण अथवा

¹⁸ जैसाकि रिजर्व बैंक (इतिहास) खंड II, पृष्ठ 465 में उल्लेख किया गया है।

¹⁹ रिजर्व बैंक का इतिहास खंड II, पृष्ठ 791।

सारणी 3.13 : समामेलित वाणिज्य बैंक : 1954-66

(राशि लाख रुपये में)

वर्ष (जनवरी - दिसंबर)	बैंककारी विनियमन अधि. 1949 की धारा 45 के तहत अनिवार्यतः समामेलित बैंक			बैंककारी विनियमन अधि. 1949 की धारा 44ए के तहत ऐच्छिक रूप से समामेलित बैंक			अन्यथा कार्य करना बंद करने वाले / अन्य बैंकों को देयताएं और आस्तियां अंतरित करने वाले बैंक		
	बैंकों की संख्या	प्रदत्त पूँजी	जमाराशियां	बैंकों की संख्या	प्रदत्त पूँजी	जमाराशियां	बैंकों की संख्या	प्रदत्त पूँजी	जमाराशियां
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1954	—	—	—	—	—	—	17	25	88
1955	—	—	—	—	—	—	11	23	20
1956	—	—	—	—	—	—	6	11	47
1957	—	—	—	1	5	115	10	19	23
1958	—	—	—	4	56	523	10	15	63
1959	—	—	—	4	4	33	20	26	110
1960	—	—	—	2	1	3	15	34	40
1961	30	198	1722	—	—	—	9	17	142
1962	1	1	6	3	20	122	22	55	134
1963	1	1	7	2	3	16	15	34	781
1964	9	36	438	7	23	147	63	55	569
1965	4	13	54	5	3	39	24	59	501
1966	—	—	—	—	—	—	7	19	453

स्रोत : शून्य अथवा नगण्य

स्रोत : भारत में बैंकों संबंधी सांख्यिकीय सारणियां, रिजर्व बैंक, 1962 तथा 1966।

समामेलन के अधीन बैंकों के कर्मचारियों की सेवा शर्तों संबंधी ब्यौरेवार प्रावधान भी निर्धारित किए गए।

3.52 1954 तथा 1966 के बीच, कई बैंकों को या तो समामेलित किया गया अथवा उन्होंने अन्यथा कार्य करना बंद कर दिया अथवा उनकी देयताओं और आस्तियों को अन्य बैंकों के पास अंतरित कर दिया गया। बैंकों को समामेलित करने के लिए 1960 में रिजर्व बैंक को औपचारिक अधिकार देने के पहले छह साल की अवधि के दौरान, कुल 83 बैंकों को समामेलित किया गया। तथापि, 1960 से 1966 तक की अवधि के बीच, 217 बैंकों को बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 45 (अनिवार्य समामेलन) तथा बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 44ए (ऐच्छिक समामेलन) जैसे विभिन्न उपबंधों के तहत समामेलित किया गया। अन्यथा बंद हो गए बैंकों की देयताओं और आस्तियों को अन्य बैंकों को अंतरित किया गया। सिर्फ वर्ष 1960 में, 30 बैंकों का समामेलन किया गया। तथापि, सजग नीति के तौर पर छोटे परंतु भलीभांति कार्य कर रहे बैंकों का समेकन नहीं किया गया। अन्य बैंकों को आस्तियों एवं देयताओं का अंतरण एक लोकप्रिय निकासी मार्ग साबित हुआ। सिर्फ 1964 में, 63 बैंक कारोबार से बाहर चले गये (सारणी 3.13)। बैंक समेकन की प्रक्रिया के साथ बैंक लाइसेंसिकरण नीति को सशक्त बनाया गया, जिसके तहत रिजर्व बैंक ने गैर अर्थक्षम इकाइयों के समामेलन का प्रयास किया। अपेक्षित मानदण्डों का पालन न करने वाले कई बैंकों का लाइसेंस भी रद्द कर दिया गया।

3.53 बैंकिंग क्षेत्र को सुदृढ़ करने की प्रक्रिया ने परिसमापन द्वारा गैर अर्थक्षम बैंकों को निकालने अथवा अन्य बैंकों द्वारा कार्य न करने वाले

बैंकों की आस्तियों के अधिग्रहण का रूप भी ले लिया। 1954 से 1959 तक की अवधि के दौरान, 106 बैंकों का परिसमापन कर दिया गया। इनमें से, 73 बैंकों का ऐच्छिक परिसमापन तथा 33 का अनिवार्य परिसमापन किया गया। 1960 से 1966 के बीच, 48 और बैंकों का परिसमापन किया गया (सारणी 3.14)।

3.54 अनिवार्य समामेलन तथा विलय की नीति के जरिए बैंकिंग क्षेत्र को सुदृढ़ करने की नीति से बैंकिंग क्षेत्र के समेकन में मदद मिली। इसकी सफलता गैर अनुसूचित बैंकों की संख्या 1951 के 474 से स्पष्ट रूप से कम होकर 1961 में 210 तथा और कम होकर 1967 में 20 हो जाने में देखी जा सकती है। उनके शाखा कार्यालयों की संख्या 1951 के 1504 से कम होकर 1961 में 622 तथा 1967 में 203 हो गयी (सारणी 3.15)।

3.55 बैंकों की विफलता तथा जमाकर्ताओं को हुई दिक्कतों के कारण रिजर्व बैंक ने जमाकर्ताओं के लिए सुरक्षा जाल का प्रावधान किया। बैंककारी कंपनी (दूसरा संशोधन) अधिनियम, 1960, जो 19 सितंबर 1960 को लागू हुआ, द्वारा परिसमापन में बैंकों के जमाकर्ताओं को त्वरित अदायगी सुकर बनाने का प्रावधान किया गया तथा सरकार और रिजर्व बैंक को कठिनाइयों के समय बैंकों का पुनर्वास करने की अतिरिक्त शक्तियां प्रदान की गयीं। संशोधन से पहले, अधिमानतापूर्ण उपचार के लिए पात्र प्रतिभूत लेनदारों और अन्य व्यक्तियों के दावों का निर्धारण करने की प्रक्रिया परिसमापनाधीन बैंकों के जमाकर्ताओं को भुगतान में होनेवाली काफी देरी के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार थी। नए उपबंध में यह अपेक्षा की गयी कि पहले जिन बैंकों का परिसमापन शुरू हुआ था, उनके समापन आदेश की

सारणी 3.14 : परिसमापनाधीन वाणिज्य बैंक : 1954-66

(राशि '000 रुपये में)

वर्ष (जनवरी - दिसंबर)	ऐच्छिक परिसमापन वाले बैंक			अनिवार्य परिसमापन वाले बैंक		
	बैंकों की संख्या	प्रदत्त पूंजी	जमाराशियां	बैंकों की संख्या	प्रदत्त पूंजी	जमाराशियां
1	2	3	4	5	6	7
1954	14	1374	96	6	2846	1140
1955	11	2655	199	6	2510	10102
1956	16	1452	499	6	695	1812
1957	16	1682	1659	3	917	2876
1958	9	927	1135	5	1367	10209
1959	7	566	6	7	2722	506
1960	4	238	34	5	5375	107027
1961	5	403	814	3	1106	3332
1962	4	786	12	3	969	5145
1963	1	90	11	1	224	1108
1964	3	225	-	-	-	-
1965	6	703	-	3	1359	137
1966	7	703	-	3	225	21

'-': शून्य अथवा नगण्य

स्रोत : भारत में बैंकों संबंधी सांख्यिकीय सारणियां, रिज़र्व बैंक, 1962 तथा 1966।

तारीख से तीन महीनों के भीतर अथवा संशोधन अधिनियम आरंभ होने की तारीख से तीन महीनों के भीतर ऐसा अधिमानतापूर्ण भुगतान किया जाना चाहिए अथवा उसके लिए प्रावधान किया जाना चाहिए। इसमें यह भी प्रावधान किया गया कि उक्त अधिनियम में यथाविनिर्दिष्ट तीन महीने की अवधि के भीतर अधिमानतापूर्ण भुगतान किये जाने के बाद, 250 रुपये की अधिकतम राशि के अधीन प्रत्येक बचत बैंक जमाकर्ता को उसके खाते में जमा शेष राशि अदा की जानी चाहिए।

3.56 भारत में बैंकों में छोटे जमाकर्ताओं की जमाराशियों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए, निक्षेप बीमा निगम अधिनियम, 1961 बनाया गया। तदनुसार, जनवरी 1962 में भारतीय निक्षेप बीमा निगम की स्थापना की गयी। उस समय भारत उन कुछ देशों में से एक था जिन्होंने ऐसी जमा बीमा की शुरुआत की थी; जमा बीमा शुरू करने वाला पहला देश अमरीका

था। इस योजना से यह आशा थी कि जमाकर्ताओं का विश्वास बैंकिंग प्रणाली में बढ़ेगा तथा इससे जमाराशियों का संग्रहण सुसाध्य होगा और बैंकिंग क्षेत्र के विस्तार और वृद्धि के संवर्धन में मदद मिलेगी। उक्त निगम ने एक निश्चित सीमा तक बीमाकृत बैंक के भीतर संपूर्ण जमाराशि अथवा उसके भाग की हानि के प्रति बीमा रक्षा उपलब्ध करायी।

3.57 बैंकिंग प्रणाली के एक विनियामक के रूप में, रिज़र्व बैंक को बैंकों का निरीक्षण करने के लिए बैंककारी कंपनी अधिनियम द्वारा अधिकार दिए गए। निदेशकों द्वारा जमाकर्ताओं की निधियों के दुर्विनियोजन के कारण केरल में हुई बैंकों की विफलताओं की घटनाओं ने निरीक्षण की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने की जरूरत को रेखांकित किया। तदनुसार, बैंकों का आकस्मिक निरीक्षण करने के लिए तथा धोखाधड़ी का पता लगाने हेतु पहले की तुलना में काफी अधिक शाखाओं को कवर करने के लिए निरीक्षण संबंधी नीति में परिवर्तन किए गए। इसके बाद कानून में परिवर्तन कर 1962 में भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम में अध्याय IIIक नामक एक नया अध्याय शामिल किया गया। बैंकिंग के विनियमन का संपूर्ण प्रयोजन यह था कि किसी प्रकार की अनियमितता की अनुमति देनेवाले कानून में मौजूद कमियों को बंद किया जाए। 1963 में एक संशोधन अधिनियम पारित किया गया जो 1 फरवरी 1964 से लागू हुआ तथा जिसने विशेष रूप से व्यक्तियों के विशेष समूहों द्वारा बैंकों के कार्यों पर नियंत्रण रखे जाने पर प्रतिबंध लगाने तथा बैंकों द्वारा दिए गए ऋण एवं अग्रिमों और गारंटियों पर प्रतिबंध लगाने के लिए रिज़र्व बैंक को और अधिक अधिकार प्रदान किए। इसने बैंकों के कार्यपालकों की नियुक्ति और उन्हें हटाने के बारे में भी रिज़र्व बैंक के अधिकार बढ़ा दिए।

सारणी 3.15 : भारत में अनुसूचित और गैर अनुसूचित वाणिज्य बैंक

बैंकों की श्रेणी	(दिसंबर-अंत)		
	1961	1966	1967
1	2	3	4
1. बैंकों की संख्या (रिपोर्ट देने वाले)	292	100	91
(क) अनुसूचित बैंक	82	73	71
(ख) गैर अनुसूचित बैंक	210	27	20
2. भारत में बैंकों के कार्यालयों की संख्या	5012	6593	6982
(क) अनुसूचित बैंक	4390	6380	6779
(ख) गैर अनुसूचित बैंक	622	213	203

स्रोत : बैंकिंग आयोग 1971 तथा भारत में बैंकों संबंधी सांख्यिकीय सारणियां (विभिन्न अंक)।

कृषि को उधार तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग का विस्तार

3.58 आजादी के बाद न सिर्फ परिचालन संबंधी माहौल में परिवर्तन हुआ अपितु नीतियों को भी योजनाबद्ध उद्देश्यों के अनुरूप बनाया गया। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विनियमन को भी संरक्षित किया गया। 1950 में संविधान अपनाए जाने तथा 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम पारित किए जाने से संपूर्ण देश में बैंकिंग कार्य को रिजर्व बैंक के पर्यवेक्षण में ला दिया गया। इनसे सरकार के बैंक के रूप में भी रिजर्व बैंक का दायरा बढ़ गया। रिजर्व बैंक से आशा थी कि वह योजनाबद्ध प्रयोजनों के लिए संसाधन अंतराल को पूरा करेगा। पहली पंचवर्षी योजना में यह देखा गया कि एक योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में केंद्रीय बैंकिंग को ऋण की समग्र आपूर्ति के विनियमन अथवा बैंक के ऋण प्रवाह के कुछ हद तक ऋणात्मक विनियमन के प्रति शायद ही सीमित रखा जा सके। इसे निम्नलिखित मामलों में प्रत्यक्ष और सक्रिय भूमिका निभानी होगी (i) पूरे देश में विकासात्मक कार्यक्रमों के वित्तपोषण हेतु अपेक्षित मशीनरी बनाने में अथवा बनाने में मदद करने में; तथा (ii) यह सुनिश्चित करने में कि उपलब्ध वित्त का प्रवाह अभिप्रेत दिशाओं में हो।

3.59 आजादी के बाद तैयार की गयी अधिकांश नीतियों की तह में परिवर्तन के एक महत्वपूर्ण एजेंट के रूप में बैंकिंग के उपयोग की सरकार की इच्छा थी। संस्थागत ऋण का दायरा बढ़ाने की दिशा में ये पहले प्रयास थे। इस प्रकार, भारत में बैंकिंग की 'निष्क्रिय' अथवा 'शुद्ध' भूमिका के लिए बहुत कम समर्थन था। वित्तीय संस्थाओं के बीच बैंकों को अद्वितीय माना गया तथा उन्हें योजनाबद्ध युग के आरंभ से विकासात्मक भूमिका दी गयी। जमासंग्रहण से प्राप्त संसाधनों को सर्वाधिक उत्पादक उपयोगों में लगाना अपेक्षित था और बैंकिंग प्रणाली से ऐसी आशा थी कि वह भुगतान प्रणाली के एक कारगर माध्यम के रूप में कार्य करेगी। ऐसा करने में बैंकिंग क्षेत्र द्वारा पूरे देश में संस्थागत ऋण का विस्तार किया जाना अपेक्षित था। इन परिवर्तनों की आवश्यकता

इस तथ्य के कारण महसूस की गयी कि देश की आजादी के समय भारत में बैंकिंग क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा, कमजोर और शहरी क्षेत्रों में संकेंद्रित था। संगठित क्षेत्र के अधिकांश बैंक प्रमुख रूप से कृषि उपज का लेनदेन करनेवाले व्यापारियों को ऋण प्रदान करते थे।

3.60 बैंकिंग का प्रवेश ग्रामीण और अर्द्धशहरी केंद्रों में नहीं हुआ था तथा सूदखोरी का अभी भी बोलबाला था। कृषि उत्पाद और ऋण के बाजारों के बीच बड़ी मात्रा में अंतर-संबंध मौजूद था तथा कृषि साहूकार और व्यापारी किसानों को अग्रिम देते थे तथा उसकी उपज बाजार मूल्य से कम दाम से खरीदते थे। ऋण तथा उत्पाद बाजारों के बीच इस प्रकार के अंतर-संबद्ध से ऊंची ब्याज दरों तथा कम उत्पाद मूल्य का चक्र चलता रहा जिससे उच्च ब्याज दर - उच्च ऋण - कम आय के स्वरूप का संतुलन पैदा हो गया। यह बना रहा क्योंकि कृषि, लघु उद्योगों, पेशेवरों और स्वनियोजित उद्यमियों, कारीगरों तथा छोटे व्यापारियों को संस्थागत बैंक ऋण उपलब्ध नहीं था। अनुसंधानकर्ताओं ने यह पाया कि चूंकि ग्रामीण ऋण बाजार पृथक थे, साहूकार/मकान मालिक एकाधिकार के साथ कार्य कर सकते थे तथा किसानों से अत्यधिक ऊंची दरों पर ब्याज वसूल सकते थे (भादुरी, 1977)। उत्पाद, ऋण और श्रम बाजारों के बीच अंतर-संबंध को सिर्फ संस्थागत ऋण के प्रसार द्वारा कारगर तरीके से तोड़ा जा सकता था। सहकारी संस्थाओं ने ग्रामीण क्षेत्र में प्रवेश कर लिया था परंतु वे कमजोर थीं। आजादी के समय, अधिकांश बैंक ऋण वाणिज्य और उद्योग को जाता था तथा कृषि को बहुत कम हिस्सा मिलता था (सारणी 3.16)। यह इस तथ्य के बावजूद था कि 1950 में जीडीपी का लगभग 55 प्रतिशत कृषि से आता था।

3.61 क्षेत्र के बारे में जानकारी के अभाव से सूचना की असममिति पैदा हुई तथा छोटे कृषि ऋण की स्वीकृति के लिए बैंकों से यह अपेक्षित था कि वे बड़ी संख्या में छोटे खाते रखें तथा यह कार्य समय-साध्य और कम लाभप्रद था। इसके अलावा उधार संबंधी कार्य मोटे तौर पर

सारणी 3.16 : अनुसूचित वाणिज्य बैंकों द्वारा ऋण का क्षेत्रवार विनियोजन

निम्नलिखित के अंत में	कुल (करोड़ रुपये)	कुल में हिस्सा (प्रतिशत)				
		उद्योग	वाणिज्य	कृषि	निजी और व्यावसायिक	अन्य
1	2	3	4	5	6	7
दिसंबर, 1949	439	30.4	51.4	1.9	8.7	7.6
मार्च, 1950	498	31.5	52.1	2.3	7.9	6.3
जून, 1950	476	32.5	50.1	3.2	8.2	6.0
सितंबर, 1950	438	34.0	47.6	3.3	9.4	5.6
दिसंबर, 1950	476	32.0	51.7	2.3	8.9	5.1

स्रोत : भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति, रिजर्व बैंक, 1951-52।

प्रतिभूति आधारित होते थे तथा छोटे उधारकर्ताओं के पास भूमि, जो प्रायः भार रहित नहीं होती थी, के अलावा बहुत कम प्रतिभूति होती थी। अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति के अनुसार, 1951-52 में किसानों का कुल उधार 750 करोड़ रुपए होने का अनुमान था। इसमें से, वाणिज्य बैंक सिर्फ 0.9 प्रतिशत देते थे, कृषि साहूकार 24.9 प्रतिशत तथा पेशेवर साहूकार और 44.8 प्रतिशत प्रदान करते थे। इस प्रकार, आजादी के समय वित्तीय प्रणाली प्रतिरूपी तौर पर अल्पविकसित थी। 1951 में देश में 551 वाणिज्य बैंक थे। आबादी के प्रति बैंक कार्यालय का अनुपात प्रति 1,36,000 व्यक्तियों के प्रति एक शाखा पर आश्चर्यजनक रूप से कम था²⁰। बचत की आदतें भी पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हुई थीं तथा बचत दर राष्ट्रीय आय का 10 प्रतिशत थी। अल्पविकसित बैंकिंग प्रणाली वित्तीय प्रणाली में गहराई में व्यापक कमी की विशेषता थी। कृषि क्षेत्र की जरूरतें पर्याप्त रूप से पूरी नहीं होती थीं क्योंकि बैंकों के पास उनका ग्रामीण परिचालन बढ़ाने के बारे में न तो कोई विशेषज्ञता थी और न कोई इच्छा। तथापि, बैंक व्यावसायिक घरानों द्वारा चलाए जाते थे जो लाभ और मूल उद्योगों के वित्तपोषण जैसे अन्य प्रयोजनों के लिए कार्य करते थे। उनमें से कई लोगों की कृषि परिचालन में कोई दिलचस्पी नहीं थी।

3.62 आजादी के समय ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाएं बढ़ाना एक प्रमुख उद्देश्य था। यह सुझाव दिया गया कि इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया को अपनी शाखाओं का विस्तार तालुका अथवा तहसील स्थित शहरों तक करना चाहिए जहां सरकारी लेनदेनों तथा व्यावसायिक संभाव्यताओं की मात्रा को देखते हुए ऐसा विस्तार अपेक्षित है²¹। इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया को 1 जुलाई 1951 से आरंभ कर पांच वर्ष के भीतर 114 कार्यालय खोलने का लक्ष्य दिया गया। अन्य वाणिज्य बैंकों तथा सहकारी बैंकों को सूचित किया गया कि वे अपनी शाखाओं का विस्तार तालुका शहरों, छोटे कस्बों और अर्द्धशहरी क्षेत्रों तक करने का प्रयास करें। गांवों के लिए, यह वांछनीय माना गया कि डाक बचत बैंकों और सहकारी बैंकों के तंत्र का विस्तार कर उनका भरपूर उपयोग किया जाना चाहिए। पांच वर्ष में 114 शाखाएं खोलने के लक्ष्य की तुलना में, इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया 20 जून 1955 तक सिर्फ 63 शाखाएं खोल सका।

3.63 प्रमुख रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था के कृषि आधार तथा कृषि और ग्रामीण विकास के लिए संस्थागत ऋण संरचना के विस्तार और समन्वय की तात्कालिक जरूरत के संदर्भ में रिजर्व बैंक की भूमिका अद्वितीय थी। रिजर्व बैंक/सरकार द्वारा त्रिस्तरीय नीतिगत पहलें की

गयीं। पहला, समस्या के आयाम को समझने के लिए एक समिति का गठन किया गया। दूसरा, इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया का राष्ट्रीयकरण किया गया। तीसरा, कृषि बैंकिंग के क्षेत्र में बैंक अधिकारियों के प्रशिक्षण संबंधी मुद्दे के समाधान के लिए एक संस्था का गठन किया गया।

3.64 ग्रामीण क्षेत्र के वित्तपोषण संबंधी चिंताओं को दूर करने में सक्षम होने हेतु जमीनी सच्चाई की समझ के लिए, रिजर्व बैंक ने 1951 में अखिल भारतीय ग्रामीण कृषि सर्वेक्षण समिति (एआइआरसीएस) का गठन किया। एआइआरसीएस सर्वेक्षण संबंधी परिणाम अगस्त 1954 में प्रस्तुत किए गए तथा उसी वर्ष दिसंबर में उन्हें प्रकाशित किया गया। उक्त सर्वेक्षण में रिजर्व बैंक की विकासात्मक भूमिका के बारे में बहुत स्पष्ट सुझाव दिए गए। अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति द्वारा प्रस्तावित कार्रवाई और संस्था निर्माण की कार्यसूची किसी भी मानदंड से व्यापित और आकांक्षा के रूप में प्रभावी थी²²। इसकी मूल सिफारिशें भी उतनी ही प्रभावी थीं। वस्तुतः भारत में बैंकिंग परिदृश्य में हुए अनेक परिवर्तनों का विकास इस रिपोर्ट की सिफारिशों में निहित है। इस सर्वेक्षण द्वारा इस मूलभूत विचार का समर्थन किया गया कि बैंकिंग द्वारा औसत भारतीय की समस्याओं के निराकरण में मदद की जानी चाहिए। सर्वेक्षण समिति ने यह पाया कि ग्रामीण ऋण प्रणाली की मुख्य कमी इसमें फोकस का अभाव है। यह सर्वेक्षण करने वाली निदेश समिति की यह राय थी कि कृषि ऋण की मात्रा उचित से कम है, यह सही प्रकार का नहीं है, इससे सही प्रयोजन पूरा नहीं होता तथा प्रायः यह सही व्यक्ति तक नहीं पहुंच पाता। समिति ने यह भी पाया कि कृषि ऋण के क्षेत्र में सहकारी संस्थाओं का कार्यनिष्पादन एक से अधिक रूपों में कम था, साथ ही किसानों तक ऋण पहुंचाने में सहकारी संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है और इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला गया कि 'सहकारिता विफल रही है, परंतु सहकारिता को सफल होना चाहिए' (मोहन, 2004क)। समिति की यह परिकल्पना थी कि विपणन, प्रोसेसिंग तथा भंडारण जैसे विशेष तौर पर विशेषज्ञता प्राप्त क्षेत्रों के लिए कृषि परिचालनों की वित्तीय जरूरतों को पूरा करने हेतु सहकारी ऋण बहुत उपयुक्त है। इसने नोट किया कि कृषि को दिए जाने वाले ऋण के संस्थानीकरण के संवर्धन में इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया की महत्वपूर्ण सहभागिता है और इस बात की संस्तुति की कि इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया और राज्य संबद्ध प्रमुख बैंकों का सांविधिक समामेलन कर भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई) बनाया जाए। रिपोर्ट में सूचित किया गया कि राष्ट्रीयकरण से विशेष तौर पर ग्रामीण क्षेत्र में शाखा विस्तार

²⁰ रिजर्व बैंक का इतिहास, खंड II, पृष्ठ 1.

²¹ ग्रामीण बैंकिंग जांच समिति (1950).

²² रिजर्व बैंक का इतिहास खंड I.

का त्वरित कार्यक्रम शुरू करना संभव होगा²³। भारतीय स्टेट बैंक बनाए जाने से ऐसी आशा थी कि राष्ट्रीय नीतियों के अनुसार बैंकिंग क्षेत्र का संचालन सुनिश्चित किया जा सकेगा। इससे सहकारी नेटवर्क की वृद्धि का पोषण करने का भी आशा थी। सर्वेक्षण के अनुसार, नकदी के सस्ते और सक्षम विप्रेषण के लिए सुविधाओं का अभाव ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी बैंकों की स्थापना में एक प्रमुख बाधा था। सिर्फ इंपीरियल बैंक (रिजर्व बैंक से इसे प्राप्त करेंसी चेस्टों के माध्यम से) इस प्रकार की सुविधाएं प्रदान कर सकता था।

3.65 अतः सरकार ने पहले इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया का राष्ट्रीयकरण इस उद्देश्य के साथ किया कि “बड़े पैमाने पर, विशेष रूप से ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में, बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार किया जा सके और अन्य विविध सार्वजनिक प्रयोजन पूरे किए जा सकें।” भारतीय स्टेट बैंक अधिनियम, 1955 पारित होने के साथ इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया को 1955 में भारतीय स्टेट बैंक के रूप में रूपांतरित किया गया। स्टेट बैंक के राष्ट्रीयकरण से ‘ऋण पात्रता’ से ‘प्रयोजन पात्रता’ की ओर ध्यान केंद्रित किए जाने संबंधी गतिशील परिवर्तन आने की आशा थी। बैंकों को इस प्रकार की संस्था बनाने का विचार था जो तेज सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रक्रिया में दक्ष माध्यम के रूप में कार्य कर सकें। एसबीआई तथा सरकार के बीच संबंध में दूरी बनाए रखने के लिए काफी सावधानी बरती गयी। इस संदर्भ में एसबीआई का स्वामित्व रिजर्व बैंक को अंतरित किया गया। ऐसा महसूस किया गया कि रिजर्व बैंक इस नयी संस्था की रक्षा राजनैतिक और प्रशासनिक दबावों से कर सकेगा तथा मोटे तौर पर वांछित उद्देश्यों के प्रति इसकी नीतियां अभिमुख करने के बावजूद सुदृढ़ बैंकिंग सिद्धांतों तथा कारोबार के उच्च मानकों का अनुपालन

सुनिश्चित कर सकेगा। यह भी विश्वास किया गया कि इस कदम से परिवर्तित नाम के तहत इंपीरियल बैंक के कारपोरेट स्वरूप की रक्षा की जा सकेगी²⁴।

3.66 भारतीय स्टेट बैंक से ऐसी अपेक्षा थी कि वह बैंक-सुविधारहित केंद्रों में पांच वर्ष के भीतर 400 शाखाएं खोलेगा, और उसने 416 शाखाएं खोलकर इस लक्ष्य को पार कर लिया (माथुर, 1995)। ऐसी परिकल्पना थी कि देश भर में केंद्र तथा राज्य सरकारों के बैंकिंग संबंधी लेनदेन करने के लिए एसबीआई रिजर्व बैंक के प्रधान एजेंट के रूप में कार्य करेगा। वस्तुतः इस उपाय से भारत में एक सशक्त ग्रामीण ऋण आंदोलन को समर्थन देने के उद्देश्यों को बढ़ावा मिला। इसकी स्थापना से बैंकिंग परिदृश्य में व्यापक परिवर्तन आया। भारतीय स्टेट बैंक की स्थापना से बैंक सुविधारहित केंद्रों में बड़ी संख्या में शाखाएं खोली गयीं। भारतीय स्टेट बैंक के ‘सरकारी’ स्वामित्व ने डाक घरों तथा भौतिक बचतों जैसे ‘सुरक्षित’ क्षेत्रों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में मदद की। शाखा नेटवर्क का विस्तार करने के निरंतर प्रयासों का बैंकों द्वारा जमा राशि संग्रहण तथा समग्र बचत दर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की कुल जमा राशियां, जिसमें 1951-1953 में ऋणात्मक वृद्धि दर दर्ज की गयी तथा 1953-54 में 1.9 प्रतिशत की अल्प सकारात्मक वृद्धि दर्ज की गयी, 1954-55 तथा 1956-57 की अवधि के दौरान 10-12 प्रतिशत बढ़ीं (सारणी 3.17)। जमासंग्रहण में वृद्धि को आय के स्तरों में वृद्धि द्वारा भी सुसाध्य बनाया गया। पंचवर्षीय योजना का अर्थव्यवस्था पर उच्च गुणक प्रभाव पड़ा। आय के स्तर में तेजी से वृद्धि हुई, जिससे बैंकिंग की आदत बढ़ी।

3.67 बैंकों द्वारा जमा संग्रहण में वृद्धि का वित्तीय बचतों पर अनुकूल प्रभाव पड़ा तथा 1954-55 से 1955-56 के दौरान उनमें तेज वृद्धि

सारणी 3.17 : अनुसूचित वाणिज्य बैंक - जमा संग्रहण

(राशि करोड़ रुपये में)

वर्ष (अप्रैल-मार्च)	मांग जमा राशियां	मांग जमा राशियों की वृद्धि दर (प्रतिशत)	आवधिक जमा राशियां	आवधिक जमा राशियों की वृद्धि दर (प्रतिशत)	समस्त जमा राशियां (2+4)	समस्त जमा राशियों की वृद्धि दर (प्रतिशत)
1	2	3	4	5	6	7
1951-52	566	-4.4	286	-1.4	852	-3.4
1952-53	522	-7.8	310	8.4	832	-2.3
1953-54	522	0.0	326	5.2	848	1.9
1954-55	568	8.6	375	15.0	943	11.2
1955-56	631	11.1	412	9.9	1043	10.6
1956-57	703	11.5	472	14.6	1176	12.7

स्रोत : हैडबुक ऑफ स्टैटिस्टिक्स ऑन दि इंडियन इकॉनॉमी, 2006-07 (रिजर्व बैंक)।

²³ रिजर्व बैंक का इतिहास खंड I, पृष्ठ 238

²⁴ रिजर्व बैंक का इतिहास खंड II, पृष्ठ 338.

हुई। 1953-54 तथा 1955-56 के दौरान वित्तीय बचतों में वृद्धि का एक हिस्सा भौतिक बचतों के वित्तीय बचतों में परिवर्तन से प्राप्त हुआ (सारणी 3.18)।

3.68 जिन 8 बैंकों ने एसबीआई के सहायक बैंकों का रूप लिया था उनका राष्ट्रीयकरण 1960 में कर दिया गया। इससे एक तिहाई बैंकिंग खंड सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण के तहत आ गया। औसत भारतीय को प्रायः अत्यधिक ब्याज दर- ऋण चक्र से मुक्त करने के लिए संस्थागत ऋण का विस्तार करने का विचार था।

3.69 समिति की एक अन्य सिफारिश अल्पावधि सहकारी ऋण संरचना के पुनर्विन्यास तथा कृषि विकास के लिए दीर्घावधि ऋण में विशेषज्ञता प्राप्त संस्थाओं के पुनर्गठन से संबंधित थी। उक्त रिपोर्ट में कृषि को मध्यावधि ऋण प्रदान करने के लिए पर्याप्त संस्थागत ऋण की जरूरत की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया। इन प्रयासों से अंततः 1963 में भारतीय कृषि पुनर्वित्त निगम का सृजन हुआ जिसका उद्देश्य पुनर्वित्त के माध्यम से निधि उपलब्ध कराना था। ऐसे निवेशों का वित्तपोषण करने के लिए 1 जुलाई 1963 के अधिनियम द्वारा कृषि पुनर्वित्त निगम (एआरसी) की स्थापना की गयी। इसका उद्देश्य केंद्रीय भूमि बंधक बैंकों, राज्य सहकारी बैंकों तथा अनुसूचित वाणिज्य बैंकों को पुनर्वित्त उपलब्ध कराना था।

3.70 बैंकिंग क्षेत्र में प्रशिक्षित तथा अनुभवी व्यावसायिक प्रबंधकों की वास्तविक कमी की समस्या का समाधान करने के लिए, रिजर्व बैंक ने उनके प्रबंधकीय स्टाफ की दक्षता में सुधार लाने हेतु कृषि-ग्रामीण विकास, सहकारी बैंकिंग तथा संबंधित क्षेत्रों में शामिल कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण सुविधाएं प्रदान करने का कार्य शुरू किया। तदनुसार, रिजर्व बैंक ने 1954 में “बैंक कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान करने

तथा भारत में बैंकों के प्रबंधन की गुणवत्ता में सुधार लाने के प्रयोजन” के लिए बैंकर प्रशिक्षण महाविद्यालय की स्थापना की²⁵।

3.71 बैंककारी कंपनी अधिनियम (धारा 23) की यह अपेक्षा थी कि बैंकों को नए स्थान पर कारोबार शुरू करने से पहले रिजर्व बैंक की अनुमति प्राप्त करनी चाहिए। संस्थागत ऋण के जाल का विस्तार करने के अधिदेश का समाधान मई 1962 में ‘नयी शाखा लाइसेंसिकरण नीति’ लागू करके किया गया। बैंक विस्तार नीति में प्रवेश स्तर पर कुछ मानदंड निर्धारित किए गए ताकि उन कई अन्य देशों की तरह विवेकपूर्ण अपेक्षाओं का खयाल रखा जा सके जिन्होंने बैंकों के प्रवेश के लिए व्यापक कानूनी और विनियामक मानदंड स्थापित किए थे। इसके पीछे तर्क यह था कि बैंक की आंतरिक नियंत्रण संरचना को प्रबलित किया जाए तथा बाजार में अनुशासन सुनिश्चित किया जाए। इस नीति से बैंकिंग के प्रसार का सामाजिक लक्ष्य भी पूरा हुआ क्योंकि इसमें बैंक सुविधारहित क्षेत्रों में बैंक शुरू करने पर बल दिया गया। प्रति बैंक कार्यालय आबादी संबंधी आंकड़ों की जांच कर बैंक सुविधारहित क्षेत्रों की पहचान की गयी। नयी लाइसेंसिकरण नीति में पूरे देश में बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार करने पर ध्यान केंद्रित किया गया। नयी नीति आरंभ होने के पहले, शाखा लाइसेंस प्राथमिक तौर पर बैंकों की वित्तीय स्थिति के आधार पर स्वीकृत किए जाते थे। यह महसूस किया गया कि आवेदक बैंक की वित्तीय स्थिति के साथ नए कार्यालय खोलने की अनुमति को संबद्ध करके इसके प्रबंधन की सामान्य गुणवत्ता, इसकी पूंजी संरचना की पर्याप्तता तथा भविष्य में इसके अर्जन की संभावनाओं का समाधान किया जा सकेगा। बैंकों की अर्थक्षमता के मुद्दे के साथ छोटे बैंकों का विस्तार हतोत्साहित होगा। इस प्रकार, उक्त नीति में बड़े और अखिल भारतीय बैंकों के पक्ष में भेदभाव किया गया।

सारणी 3.18 : घरेलू क्षेत्र की बचत

(राशि करोड़ रुपये में)

वर्ष (अप्रैल- मार्च)	घरेलू क्षेत्र की वित्तीय बचतें	घरेलू क्षेत्र की वित्तीय बचतों में वृद्धि (प्रतिशत)	घरेलू क्षेत्र की भौतिक बचतें	घरेलू क्षेत्र की भौतिक बचतों में वृद्धि (प्रतिशत)	कुल घरेलू बचतें (2+4)	कुल घरेलू बचतों में वृद्धि (प्रतिशत)	सकल देशी बचतें	सकल देशी बचतों में वृद्धि (प्रतिशत)	जीडीपी के प्रति कुल घरेलू बचतें (प्रतिशत)
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
1951-52	14	-77.4	532	3.1	546	-5.5	969	11.3	5.3
1952-53	72	414.3	527	-0.9	599	9.7	845	-12.8	5.9
1953-54	142	97.2	474	-10.1	616	2.8	875	3.6	5.6
1954-55	282	98.6	389	-17.9	671	8.9	988	12.9	6.5
1955-56	429	52.1	562	44.5	991	47.7	1356	37.3	9.4

स्रोत : हैडबुक ऑफ स्टैटिस्टिक्स ऑन दि इंडियन इकॉनॉमी, 2006-07 (रिजर्व बैंक)।

²⁵ भारतीय रिजर्व बैंक का इतिहास खंड II, पृष्ठ 425.

सारणी 3.19 : वाणिज्य बैंकों का शाखा विस्तार

दिसंबर-अंत	ग्रामीण	अर्ध-शहरी	शहरी/महानगरीय	कुल
1	2	3	4	5
1952	540 (13.3)	1942 (47.8)	1451 (35.7)	4061#
1960	831 (16.5)	2512 (50.0)	1633 (33.5)	5026
1965	801 (13.1)	2836 (46.2)	2354 (38.4)	6133*
1967	1247 (17.9)	3022 (43.3)	2716 (38.9)	6985

: 128 शाखाएं अवर्गीकृत थीं।

* : 142 शाखाएं अवर्गीकृत थीं।

नोट : कोष्ठकों के आंकड़े कुल का प्रतिशत हैं।

स्रोत : भारत स्थित बैंकों से संबंधित सांख्यिकीय सार, विभिन्न अंक।

3.72 1913 तथा 1955 के बीच प्रत्येक एकल वर्ष में, भारत में कई बैंक विफल हुए (अनुबंध III.1)। 1945 तक सूचना देने वाले बैंकों की संख्या में वृद्धि हुई, परंतु उसके बाद उसमें निरंतर गिरावट आयी (अनुबंध III.2)।

3.73 1952 तथा 1960 के बीच तथा आगे 1960 और 1967 के बीच शाखाओं की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। प्रति कार्यालय आबादी 1951 के 1,36,000 से घटकर 1960 में 92,000 तथा 1967 में और घटकर 65,000 रह गयी। तथापि, ग्रामीण/अर्धशहरी तथा शहरी/महानगरीय केंद्रों में शाखाओं का स्वरूप मोटे तौर पर अपरिवर्तित बना रहा (सारणी 3.19)। अनुसूचित वाणिज्य बैंकों द्वारा वितरित ऋण में कृषि के हिस्से में भी सुधार नहीं हुआ। कृषि को ऋण मात्र 2.2 प्रतिशत था अर्थात्, 1951 और 1967 के बीच मात्र 0.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि इसके ठीक विपरीत उद्योग का हिस्सा 1951 के 34 प्रतिशत से लगभग दुगुना होकर 1967 में 64.3 प्रतिशत हो गया (सारणी 3.20)।

सारणी 3.20: विभिन्न क्षेत्रों को अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के अग्रिम

(राशि करोड़ रुपये में)

क्षेत्र	मार्च 1951 का अंत		मार्च 1967 का अंत	
	राशि	कुल अग्रिमों में हिस्सा (प्रतिशत)	राशि	कुल अग्रिमों में हिस्सा (प्रतिशत)
1	2	3	4	5
उद्योग	199	34.0	1747	64.3
वाणिज्य	211	36.0	527	19.4
वित्तीय	74	12.7	97	3.6
वैयक्तिक	40	6.8	115	4.2
कृषि	12	2.1	57	2.2
अन्य	49	8.4	174	6.3
कुल	585	100	2716	100

स्रोत : भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति की रिपोर्ट, 1951-52 तथा 1967-68।

ब्याज दरों तथा व्यष्टि नियंत्रणों की नियंत्रित संरचना का उदय

3.74 यह अवधि मौद्रिक नीति के लिए भी कठिन थी क्योंकि इसमें राजकोषीय नीति का निभाव करना था जोकि दो युद्धों और एक सूखे के कारण दबाव में थी। बढ़ते हुए घाटे और साथ में बढ़ती हुई मुद्रास्फीति के कारण ब्याज दरों की नियंत्रित संरचना तथा कई अन्य व्यष्टि स्तरीय नियंत्रणों का उदय हुआ। आरंभिक वर्षों में, रिजर्व बैंक बैंक ऋण की लागत को प्रभावित करने के लिए बैंक दर जैसी अप्रत्यक्ष लिखतों के बजाय बैंकों की उधार दरों के ऊपर प्रत्यक्ष नियंत्रण पर निर्भर रहा। ऐसा आम तौर पर न्यूनतम ब्याज दरें निर्धारित करके किया गया। इन अनिवार्यताओं से ब्याज दरों के और उप-वर्गीकरण की अपेक्षा की गयी तथा चयनित ऋण नियंत्रण के तहत शामिल विभिन्न पण्यों के प्रति दिए जाने वाले ऋण के प्रति अलग से न्यूनतम उधार दरें निर्धारित की जाने लगीं। साथ ही, कुछ प्रयोजनों अथवा कुछ क्षेत्रों के लिए दिए जाने वाले अग्रिमों पर रियायती अथवा उच्चतम सीमा वाली ब्याज दरें लागू की गयीं ताकि ब्याज का भार कम करके उनके विकास को सुकर बनाया जाए। जमाराशियों पर ब्याज दरें सितंबर 1964 में भी विनियमित की गयीं। जमाराशियों पर दरें निर्धारित करने का उद्देश्य यह था कि जमाराशियों के लिए बैंकों के बीच अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा को टाला जाए तथा जमा दरों के स्तर को बैंकों की उधार दरों के अनुरूप रखते हुए बैंकों की लाभप्रदता सुनिश्चित की जाए। इनके पहले, ब्याज दरों में परिवर्तन महत्वपूर्ण भारतीय और विदेशी बैंकों के बीच ऐच्छिक अंतर-बैंक करारों द्वारा नियंत्रित था जिसके तहत ब्याज दरों पर अधिकतम सीमा निर्धारित की जाती थी। इस प्रकार, ब्याज दर विनियमन का उद्देश्य बचत दर बढ़ाने के साथ उत्पादक कार्यकलापों के लिए ऋण की लागत को उचित रूप से निम्न स्तर पर रखने जैसे विरोधी उद्देश्यों को संतुष्ट करना था। विरोधी दिखायी देनेवाले इन उद्देश्यों का समाधान जमाकर्ता, उधारकर्ता, प्रयोजन, उधारकर्ता की पृष्ठभूमि, उसकी आर्थिक हैसियत, ऋण की स्वीकृति किस प्रकार के कार्यकलाप के लिए की गयी तथा ऐसे ऋण की राशि के अनुसार ब्याज दरें निर्धारित करके किया गया। जमा श्रेणियों के बीच ब्याज दर में परिवर्तन कर के भी जमाराशियों के स्वरूप में कुछ बदलाव किया गया। दीर्घावधि जमाराशियों को प्रोत्साहित करने के लिए, जमा दरों पर अधिकतम सीमा तथा दीर्घावधि जमाराशियों के लिए न्यूनतम सीमा के विनिर्देश निर्धारित किए गए। योजनाबद्ध विकास के लिए संसाधनों की जरूरत ने क्रमिक रूप से सरकार की उधार राशियों में वृद्धि की। वृद्धि के संवर्धन के उद्देश्यों के अलावा सरकारी उधार की लागत कम रखने के अभिभावी उद्देश्य, तथा एक बार बढ़ा दिए जाने पर बैंक जमाराशियों पर ब्याज दरें कम करने में होनेवाली कठिनाई के कारण ब्याज दर निर्धारण में काफी अनमनीयता आ गयी। जहां कुछ मात्रा में सभी लक्षित उद्देश्य पूरे किए गए, मौद्रिक नीति के संकेत के रूप में ब्याज दरों ने कार्य करना बंद कर दिया। बैंक प्रतिस्पर्धी ब्याज दरें निर्धारित कर परस्पर सामान्यतः प्रतिस्पर्धा करते हैं। तथापि, नियंत्रित ढांचे के तहत

बैंकों के स्प्रेड को भलीभांति तय किया गया था तथा बैंकों ने अपने संसाधनों को इष्टतम बनाने, प्रतिस्पर्धी दरों का प्रस्ताव करने और कारोबार बनाए रखने संबंधी सभी पहलें खो दीं। इसका शुद्ध परिणाम यह हुआ कि उधारकर्ताओं को ऊंची दरों पर ब्याज अदा करना पड़ा। ब्याज दरों के नियंत्रित ढांचे के कारण बैंक उधारकर्ताओं की साखपात्रता के आधार पर अपने उत्पादों का मूल्य नहीं निर्धारित कर सके तथा इसके कारण भी संसाधनों का गलत आबंटन हुआ।

3.75 1961 से 1967 तक की अवधि देश के लिए विशेष रूप से कठिन थी। इन वर्षों के दौरान दो युद्ध तथा खराब फसल के कई मौसम देखे गए। अस्थिर स्थिति तथा कृषि में स्थिरता की पृष्ठभूमि में वित्तपोषित किए जानेवाले सार्वजनिक व्यय की बढ़ी हुई अपेक्षाओं को देखते हुए, सरकार ने यह सुनिश्चित करने के लिए कोई प्रयास बाकी नहीं रखा कि बैंकिंग क्षेत्र के संसाधन सट्टापूरण अथवा अनुत्पादक सरणियों में न जाने पाएं। मुद्रास्फीति अधिक थी तथा समय-समय पर कमियां भी देखी गईं।

3.76 1966 में, बैंकिंग क्षेत्र को चयनात्मक ऋण नियंत्रण के अधीन अधिकाधिक रूप में लाया गया। कुछ संस्थाओं के पास संसाधन संकेंद्रित होने के मुद्दे के कारण वास्तविक उत्पादक क्षेत्रों की जरूरतें पूरी न हो सकीं। अतः यह निर्णय लिया गया कि ऋण के कारगर उपयोग का संवर्धन करने के उपाय किए जाएं तथा दुर्लभ ऋण का पूर्वक्रय करने से बड़े उधारकर्ताओं को रोका जाए और कुछ वर्षों के दौरान घोषित राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के समग्र संदर्भ में बैंक ऋण द्वारा समाविष्ट ऋणकर्ताओं के दायरे का विस्तार किया जाए। 1965 में लागू ऋण प्राधिकरण योजना (सीएएस) के तहत वाणिज्यिक बैंकों से यह अपेक्षा की गई कि वह समय-समय पर संशोधित निर्धारित मानदंड के ऊपर कोई नई कार्यशील पूंजी सीमा स्वीकृत करने के लिए रिजर्व बैंक की पूर्वानुमति प्राप्त करें। पहले यह सीमा जमानती और/अथवा गैर-जमानती आधार पर किसी एक पक्षकार के लिए एक करोड़ रुपए या अधिक अथवा ऐसी कोई सीमा, जो समग्र बैंकिंग प्रणाली से ऐसे एक पक्षकार को प्राप्त कुल सीमाओं को एक करोड़ रुपए अथवा अधिक तक ले जाए, पर तय की गई। जहां पहले कुछ वर्षों में, सीएएस का अभिप्राय प्रस्तावित ऋण सुविधाओं की संवीक्षा करने से अधिक कुछ नहीं था ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि बैंकों द्वारा बड़े उधारकर्ताओं का अनुचित रूप से पक्ष न लिया जाए, वहीं बाद के वर्षों में इसका अभिप्राय पंचवर्षीय योजनाओं की अपेक्षाओं तथा बैंकों के उधार कार्यकलापों के बीच निकटतर संरेखण प्राप्त करना माना जाने लगा।

3.77 कुल मिलाकर, आजादी के आरंभ के चरण में मौजूद बैंकिंग परिदृश्य की तीन प्रमुख असंतोषजनक विशेषताएं थीं। पहला, बैंकों की विफलताओं ने बैंकिंग प्रणाली की सुदृढ़ता और स्थिरता के बारे में चिंता उत्पन्न कर दी। दूसरा, कुछ व्यावसायिक परिवारों अथवा समूहों

के हाथों में जमा संग्रहण से प्राप्त संसाधनों का व्यापक संकेंद्रण था। बैंकों ने निधियां जुटायीं तथा उन्हें व्यापक तौर पर अपनी नियंत्रक संस्थाओं को उधार के रूप में प्रदान किया। तीसरा, जहां तक बैंक ऋण का संबंध था, कृषि की अब तक उपेक्षा की गई। इस अवधि की एक प्रमुख गतिविधि बैंककारी विनियमन अधिनियम पारित करना थी जिसने रिजर्व बैंक को बैंकिंग क्षेत्र के विनियमन की शक्तियां प्रदान कीं। ये शक्तियां आवश्यक थीं क्योंकि आजादी के बाद भी बैंकों का विफल होना जारी रहा हालांकि विफल हुए बैंकों की संख्या कम हो गई। रिजर्व बैंक कुछ समय में बैंकिंग क्षेत्र की सुरक्षा और सुदृढ़ता में सुधार लाने में सफल रहा क्योंकि कई कमजोर बैंकों (जिनमें से अधिकांश गैर अनुसूचित थे) को समामेलन/परिसमापन के माध्यम से समाप्त कर दिया गया। फलस्वरूप, गैर अनुसूचित बैंकों की संख्या 1951 के 475 से तेजी से गिरकर 1967 में 20 रह गई। व्यापक सार्वजनिक निवेश के 'गुणक' प्रभाव से गति पाने के कारण बैंकिंग क्षेत्र में निरंतर वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप इस अवधि के दौरान अर्थव्यवस्था में आय में वृद्धि हुई तथा संरचनागत परिवर्तन हुए।

3.78 आर्थिक विकास के लिए योजना तैयार किए जाने तथा अर्थव्यवस्था में बैंक भूमिका के बारे में सामाजिक जागरूकता बढ़ने के साथ यह महसूस किया गया कि उस समय की वाणिज्य बैंक उधार प्रणाली में बहुत कम सामाजिक तत्व था तथा इससे आर्थिक शक्ति के संकेंद्रण को मदद मिली। यह महसूस किया गया कि यह प्रणाली अर्थव्यवस्था के कमजोर वर्गों, लघु उद्योग और कृषि की जरूरतें पूरी नहीं कर रही थी क्योंकि इसमें बड़े ग्राहकों को उधार देने पर ध्यान केंद्रित था। यद्यपि भारतीय बैंकिंग प्रणाली ने 1950 और 1960 के दशक में काफी प्रगति की, इसके लाभ ऋण की उपलब्धता के रूप में आम आदमी तक नहीं पहुंच सके। इसका मुख्य कारण बैंकों तथा औद्योगिक घरानों के बीच अंतर्बन्धन (नेक्सस) था जिन्होंने बैंक ऋण का बड़ा भाग हथिया लिया तथा कृषि और लघु उद्योगों के लिए बहुत कम भाग बच पाया। बैंक ऋण का इस प्रकार का आबंटन ऋण का साम्यिक आबंटन प्राप्त करने के लक्ष्य तथा पंचवर्षीय योजनाओं में निर्धारित सापेक्ष प्राथमिकताओं के अनुरूप नहीं था। संस्थागत ऋण की अपेक्षा और आपूर्ति के बीच का ऋण अंतराल सहकारी संस्थाओं द्वारा अनिवार्य रूप से नहीं भरा जा सका। अतः कृषि के लिए ऋण का प्रवाह बढ़ाने के प्रयास किए गए।

3.79 स्वतंत्रता की पूर्वसंध्या पर, बैंकिंग प्रणाली प्रमुख रूप से शहरी और महानगरी क्षेत्रों में संकेंद्रित थी। स्वतंत्रता की आरंभिक अवधि में, बैंकिंग को विशेष रूप से भारतीय स्टेट बैंक और शाखा लाइसेंसिंग नीति के जरिए ग्रामीण तथा उपेक्षित क्षेत्रों तक प्रसारित करने के प्रयास किए गए। बैंक शाखाओं की संख्या 1951 के 4151 से बढ़कर 1967 में 7025 हो गई। इस वृद्धि का मुख्य कारण अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की

संख्या में वृद्धि था, जो 1951 के 2647 कार्यालयों (92 अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के) से बढ़कर 1967 में 6816 कार्यालय (71 अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के) तक पहुंच गई। प्रति शाखा औसत आबादी 1951 के 1,36,000 से घटकर 1967 में 65,000 रह गई। तथापि, इस अवधि में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में बैंक शाखाओं का पैटर्न मोटे तौर पर वैसा ही बना रहा। 1951 तथा 1967 के बीच कुल बैंक ऋण में कृषि का हिस्सा भी कमोबेश उसी स्तर पर रहा। इस अवधि में, उत्पादक कार्यकलापों के लिए ऋण की लागत उचित स्तर पर कम रखते हुए बचत दरें बढ़ाने जैसे विभिन्न उद्देश्यों के कारण ब्याज दरों की संरचना तथा अन्य व्यष्टि नियंत्रण जटिल हो गए। इस अवधि में कई अन्य नियंत्रण यथा ऋण प्राधिकरण योजना तथा चयनात्मक ऋण नियंत्रण भी देखे गए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ऋण कुछ एक हाथों तक संकेंद्रित न रहे तथा यह सुवितरित हो।

IV. बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण - 1967 से 1991

3.80 स्वतंत्रता के समय बैंकिंग से संबंधित तीन प्रमुख असंतोषजनक विशेषताओं में से दो, अर्थात् बैंक और उद्योग के बीच अंतर्बन्धन तथा कृषि की उपेक्षा, स्वतंत्रता के बीस वर्ष बाद भी प्राधिकारियों के लिए चिंता का कारण बनी रहीं। इस बात की आशंका थी कि कुछ व्यावसायिक घराने उनसे संबद्ध बैंकों के माध्यम से देश की बैंकिंग आस्तियों के महत्वपूर्ण भाग पर नियंत्रण कर सकते हैं। इसके अलावा, इस प्रकार का नियंत्रण जमाकर्ताओं के हितों के लिए भी खतरनाक हो सकता है, यदि इसके फलस्वरूप बैंकों का एक्सपोजर व्यक्तिगत फर्मों अथवा व्यावसायिक समूहों के प्रति अत्यधिक बढ़ जाए।²⁶

3.81 इन मसलों का समाधान करने के लिए, दिसंबर 1957 में बैंकिंग विधि (संशोधन) अधिनियम, 1968 के जरिए बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण की संकल्पना लागू की गई, जो 1 फरवरी 1969 से प्रभावी हुई। उक्त अधिनियम के अनुसार किसी बैंक के निदेशक मंडल के कुल सदस्यों में से कम से कम 51 प्रतिशत सदस्य ऐसे होने चाहिए जिनके पास लेखाशास्त्र, कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था, बैंकिंग सहकारिता, अर्थशास्त्र, वित्त, विधि तथा लघु उद्योग जैसे एक या अधिक मामलों में विशेष जानकारी अथवा व्यावहारिक अनुभव हो। इसके अलावा, प्रत्येक बैंक में एक ऐसा पूर्णकालिक अध्यक्ष होना चाहिए जो उद्योगपति नहीं हो परंतु एक पेशेवर बैंकर हो तथा उसके पास बैंकिंग (वित्तीय संस्थाओं सहित) अथवा वित्तीय, आर्थिक या व्यावसायिक प्रकाशन की विशेष जानकारी तथा व्यावहारिक अनुभव हो; उसकी अवधि एक समय पर 5 साल से अधिक की नहीं होगी। परिस्थितियों की मांग के अनुसार रिजर्व बैंक को न सिर्फ अध्यक्ष अपितु किसी निदेशक, मुख्य कार्यपालक अधिकारी (उसका जो भी नाम हो) अथवा

अन्य किसी अधिकारी अथवा बैंक के किसी कर्मचारी को नियुक्त करने, हटाने अथवा उसकी सेवाएं समाप्त करने की शक्तियां प्रदान की गईं। उक्त कार्य करते हुए, रिजर्व बैंक से यह अपेक्षा की गई कि वह न सिर्फ संबंधित बैंक अथवा उसके निदेशकों के हितों को ध्यान में रखे अपितु बैंकिंग नीति के हितों या सार्वजनिक हित को भी ध्यान में रखे।

3.82 सामाजिक नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य यह था - बैंक ऋण का अधिक विस्तार करना, इसके दुरुपयोग को रोकना, प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र को ऋण की अधिक मात्रा निर्दिष्ट करना तथा इसे आर्थिक विकास का अधिक कारगर साधन बनाना। बैंक प्रबंधन के लिए उचित दिशानिर्देश तैयार करने तथा योजना की प्राथमिकता के अनुरूप निर्णय लेने की प्रक्रिया के पुनरभिमुखीकरण का संवर्धन करने के लिए सामाजिक नियंत्रण आवश्यक था। यह महसूस किया गया कि बैंक ऋण की मांग के आवधिक आकलन, उधार देने के लिए प्राथमिकताओं के निर्धारण तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के बीच निवेश और बैंकिंग प्रणाली द्वारा इनके बारे में उचित अनुवर्ती कार्रवाई की मदद से ऋण का एक उद्देश्यपूर्ण और साम्यिक वितरण सुनिश्चित किया जाए। ऐसी आशा की गई कि ऐसे उपाय से बैंकिंग प्रणाली को आर्थिक नीति की आवश्यकताओं के अधिक अनुरूप करना सुनिश्चित किया जा सकेगा। योजना की प्राथमिकता के अनुसार ऋण के आबंटन में रिजर्व बैंक तथा सरकार की सहायता के लिए फरवरी 1968 में राष्ट्रीय ऋण परिषद (एनसीसी) का गठन किया गया। इसे निम्नलिखित कार्य सौंपे गए - (i) अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों से बैंक ऋण की मांग का अनुमान लगाना; तथा (ii) प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्रों, विशेष रूप से कृषि, लघु उद्योग और निर्यात की जरूरतों तथा संसाधनों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए ऋण की स्वीकृति अथवा निवेश के लिए प्राथमिकता निर्धारित करना। उक्त परिषद ने वाणिज्य तथा सहकारी बैंकों और अन्य विशेषज्ञ संस्थाओं के उधार और निवेश की नीति का समन्वयन करके संसाधनों के इष्टतम उपयोग के बारे में कार्य किया। व्यापक तौर पर, वाणिज्य बैंकिंग क्षेत्र तथा सहकारिताओं द्वारा अत्यधिक दर पर ब्याज लगाने वाले साहूकारों और उनके देशी अलग-अलग रूपों में कार्य करने वाले सूदखोरों के नेटवर्क को प्रतिस्थापित किया जाना था। राष्ट्रीय ऋण परिषद की सिफारिश के अनुसार, 1 फरवरी 1969 को बैंककारी विनियमन अधिनियम को संशोधित किया गया ताकि कृषि, लघु उद्योग, सहकारिता, ग्रामीण अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में विशेष जानकारी या व्यावहारिक अनुभव रखने वाले निदेशकों की नियुक्ति रिजर्व बैंक के अनुमोदन से वाणिज्य बैंकों के निदेशक मंडल के सदस्यों के रूप में की जा सके। सामाजिक नियंत्रण की योजना का उद्देश्य यह था कि वाणिज्य बैंकों द्वारा ऋण के वितरण और बड़े व्यावसायिक घरानों एवं बड़े बैंकों के बीच के अंतर्बन्धनों

²⁶ भारिबैंक (इतिहास) खंड 2

को तोड़कर प्रबंधन में कुछ परिवर्तन लाए जाएं। बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण की प्रणाली के बावजूद, आबादी का बड़ा भाग संगठित क्षेत्र ऋण की परिधि के बाहर बना रहा।

बैंकों का राष्ट्रीयकरण तथा बैंकिंग का विस्तार

3.83 यद्यपि बैंकिंग प्रणाली ने 1950 और 1960 के दशक में जमा वृद्धि के रूप में कुछ प्रगति की थी, इसका विस्तार मुख्यतः शहरी क्षेत्रों में संकेद्रित था। सामाजिक उद्देश्यों से संबंधित प्रगति पर्याप्त नहीं थी। वाणिज्य तथा उद्योग के नेताओं द्वारा प्रमुख बैंकों पर नियंत्रण भारतीय वाणिज्य बैंकिंग की उल्लेखनीय विशेषता थी। बैंकों को वाणिज्यिक सिद्धांतों के बजाय उनकी अपेक्षाओं को संतुष्ट करने के लिए चलाया जाता था। फलस्वरूप बैंकों के पूंजी आधार में क्रमिक रूप से गिरावट आई। जमाराशियों के प्रति प्रदत्त पूंजी तथा आरक्षित निधियों का अनुपात 1951 के 9.7 प्रतिशत से 75 प्रतिशत से अधिक गिरकर 1969 में 2.2 प्रतिशत रह गया।²⁷ उद्योगपति शेरधरकों की अपनी पूंजी की तुलना में जमाराशियों में तीव्र वृद्धि के कारण उन्हें अत्यधिक लिवरेज का फायदा हुआ। यह महसूस किया गया कि यदि बैंक की निधियों को सामाजिक न्याय के साथ तीव्र आर्थिक वृद्धि के लिए उपयोग में लाया जाना है, तो बैंकिंग प्रणाली के कम से कम प्रमुख खंडों का राष्ट्रीयकरण करने का कोई विकल्प नहीं है। तदनुसार, सरकार ने बैंकिंग कंपनी (उपक्रमों का अर्जन और अंतरण) अध्यादेश, 1969 जारी कर 50 करोड़ रुपए से अधिक जमाराशिवाले 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया। इन बैंकों के नाम हैं - सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, बैंक ऑफ महाराष्ट्र, देना बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, सिंडिकेट बैंक, केनरा बैंक, इंडियन ओवरसीज बैंक, इंडियन बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा,

यूनियन बैंक, इलाहाबाद बैंक, युनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया, यूको बैंक और बैंक ऑफ इंडिया। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय नीति के अनुरूप अर्थव्यवस्था के विकास की जरूरतें बेहतर तरीके से पूरी करना था।

3.84 ऐसा माना गया कि राष्ट्रीयकरण से राष्ट्र के संकल्पित उद्देश्यों और नीतियों के कार्यान्वयन में नए चरण की शुरुआत होगी। यह भी महसूस किया गया कि बैंक जमाराशियों का उपयोग कुछ उद्योगों तथा व्यावसायिक घरानों के बजाए समग्र देश का और अधिक आर्थिक विकास करने के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार राष्ट्रीयकृत बैंकों के समक्ष तात्कालिक कार्य यह था कि वे बड़े पैमाने पर जमाराशियां जुटाएं तथा उसे सभी उत्पादक कार्यकलापों के लिए, उधारकर्ता के आकार और सामाजिक हैसियत से निरपेक्ष, विशेष तौर पर समाज के कमजोर वर्गों के लिए उधार के रूप में दें। राष्ट्रीयकरण की पूर्वसंध्या पर, बैंक निश्चित रूप से नगर के प्रति अभिमुख थे क्योंकि उनकी कुल जमाराशियों का लगभग 44 प्रतिशत तथा कुल ऋण का 60 प्रतिशत पांच केंद्रों से संबंधित था (सारणी 3.21)।

3.85 1969 में राष्ट्रीयकरण के बाद भारतीय बैंकिंग प्रणाली का बड़ा संरचनागत रूपांतरण हुआ। नगर के प्रति अभिमुखता के मुद्दे का हल निकालने के लिए, बैंक सुविधा रहित क्षेत्रों में बैंकिंग की सुविधाएं उपलब्ध कराने पर विशेष बल दिया गया। इसका निष्पादन दो निश्चित उपाय करके किया गया अर्थात् एक विशिष्ट शाखा लाइसेंस नीति बनायी गयी तथा अग्रणी बैंक योजना (एलबीएस) जैसी विशिष्ट योजनाएं आरंभ की गईं। पूरे देश में बड़े पैमाने पर जमाराशियां जुटाने तथा अर्थव्यवस्था के कमजोर वर्गों को उधार देने में तेजी लाने की दृष्टि से रिजर्व बैंक द्वारा आरंभ की गई अग्रणी बैंक योजना शाखा विस्तार का प्रमुख साधन बन गई। जिले के

सारणी 3.21: बैंकों की कुल जमाराशियों और ऋणों में प्रमुख शहरों का हिस्सा : दिसंबर 1969 का अंत

(राशि करोड़ रुपयों में)

क्रम सं.	शहर	कार्यालयों की संख्या	जमाराशियां		ऋण		ऋण-जमा अनुपात (प्रतिशत)
			राशि	कुल में प्रतिशत हिस्सा	राशि	कुल में प्रतिशत हिस्सा	
2		3	4	5	6	7	8
1.	अहमदाबाद	119	117	2.2	117	3.1	100.6
2.	बंबई	456	964	18.6	976	26.2	101.3
3.	कलकत्ता	258	573	11.2	694	18.6	121.1
4.	दिल्ली	296	493	9.5	200	5.4	40.6
5.	मद्रास	178	140	2.7	248	6.6	175.8
	कुल (1 से 5)	1,307	2,287	44.2	2,235	59.9	97.7
	अखिल भारत	9,007	5,173	100	3,729	100	72.1

नोट : 1961 की जनगणना के अनुसार 10,00,000 से अधिक जनसंख्या वाले शहर।

स्रोत : भारत स्थित बैंकों से संबंधित सांख्यिकीय सार, 1969।

²⁷ पृष्ठ 38, बैंकिंग आयोग, 1971

लिए नामित 'अग्रणी बैंक' उसे आबंटित जिले में आबादी की ऋण संबंधी जरूरतों का सर्वेक्षण करने, बैंकिंग तथा ऋण सुविधा के विकास में अग्रणी भूमिका निभाने के लिए उत्तरदायी था।

3.86 आरंभ में, देश के सभी जिले (महानगरीय शहरों तथा केंद्रशासित प्रदेशों को छोड़कर) 22 सरकारी क्षेत्र के बैंकों (स्टेट बैंक तथा इसके 7 सहयोगी बैंकों और 14 राष्ट्रीयकृत बैंकों) और निजी क्षेत्र के 3 बैंकों (आंध्र बैंक लिमिटेड, बैंक ऑफ राजस्थान लिमिटेड तथा पंजाब और सिंध बैंक लिमिटेड) को आबंटित किए गए। बैंकों को जिलों का आबंटन करते समय, संबंधित बैंक के संसाधन आधार तथा उसकी क्षेत्रीय अभिमुखता पर विचार किया गया। जिलों का आबंटन क्लस्टर में किया गया ताकि उनके नियंत्रण में सुविधा हो और प्रत्येक राज्य में 2 या 2 से अधिक बैंकों को जिलों की जिम्मेदारी आबंटित की गई। प्रत्येक बैंक को भी एक से अधिक राज्य में जिले आबंटित किए गए। अग्रणी बैंक योजना के तहत विभिन्न बैंकों को जिलों के आबंटन ने बैंक सुविधा रहित केंद्रों में बैंकिंग का विस्तार करने में प्रमुख भूमिका निभाई। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद लगभग 5 वर्षों में, शाखा नेटवर्क में 129 प्रतिशत की वृद्धि हुई। प्रति बैंक कार्यालय आबादी जून 1969 के 65,000 प्रति बैंक कार्यालय से घटकर दिसंबर 1975 में 31,660 रह गई। नई खोली गई 10,543 शाखाओं में से, 5,364 (50.1 प्रतिशत) ग्रामीण क्षेत्रों में थीं। फलस्वरूप, कुल बैंक शाखाओं में ग्रामीण शाखाओं का हिस्सा 1969 के 17.6 प्रतिशत से बढ़कर 1975 में 36.3 प्रतिशत हो गया (सारणी 3.22)। बैंकों का विस्तार पहले ग्रामीण क्षेत्रों में किया गया और इस अनुभव के बाद और विस्तार बैंक सुविधा रहित क्षेत्रों में किया गया। 1977 में, बैंकों को ग्रामीण क्षेत्रों में 4 शाखाएं खोलने के लिए प्रोत्साहन के रूप में महानगर में एक शाखा तथा नगर क्षेत्र में एक शाखा खोलने का लाइसेंस दिया गया।

3.87 1980 के दशक में शाखा विस्तार जारी रहा। 1970 के दशक की तुलना में 1980 के दशक में भी बैंक शाखाओं के क्षेत्रीय वितरण में सुधार हुआ (सारणी 3.23)।

3.88 जहां शाखा लाइसेंसिकरण नीति द्वारा बैंकिंग क्षेत्र के नगर के प्रति पूर्वाग्रह की समस्या से निपटा जाना था, यह महसूस किया गया कि यह नीति अकेले ग्रामीण ऋण की समस्या का समाधान नहीं कर सकेगी। यह सुनिश्चित करने के लिए कि ग्रामीण जमाराशियों का उपयोग सिर्फ शहरी ऋण बढ़ाने के लिए न किया जाए, बैंकों को निदेश दिया गया कि प्रत्येक ग्रामीण और अर्ध-शहरी बैंक को कम से कम 60 प्रतिशत का ऋण जमा अनुपात बनाए रखना चाहिए। ग्रामीण तथा अर्ध-शहरी शाखाओं में बैंकों के ऋण जमा अनुपात पर सावधानीपूर्वक निगरानी रखी गई।

3.89 बैंकों के राष्ट्रीयकरण ने भी विशेष रूप से अर्थव्यवस्था के प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्रों के विकास की प्रक्रिया को तीव्र करने के लिए, जिन पर पहले वाणिज्य बैंकों द्वारा पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया था, बैंक ऋण में काफी पुनरभिमुखता लाई। इन क्षेत्रों तथा सामाजिक रूप से वांछनीय अन्य क्षेत्रों में बैंकों की सहभागिता बढ़ गई। इन सभी वर्षों में रिजर्व बैंक के दिशानिर्देश के तहत ऋण आयोजना अव्यक्त थी। तथापि, जुलाई 1969 में राष्ट्रीयकरण के बाद इसे नई गति प्राप्त हुई। आर्थिक आयोजना तथा नीति के साथ ऋण आयोजना के समन्वयन को रिजर्व बैंक द्वारा कड़ाई से लागू किया गया। समग्र योजना तथा मौद्रिक अपेक्षाओं के अनुरूप एक व्यापक ऋण योजना तैयार की गई, जिसमें राष्ट्रीय प्राथमिकताओं, जमा वृद्धि की प्रत्याशित गति, सामान्य आर्थिक स्थिति तथा विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों में संभावित गतिविधियों को हिसाब में लिया गया। इस योजना में कतिपय कार्यक्रमों तथा सरकारी अपेक्षाओं और कुछ आवश्यक सरकारी वाणिज्यिक परिचालनों तथा खाद्यान्न की सरकारी खरीद तथा बफर स्टॉक

सारणी 3.22: वाणिज्य बैंकों का शाखा नेटवर्क

निम्नलिखित के अंत में	ग्रामीण केन्द्र	अर्ध-शहरी केन्द्र	शहरी केन्द्र	महानगरीय केन्द्र/पत्तन शहर	कुल	प्रति बैंक कार्यालय आबादी
1	2	3	4	5	6	7
जून 1969	1,443 (17.6)	3,337 (40.8)	1,911 (23.3)	1,496 (18.3)	8,187	65,000
दिसंबर 1975	6,807 (36.3)	5,598 (29.9)	3,489 (18.6)	2,836 (15.1)	18,730	31,660
दिसंबर 1980	15,105 (46.6)	8,122 (25.1)	5,178 (16.0)	4,014 (12.4)	32,419	20,481
दिसंबर 1985	30,185 (58.7)	9,816 (19.1)	6,578 (12.8)	4,806 (9.4)	51,385	14,381
दिसंबर 1990	34,791 (58.2)	11,324 (19.0)	8,042 (13.5)	5,595 (9.4)	59,752	13,756

नोट : कोष्ठकों के आंकड़े कुल का प्रतिशत हिस्सा हैं।

स्रोत : वर्ष 1969 के आंकड़ों के लिए 1972 की बैंकिंग सांख्यिकी तथा अन्य वर्षों के लिए हैडबुक ऑफ स्टैटिस्टिक्स ऑन दि इंडियन इकॉनॉमी 2006-07।

सारणी 3.23: भारत में बैंक शाखाओं का क्षेत्रवार वितरण

निम्नलिखित के अंत में	उत्तरी	उत्तर-पूर्वी	पूर्वी	मध्यवर्ती	पश्चिमी	दक्षिणी	कुल
1	2	3	4	5	6	7	8
जून 1975	3,174 (17.1)	275 (1.5)	2,189 (11.8)	2,795 (15.0)	3,873 (20.9)	6,269 (33.7)	18,575 (100.0)
जून 1980	5,409 (16.7)	703 (2.2)	4,778 (14.7)	5,588 (17.2)	5,790 (17.9)	10,144 (31.3)	32,412 (100.0)
जून 1985	8,239 (15.7)	1,363 (2.6)	8,987 (17.1)	10,935 (20.8)	8,259 (15.7)	14,855 (28.2)	52,638 (100.0)
मार्च 1990	9,312 (15.4)	1,772 (2.9)	10,879 (18.0)	12,747 (21.1)	9,417 (15.6)	16,388 (27.1)	60,515 (100.0)
मार्च 1991	9,426 (15.3)	1,870 (3.0)	11,362 (18.4)	13,005 (21.1)	9,526 (15.4)	16,535 (26.8)	61,724 (100.0)

- नोट :**
1. कोष्ठकों के आंकड़े कुल का प्रतिशत हिस्सा हैं।
 2. उत्तरी क्षेत्र : हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और काश्मीर, पंजाब, राजस्थान, चंडीगढ़, दिल्ली।
 3. उत्तर-पूर्वी क्षेत्र : असम, मेघालय, मणिपुर, नागालैंड, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम।
 4. पूर्वी क्षेत्र : बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह।
 5. मध्यवर्ती क्षेत्र : मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश।
 6. पश्चिमी क्षेत्र : गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा दमन और दीव तथा दादरा और नगर हवेली।
 7. दक्षिणी क्षेत्र : आंध्र प्रदेश, केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, पुदुचेरी, लक्षद्वीप।

स्रोत : मूलभूत सांख्यिकीय विवरणियां, विभिन्न अंक।

के परिचालनों के लिए आबंटन किया गया। कुछ प्रमुख क्षेत्रों के लिए सकल अनुमान ज्ञात करना एक महत्वपूर्ण कदम था। व्यस्त तथा मंदी के मौसमों के लिए, विशेष तौर पर मौसमी परिवर्तनों से प्रभावित होनेवाले क्षेत्रों के बारे में, अलग अनुमान लगाए गए। पूरी प्रणाली के लिए, इस व्यापक ऋण योजना की पृष्ठभूमि में, प्रत्येक बैंक की अलग ऋण योजना बनाई गई। बैंकों को कहा गया कि वे मौजूदा ऋण के पुनर्नियोजन तथा उसे वास्तविक उत्पादक प्रयोजनों के साथ संबद्ध करने की गुंजाइश का पता लगाएं।

3.90 भारत में, विशेष रूप से 1960 के दशक में, योजनाबद्ध आर्थिक विकास आरंभ होने के बाद, एक उपाय के रूप में बैंकों द्वारा जमा संग्रहण पर काफी बल दिया गया ताकि अर्थव्यवस्था के विकास के लिए संसाधन बढ़ाए जा सकें। जहां एक संसाधन की कमी वाली अर्थव्यवस्था में जमा संग्रहण का महत्व बहुत अधिक था, बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद इसे नई गति प्राप्त हुई। राष्ट्रीयकरण के तुरंत बाद बैंकिंग क्षेत्र में विश्वास बढ़ गया जो घरेलू बचत में बैंक जमा राशियों तथा उनकी कुल बचत में घरेलू क्षेत्र की वित्तीय बचतों के हिस्से में तीव्र वृद्धि में दिखाई दिया। जमा दरों को आकर्षक रखने के लिए सजग प्रयास किए गए। राष्ट्रीयकरण की अवधि के साथ हरित क्रांति की अवधि जुड़ गई तथा उच्चतर आय के रूप में इसके लाभ ग्रामीण क्षेत्र को मिलने शुरू हो गए। ग्रामीण क्षेत्रों में शाखा नेटवर्क के तीव्र विस्तार, जमा संग्रहण पर विशेष बल तथा आय के स्तरों में वृद्धि ने बैंक जमा राशियों में वृद्धि को प्रेरित किया (सारणी 3.24)। बैंकिंग तथा जमा संग्रहण का विस्तार राष्ट्रीयकरण की दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धियां थीं।

3.91 बदले में जमा राशि की वृद्धि की अगुवाई बचत दर में वृद्धि द्वारा की गई (सारणी 3.25)।

3.92 राष्ट्रीयकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में भी देखा गया जिसमें राष्ट्रीयकृत बैंकों का बड़े पैमाने पर पुनर्गठन होगा तथा सिर्फ एक या दो प्रमुख बैंक अखिल भारतीय बैंकों के रूप में कार्य करते हुए ऋण के थोक बाजार की जरूरतें पूरी करेंगे और विदेशी मुद्रा कारोबार में उनका एकाधिकार होगा। ऐसी आशा थी कि अन्य सभी बैंकों को पुनर्गठित, विलयित, तथा रि-पैकेज करके उन कई संस्थाओं का रूप दिया जाएगा जो विशिष्ट क्षेत्रों में कार्य करेंगी तथा कृषि, लघु उद्योग और व्यापार एवं उस समय ऋण रहित क्षेत्रों में ध्यान केंद्रित करेंगी। तथापि ऐसी पुनर्संरचना नहीं हुई और यथास्थिति बनाए रखी गई (पटेल, 2002)।

सारणी 3.24: अनुसूचित वाणिज्य बैंक - जमा राशियों की औसत वार्षिक वृद्धि दरें

(प्रतिशत)

अवधि	मांग जमा राशियों की वृद्धि दरें	आवधिक जमा राशियों की वृद्धि दरें	सकल जमा राशियों की वृद्धि दरें
1	2	3	4
1960-65	15.1	7.0	10.5
1965-70	12.6	15.8	14.3
1970-75	17.3	19.7	18.7
1975-80	8.1	30.6	21.9

स्रोत : हैडबुक ऑफ स्टैटिस्टिक्स ऑन दि इंडियन इकॉनॉमी, 2006-07 (रिजर्व बैंक)।

सारणी 3.25: देशी घरेलू क्षेत्र की बचत राशियां

(राशि करोड़ रुपये में)

वर्ष (अप्रैल-मार्च)	घरेलू क्षेत्र की वित्तीय बचतें	घरेलू क्षेत्र की भौतिक बचतें	कुल घरेलू बचतें (2+3)	जीडीपी के प्रतिशत के रूप में घरेलू बचतें
1	2	3	4	5
1968-69	795	2,327	3,122	8.5
1970-71	1,371	3,000	4,371	10.2
1974-75	2,374	5,294	7,668	10.6
1979-80	6,081	9,747	15,828	14.3

स्रोत : हैडबुक ऑफ स्टैटिस्टिक्स ऑन दि इंडियन इकॉनॉमी, 2006-07 (रिजर्व बैंक)।

निदेशित ऋण शुरू करना और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना

3.93 निदेशित ऋण कार्यक्रम में अधिमान्यता प्राप्त शर्तों पर ऋण देना शामिल है तथा 1960 के दशक में प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्रों की स्थिति विकसित तथा विकासशील दोनों देशों में विकास नीति का एक प्रमुख साधन थी। भारत में पहली बार जुलाई 1961 में सामाजिक उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अर्थव्यवस्था के कतिपय क्षेत्रों, जिन्हें प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के रूप में जाना जाता है, को ऋण के प्रवाह की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया। तथापि, ऐसा सिर्फ बैंकों को तरजीह बताने के लिए किया गया था क्योंकि यह महसूस किया गया कि यदि बैंक अपनी मर्जी से इस मुद्दे का समाधान करें तो लक्ष्य निर्धारित करने की कोई जरूरत नहीं होगी। बैंकों से यह अपेक्षा की गई कि वे कृषि तथा लघु उद्योग जैसे क्षेत्रों की मदद करने के लिए अधिक सक्रिय और सकारात्मक भूमिका निभाएं। ऋण संबंधी मुख्य अवरोध दूर किए जाने के बाद ऐसी आशा थी कि इन क्षेत्रों का कार्यनिष्पादन बेहतर होगा। तथापि, अधिकांश बैंक अग्रिम बड़े और स्थापित व्यावसायिक घरानों को दिया जाना जारी रहा, जबकि कृषि, लघु उद्योग और निर्यात की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। फलस्वरूप, उधार संबंधी विनिर्देश लागू करने की जरूरत महसूस की गई।

3.94 देश के व्यापक हित में अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्र को ऋण का प्रवाह सुनिश्चित करने संबंधी औपचारिक निदेश की खोज 1967 की मंदी के मौसम में किया जा सकता है, जब 1965-66 तथा 1966-67 में कृषि उत्पादन में अर्थव्यवस्था में हुए गंभीर असंतुलों के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में कमी तथा औद्योगिक उत्पादन में मंदी आई थी। जुलाई 1968 में हुई राष्ट्रीय ऋण परिषद की बैठक में इस बात पर बल दिया गया कि वाणिज्य बैंकों को प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्रों अर्थात् कृषि और लघु उद्योग के वित्तपोषण में अपनी सहभागिता बढ़ानी चाहिए। बैंकों के राष्ट्रीयकरण का एक उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि किसी उत्पादक प्रयास को ऋण समर्थन की कमी महसूस न हो। 1970 के दशक के आरंभ से बैंकिंग नीति का उपयोग वृद्धि के सक्रिय साधन तथा आय की असमानता, आर्थिक शक्ति के संकेंद्रण और बैंकिंग सुविधाओं में क्षेत्रीय अंतर को क्रमिक रूप

से कम करने के लिए किया गया। वाणिज्य बैंकों के लिए हस्तक्षेप की नीति का मुख्य कारण यह विश्वास था कि कुछ क्षेत्र ऋण प्राप्त नहीं कर पा रहे थे तथा वे ब्याज की बाजार दर का वहन नहीं कर पा रहे थे, अतः उन्हें रियायती ब्याज दर पर अधिमानता के आधार पर ऋण प्रदान किया जाना चाहिए। फलस्वरूप, बैंकिंग नीति का संवर्धनात्मक पहलू अधिक प्रमुख हो गया।

3.95 1972 में प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र की परिभाषा को औपचारिक रूप दिया गया, यद्यपि आरंभ में प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र उधार के लिए कोई विशिष्ट लक्ष्य नहीं था। तथापि, नवंबर 1974 में सरकारी क्षेत्र के बैंकों को सूचित किया गया कि प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र को दिया जानेवाला उधार मार्च 1979 तक बकाया ऋण के एक-तिहाई तक पहुंच जाना चाहिए। पूरे प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के लिए तथा समाज के कमजोर वर्ग नामक उप क्षेत्रों के लिए राष्ट्रीय लक्ष्य निर्धारित किए गए। नवंबर 1978 में, निजी क्षेत्र के बैंकों को भी सूचित किया गया कि वे मार्च 1980 के अंत तक दिए गए अग्रिमों का एक तिहाई हिस्सा प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्रों को प्रदान करें। बाद में, लक्ष्य को बढ़ाकर कुल अग्रिमों का 40 प्रतिशत कर दिया गया। बैंकिंग क्षेत्र की निधियों का बड़ा भाग बड़े उधारकर्ताओं को जाता था तथा छोटे उधारकर्ताओं के लिए बहुत कम हिस्सा बच पाता था। उदाहरण के लिए, अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के मामले में कुल उधार खातों का 81 प्रतिशत 10,000 रुपए तक की राशि के लिए था परंतु वे बैंक ऋण के 4 प्रतिशत से कम थे। इस स्थिति में सुधार लाने के लिए द्विस्तरीय उपाय किए गए। पहला, विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित करके (समग्र लक्ष्य के भीतर 10 प्रतिशत) ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर वर्गों के आर्थिक उत्थान पर विशेष बल दिया गया। दूसरा, चूक संबंधी जोखिम, जो छोटे उधारकर्ताओं के साथ अंतर्जात थी, कम करने के लिए रिजर्व बैंक ने भुगतान में चूक की जोखिम के प्रति गारंटी प्रदान करने हेतु 1971 में भारतीय ऋण गारंटी निगम लिमिटेड की स्थापना का संवर्धन किया। इस नीति ने छोटे उधारकर्ताओं के विभिन्न वर्गों को ऋण स्वीकृत करने हेतु वाणिज्य बैंकों और अन्य संस्थाओं को प्रोत्साहित किया। व्यापक स्तर पर यह देखते हुए कि गरीबी की घटना और ऋण प्राप्ति की कमी दूरस्थ बैंक सुविधा रहित क्षेत्रों में अधिक थी, ऋण के वितरण की अंतर-क्षेत्रीय असमानता को कम करने के लिए शाखा विस्तार नीति तैयार की गई।

3.96 1972 में विभेदक ब्याज दर (डीआरआइ) योजना शुरू की गई ताकि समाज के कमजोर वर्गों की जरूरतें पूरी की जा सकें और उनका उत्थान किया जा सके। इस योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में कम आय के लोगों को लक्ष्य बनाकर उन्हें रियायती दर पर ऋण प्रदान किया गया। इस योजना में भूमिहीन श्रमिकों, शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों, अनाथालयों, महिला गृहों, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को लक्ष्य समूह बनाया गया, जिनके पास ऋण देनेवाली संस्थाओं को प्रस्तावित करने के लिए कोई मूर्त प्रतिभूति नहीं थी। इस योजना के अंतर्गत उधार की न्यूनतम मात्रा हर बैंक के लिए पिछले साल के कुल अग्रिमों का एक प्रतिशत रखी गई। इस योजना को चलाने में बड़ी संख्या में पात्र उधारकर्ताओं में से

हिताधिकारियों की उचित पहचान करना, ताकि पात्र उधारकर्ताओं में से सबसे कमजोर व्यक्ति को योजना का लाभ प्राप्त हो, सरकार के एजेंट के रूप में बैंकों के समक्ष एक प्रमुख समस्या थी।

3.97 आरंभ किए गए विभिन्न उपायों का कृषि को उधार देने पर सकारात्मक असर पड़ा क्योंकि कुल बैंक ऋण में कृषि ऋण का हिस्सा 1967 के 2.2 प्रतिशत से बढ़कर 1970-71 में 8.0 प्रतिशत तथा और बढ़कर 1974-75 में 9.1 प्रतिशत हो गया (सारणी 3.26)। तथापि, यह सुधार आशा से कम था।

3.98 यह महसूस किया गया कि इसका मुख्य कारण यह था कि वाणिज्य बैंक छोटे और सीमांत किसानों की जरूरतों तथा अपेक्षाओं से अवगत नहीं थे, जबकि सहकारी संस्थाओं के पास प्रत्याशित मांग को पूरा करने के लिए संसाधनों की कमी थी। अतः ऐसी जरूरत महसूस की गई कि एक पृथक बैंकिंग ढांचा तैयार किया जाए जो स्थानीय अनुभव और ग्रामीण समस्याओं से परिचय, सहकारी संस्थाओं की विशेषता तथा व्यावसायिकता और वाणिज्य बैंकों के बड़े संसाधन आधार को मिश्रित करने में सक्षम हो। ग्रामीण बैंक आरंभ करने की राय सबसे पहले बैंकिंग आयोग (1972) द्वारा सुझायी गयी, परंतु इसके अनुसार कार्रवाई 1970 के दशक के मध्य में भारत सरकार द्वारा 'बीस-सूत्री कार्यक्रम' और 'नया आर्थिक कार्यक्रम' शुरू किए जाने के बाद आरंभ की गई। 26 सितंबर 1975 को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अध्यादेश जारी किया गया जिसे बाद में 9 फरवरी 1976 को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (आरआरबी) की स्थापना इस दृष्टिकोण के साथ की गई ताकि कृषि, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग के विकास के प्रयोजन के लिए ऋण और अन्य सुविधाएं, विशेष रूप से लघु और सीमांत किसानों, कृषि श्रमिकों, कारीगरों और छोटे उद्यमियों को प्रदान कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास किया जा सके। ऐसी आशा थी कि इनसे 'ग्रामीण संपर्क और स्थानीय अनुभव को आधुनिक व्यावसायिक संगठन के साथ संयुक्त' किया जाएगा।

3.99 विभेदक ब्याज दर (डीआरआइ) योजना का आशोधन कर प्रवर्तक बैंकों को इस बात की अनुमति दी गई कि वे एजेंसी आधार पर ऐसे अग्रिम देने के अलावा पुनर्वित्त आधार पर आरआरबी के जरिए डीआरआइ अग्रिम प्रदान करें। आरआरबी के पुनर्वित्त पर 2 प्रतिशत वार्षिक की दर पर ब्याज लगाया जाता था तथा इस प्रकार दिए गए पुनर्वित्त की राशि को प्रवर्तक बैंक द्वारा योजना के तहत उधार के एक प्रतिशत के लक्ष्य के प्रयोजन के लिए हिसाब में लिया जाता था।

3.100 1978 में, वाणिज्यिक बैंकों तथा आरआरबी को निदेश दिया गया कि वे आकार से निरपेक्ष होकर सभी प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र ऋणों पर 9 प्रतिशत की समान दर लगाएं। यह माना गया कि ग्रामीण गरीब जनता के समक्ष प्राप्ति के बजाय ऋण की लागत मुख्य अवरोध था। संगठित ऋण के प्रसार का विस्तार करके स्थानीय साहूकारों से सुभेद्य ग्रामीण आबादी को मुक्त कराने के लिए नीति बनाई गई। बैंकों के राष्ट्रीयकरण तथा निदेशित ऋण कार्यक्रम शुरू करने और अन्य पहलों के परिणाम अत्यधिक उत्साहवर्धक थे। ग्रामीण शाखाओं का हिस्सा 1969 के 17.6 प्रतिशत से तेजी से बढ़कर 1990 में 58.2 प्रतिशत हो गया। ग्रामीण क्षेत्रों में संस्थागत बैंकिंग के प्रसार में वृद्धि होने के साथ ग्रामीण ऋण में गैर संस्थागत स्रोतों (व्यावसायिक साहूकारों, जमींदारों और खेतिहर साहूकारों) के हिस्से में गिरावट आई। कुल बकाया ऋण में ग्रामीण ऋण तथा कुल जमाराशियों में ग्रामीण जमाराशियों का हिस्सा भी उल्लेखनीय रूप से बढ़ गया। ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण जमा अनुपात 1969 के 37.6 प्रतिशत से बढ़कर 1981 में 60.6 प्रतिशत हो गया तथा 1990 में उस स्तर पर बना रहा (सारणी 3.27)।

3.101 कुल मिलाकर कृषि, निर्यात और लघु उद्योग के प्रति अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के अग्रिमों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जबकि उद्योग को दिए गए ऋण में गिरावट आई (सारणी 3.28)।

सारणी 3.26: कृषि के लिए अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के अग्रिम

(राशि करोड़ रुपये में)

वर्ष (अप्रैल-मार्च)	कृषि को प्रत्यक्ष वित्त		कृषि को अप्रत्यक्ष वित्त		कृषि को कुल प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष वित्त		बैंक ऋण
	राशि	कुल में हिस्सा (प्रतिशत)	राशि	कुल में हिस्सा (प्रतिशत)	राशि	कुल में हिस्सा (प्रतिशत)	
1	2	3	4	5	6	7	8
1966-67	-	-	-	-	57#	2.2#	2,717
1970-71	235	5.0	143	3.0	378	8.0	4,684
1971-72	259	4.9	135	2.6	394	7.5	5,263
1972-73	313	5.1	172	2.9	485	7.9	6,115
1973-74	418	5.7	197	2.7	615	8.3	7,399
1974-75	543	6.2	255	2.9	798	9.1	8,762

: कृषि को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष वित्त के ब्यौरे उपलब्ध नहीं हैं।

#: अनुपलब्ध

स्रोत : 1. हैडबुक ऑफ स्टैटिस्टिक्स ऑन दि इंडियन इकॉनॉमी, 2006-07 (रिजर्व बैंक)।
2. भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति की रिपोर्ट, 1967-68

सारणी 3.27: भारत में ग्रामीण बैंकिंग का विकास - 1969-1990

निम्नलिखित के अंत में	बैंक कार्यालयों की संख्या		ऋण - बकाया		जमाराशियां - बकाया		ऋण-जमा अनुपात (प्रतिशत)	
	ग्रामीण	कुल का %	ग्रामीण (करोड़ रु.)	कुल का %	ग्रामीण (करोड़ रु.)	कुल का %	ग्रामीण	अखिल भारत
1	2	3	4	5	6	7	8	9
जून 1969	1,443	17.6	115	3.3	306	6.3	37.6	71.9
दिसंबर 1981	19,453	51.2	3,600	11.9	5,939	13.4	60.6	68.1
मार्च 1990	34,867	58.2	17,352	14.2	28,609	15.5	60.7	66.0

स्रोत : मूलभूत सांख्यिकीय विवरणियां, आरबीआइ, विभिन्न अंक।

व्यष्टि नियंत्रण को और मजबूत बनाना

3.102 योजना की प्राथमिकताओं के अनुसार ऋण निदेशित करने की आवश्यकता ने विभिन्न व्यष्टि नियंत्रणों को जन्म दिया जिसने क्षेत्रवार ऋण के विनियोजन तथा जमाराशि एवं ऋणों के लिए ब्याज दरों के निर्धारण संबंधी विनिर्देशों का रूप लिया। वृद्धि के लिए संसाधन जुटाने हेतु, यह महसूस किया गया कि बैंकिंग प्रणाली को जमा संग्रहण में एक प्रमुख भूमिका निभानी चाहिए। जहां बैंक शाखा नेटवर्क के विस्तार ने कुछ सीमा तक मदद की, यह माना गया कि इस प्रकार का प्रयास सफल होने के लिए जमा ब्याज दर को आकर्षक होना चाहिए। तथापि, उच्चतर ब्याज दर का अभिप्राय ऋणकर्ता को ऋण की उच्चतर लागत है। जहां प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के उधारकर्ताओं के लिए उधार की रियायती दर उपलब्ध थी, प्रति-सहायता के कारण गैर प्राथमिकताप्राप्त उधारकर्ताओं को ब्याज की दरें बढ़ गईं। इस क्षेत्र को ऋण के प्रवाह को प्रोत्साहित करने के लिए मार्च 1968 में निर्यात ऋण पर अधिकतम दर का निर्धारण भी किया गया। मार्च 1969 से, कुछ आर्थिक कार्यकलापों/उधारकर्ताओं को पर्याप्त निधियां उपलब्ध कराने के लिए निम्नतम/अधिकतम सीमा का भी उपयोग किया गया। वृद्धि के संवर्धन हेतु उत्पादक कार्यकलापों के लिए पर्याप्त निधियां प्रदान करने का विचार था। योजनाबद्ध विकास के लिए संसाधनों की आवश्यकता ने क्रमिक रूप से सरकार के उधार को बढ़ा दिया और इसके साथ ब्याज दर का लचीलापन एक मुद्दा बन गया क्योंकि इसने उधार की लागत को प्रभावित किया।

3.103 1970 के दशक के प्रारंभ में तेल आघात के कारण मुद्रास्फीतिकारी दबाव अत्यंत बढ़ गया। स्थिति से निपटने के लिए, 1 जून 1973 से रिजर्व बैंक ने प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र को छोड़कर सभी ऋणों पर 10 प्रतिशत का न्यूनतम उधार दर लगाया। तेल आघात के कारण आयात बिल बढ़ गया तथा भुगतान संतुलन पर अत्यधिक दबाव आया। अतः, यह वांछनीय माना गया कि निर्यातों को बढ़ावा दिया जाए। अतः निर्यात ऋण को प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र में (ऋण पर मात्रात्मक प्रतिबंध की परिधि के बाहर) डाल दिया गया। बैंकिंग प्रणाली के पास संसाधन बढ़ाने की दृष्टि से, दीर्घतर परिपक्वताओं के लिए मीयादी जमा दर में वर्ष 1973 से 1974 के बीच ऊपरी समायोजन किया गया। अप्रैल 1974 में, विभिन्न श्रेणियों के लिए जमाराशियों पर ब्याज दरें बढ़ा दी गईं जिससे बैंकिंग क्षेत्र के लिए निधियों की लागत बढ़ गई। मुद्रास्फीतिकारी स्थिति को देखते हुए, चयनात्मक ऋण नियंत्रण के प्रति प्रभार्य न्यूनतम दर को भी जुलाई 1974 में बढ़ा दिया गया।

3.104 वाणिज्य बैंकों ने कुछ मामलों में बहुत ऊंची दरें लगाईं तथा इस प्रकार की ऊंची दरों की घटना छोटे उधारकर्ताओं के बारे में भी लागू हुई। इस मुद्दे का समाधान करने के लिए, रिजर्व बैंक ने 1976 में न्यूनतम उधार दरों के अलावा बैंक ऋणों की अधिकतम दर निर्धारित की। 25 करोड़ रुपए से 50 करोड़ रुपए तक की मांग और मीयादी देयताओं वाले छोटे बैंकों को कुछ लचीलापन दिया गया।

3.105 जून 1977 में, जमाराशियों पर ब्याज दर की संरचना को युक्तिसंगत बनाया गया तथा अल्पावधि और दीर्घावधि दरों के बीच स्प्रेड

सारणी 3.28: विभिन्न क्षेत्रों को बैंक ऋण का वितरण - बकाया

(करोड़ रुपये)

के अंत में	उद्योग	लघु उद्योग	निर्यात	कृषि	सकल बैंक ऋण
1	2	3	4	5	6
मार्च 1968	2068 (67.5)	-	-	67 (2.2)	2135 (100)
मार्च 1980	8269 (38.9)	2635 (12.4)	1640 (7.7)	2767 (13.0)	21235 (100)
जून 1989	33625 (37.5)	13697 (15.3)	6556 (7.3)	14146 (15.8)	89654 (100)

नोट : कोष्ठकों के आंकड़े कुल का प्रतिशत हिस्सा हैं।
स्रोत : भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति की रिपोर्ट, विभिन्न अंक।

बढ़ गया। बचत खातों को दो श्रेणियों में विभाजित करके कार्यात्मक रूप से बचत उन्मुख तथा लेनदेन उन्मुख बचत खातों के बीच अंतर किया गया। जुलाई 1977 से, चेकसुविधाहित बचत खातों पर 5 प्रतिशत की ब्याज दर अदा की गई, जबकि चेकसुविधावाले खातों पर 3 प्रतिशत की न्यूनतर दर प्रदान की गई। तथापि, मार्च 1978 में इन दोनों खातों को सीमित चेक सुविधा के साथ एक बचत जमा खाते में मिला दिया गया तथा 4.5 प्रतिशत की दर पर ब्याज की अनुमति दी गई। 2 मार्च 1981 को ब्याज दर ढांचे में उल्लेखनीय आशोधन किए गए, जो निरंतर बने हुए मुद्रास्फीतिकारी दबावों के प्रति प्रतिसाद है। इसका कारण यह था कि अनेक दरें मौजूद होने पर भी प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के हिताधिकारियों के विभिन्न वर्गों से ली जानेवाली दरों में उस समय प्रस्तावित उधार दर की संरचना में ग्रेडेशन अपर्याप्त था। कई असमानताएं पैदा हो गईं तथा और विनियम बनाकर इनका समाधान किया गया। उदाहरण के लिए, प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के कई श्रेणियों के अग्रिमों के मामले में ब्याज दर की सिर्फ अधिकतम सीमा सूचित की गई। इससे एक ही क्षेत्र में एक ही प्रकार के अग्रिम के लिए अलग-अलग बैंकों को अलग ब्याज लगाने की अनुमति मिल गई जिससे काफी क्षैतिज असमानता पैदा हो गई। उधार दरों में बदलाव किए जाने पर और नियंत्रण आ गए क्योंकि पहले का विनिर्देश एक अनुमतियोग्य दायरा था जिसे विशिष्ट निश्चित दरों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के उधार संबंधी 4 अलग दर श्रेणियां इस प्रकार थीं यथा, 12.5 प्रतिशत, 15 प्रतिशत, 17.5 प्रतिशत और 19.5 प्रतिशत, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि विशेष रूप से प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के मामले में एक ही श्रेणी के अग्रिमों के लिए बैंकों के बीच ब्याज दरों की समानता हो। पहले, छोटे बैंकों को उच्चतर दरों पर ब्याज लगाने की अनुमति थी। 1991 से उधार दरों को कुछ युक्तियुक्त बनाया गया, जब आकार से निरपेक्ष होकर सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंकों पर एक समान रूप से अधिकतम उधार दर लागू किया गया।

3.106 निदेशित ऋण व्यवस्थाओं के बढ़े हुए प्रचुरोद्भवन, विभिन्न मानदंडों (यथा, अन्य बातों के साथ-साथ आर्थिक कार्यकलाप, पण्य, स्थान तथा ऋणकर्ताओं के विशिष्ट समूह) पर आधारित बहुल ब्याज दर निर्धारणों तथा परिणामी प्रति-सहायता के साथ एक बहुल जटिल नियंत्रित ब्याज दर संरचना का सृजन हुआ जिसमें ऋण के मूल्यन और आबंटन में बाजार की शक्तियों की वस्तुतः कोई भूमिका नहीं थी।

3.107 मुद्रास्फीतिकारी दबावों को नियंत्रित करने की आवश्यकता के कारण भी रिजर्व बैंक को चयनात्मक ऋण नियंत्रण जैसे कुछ मौजूदा मात्रात्मक लिखतों का उपयोग करना पड़ा। इसने बैंक उधार के कार्यकलाप को जटिल बना दिया क्योंकि अनेक विनिर्देशों का अनुपालन करना पड़ता था। बैंकिंग क्षेत्र को भी रिजर्व बैंक द्वारा ऋण जमा अनुपात पर लगाए गए प्रतिबंधों के दबाव में परिचालन करना पड़ता था ताकि बैंकों के उधार कार्यकलाप को

उनके अपने संसाधनों तक सीमित रखा जा सके। इसे नैतिक प्रत्यायन के साधन द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। विभिन्न योजनाओं तथा ब्यौरेवार उपबंधों की अपेक्षाओं ने बैंकों के कार्य को जटिल बना दिया। उदाहरण के लिए, सरकार के विकासात्मक लक्ष्यों के अनुरूप रिजर्व बैंक की नीतियों को संरचित करने का प्रयास करते हुए केंद्रीय बैंक ने विभिन्न प्रयोजनों तथा उधारकर्ताओं की जरूरतों के लिए विभेदक ब्याज दर की शुरुआत की। सरकार के वृद्धि संबंधी पहलों का समर्थन करने के लिए पसंदीदा क्षेत्रों को ऋण के व्यष्टि आबंटन तथा ऋण सब्सिडी की शुरुआत की गई। इसके फलस्वरूप विभिन्न बाध्यताओं के भीतर बैंकों को कार्य करना पड़ा। अधिकांश विकासशील देशों की तरह अन्य बातों के साथ-साथ कृषि को ऋण, सहकारी बैंक तथा निर्यात ऋण सहित पसंदीदा कार्यकलापों के लिए पुनर्वित्त जैसे साधनों का उपयोग करके रिजर्व बैंक द्वारा विवेकाधीन समर्थन के रूप में कुछ मदद की गई। इस प्रकार के वित्तीयन का दोहरा प्रभाव पड़ा, एक प्रत्यक्ष ऋण प्रभाव तथा एक घोषणा प्रभाव। वे पसंदीदा कार्यकलाप के लिए बैंकों की लागत को कवर करने हेतु उनकी मदद में उपयोगी थे। तथापि, सभी सब्सिडी आधारित अर्ध-राजकोषीय विनियमनों की तरह, इस प्रकार के उपायों ने बाजारों को और विकृत बना दिया। ऐसे उपायों ने मौद्रिक आधार का विस्तार किया, ऋण बहुलक को बदल दिया तथा मौद्रिक प्रबंधन को जटिल बना दिया। बैंकिंग क्षेत्र में मौजूद अनेक बाध्यताओं के कारण व्यष्टि विनियमनों का एक जटिल सेट तैयार हो गया तथा उसने वित्तीय दमन की ओर कदम बढ़ाया। आर्थिक प्रबंधन के इस निदेशित दृष्टिकोण ने निजी उद्यमों को बाहर निकाल दिया क्योंकि ऋण प्रवाह के बढ़े हुए हिस्से को सरकारी तथा सार्वजनिक उद्यमों ने ले लिया। इसके अलावा, इन अर्ध-राजकोषीय नीतियों ने क्रमिक रूप से वाणिज्य बैंकों के तुलनपत्र को उनकी लाभप्रदता पर असर डालकर प्रभावित किया। इसके अलावा, बैंकों की अनर्जक आस्तियों में तेजी से वृद्धि हुई। लाभप्रदता में गिरावट तथा एनपीए में वृद्धि ने बैंकिंग क्षेत्र की सृष्टिता को प्रभावित किया क्योंकि बैंक अपने लाभ का पुनर्नियोजन नहीं कर सके, जिसके ब्यौरे बाद के खंडों में दिए गए हैं।

उद्योग के लिए स्टॉक मानदंड

3.108 नियंत्रित ब्याज दर संरचना ने ऋण की मांग को शाश्वत तौर पर बढ़ा दिया। कंपनियों द्वारा वित्तीय आयोजन के अभाव और बैंकों की निधियों पर उनकी अत्यधिक निर्भरता ने भी चिंता में वृद्धि कर दी। कंपनियों की नीति तथा योजनाबद्ध उद्देश्यों के बीच हितों में टकराव हुआ। बढ़ते मूल्यों की अवधि में कंपनियों में तैयार माल की सट्टेबाजीपूर्ण जमाखोरी करके अपने लाभ को अधिकतम करने की प्रवृत्ति थी क्योंकि तैयार माल के मूल्यों में हुई तेज वृद्धि इस प्रकार की जमाखोरी की लागत (स्टॉक को रखने के लिए दिए गए ब्याज के रूप में) को प्रतितुलित करने से कहीं अधिक थी।²⁸ योजना की प्राथमिकताओं को देखते हुए रिजर्व बैंक को

²⁸ टंडन समिति (1975)।

बैंकों की निधियों का उपयोग कर सट्टेबाजीपूर्ण जमाखोरी की प्रवृत्ति पर नियंत्रण लगाना था। सूचना प्रणाली को तैयार करने का भी एक मुद्दा था ताकि रिजर्व बैंक को बैंकों के परिचालनों और उधारकर्ताओं के बारे में अपेक्षित जानकारी उपलब्ध करायी जा सके। यह भी आवश्यक महसूस किया गया कि रिजर्व बैंक तथा बैंकिंग क्षेत्र के बीच संप्रेषण का एक माध्यम बनाया जाए, जो ऋण पर पर्यवेक्षण तथा समय-समय पर किए जानेवाले नीतिगत परिवर्तनों के प्रति बैंकिंग प्रणाली के प्रतिसाद में सुधार के उपाय के रूप में कार्य कर सके। उद्योग को ऋण संबंधी इन सर्वव्याप्त मुद्दों का समाधान समन्वित रूप में किए जाने की जरूरत थी। तदनुसार, यह निर्णय लिया गया कि इन मुद्दों को एक समिति (अध्यक्ष : श्री प्रकाश टंडन) के हवाले कर दिया जाए जो बैंक ऋण के पर्यवेक्षण और अनुवर्ती कार्रवाई के लिए दिशानिर्देश तैयार करने में आनेवाली विभिन्न समस्याओं के प्रति एक समन्वित दृष्टिकोण बना सके। टंडन समिति की सिफारिशों के आधार पर, स्टॉक और प्राप्य राशियों, उधार के प्रति दृष्टिकोण, ऋण की शैली और अनुवर्ती कार्रवाई के बारे में 1975 में विभिन्न मानदंड तैयार किए गए। समिति द्वारा प्रस्तावित उधार की तीन पद्धतियों में उधारकर्ता इकाइयों की दीर्घावधि निधियों से अंशदान के विभिन्न स्तरों की परिकल्पना की गई ताकि अल्पावधि बैंक उधार पर कंपनियों की निर्भरता क्रमिक रूप से कम की जा सके।²⁹ बैंकों से कहा गया कि वे तत्काल कार्रवाई शुरू करें और बैंकिंग प्रणाली से 10 लाख रुपए से अधिक की समस्त ऋण सीमा प्राप्त करनेवाले सभी उधारकर्ताओं को उधार की पहली पद्धति में रखें, जिसके द्वारा कार्यशील पूंजी अंतर, अर्थात् बैंक वित्त को छोड़कर चालू आस्तियों और चालू देयताओं के बीच के अंतर, के 25 प्रतिशत का निधीयन दीर्घावधि संसाधनों से करना अपेक्षित था। अधिकतम अनुमेय बैंक वित्त (एमपीबीएफ) भी संघीय सहायता का आधार बन गया, जो 1972 से लागू था। ऋण के पर्यवेक्षण के लिए भी वाणिज्य बैंकों को दिशानिर्देश जारी किए गए ताकि उसका उचित उपयोग सुनिश्चित हो सके।

3.109 1980 में नकद ऋण प्रणाली के कार्य करने की पद्धति, विशेष रूप से स्वीकृत ऋण सीमा और उपयोग के बीच के अंतर की पुनरीक्षा की गई।³⁰ यह निर्णय लिया गया कि नकद ऋण, ऋण और बिल के जरिए उधार की प्रणाली को जारी रखा जाए। तथापि, नकद ऋण प्रणाली को कारगर बनाया गया। 10 लाख रुपए और अधिक कार्यशील पूंजी सीमा का लाभ उठाने वाले सभी उधार खातों के संबंध में प्रणाली के तहत निर्धारित सीमाओं की आवधिक समीक्षा (साल में कम से कम एक बार) को अनिवार्य बना दिया गया। दीर्घावधि स्रोतों से कार्यशील पूंजी के प्रति उधारकर्ताओं

द्वारा अंशदान, अर्थात् उत्पादन के अनुमानित स्तर के लिए अपेक्षित चालू आस्तियों के कम से कम 25 प्रतिशत का अंशदान, टंडन समिति द्वारा सुझायी गयी उधार की दूसरी पद्धति में किया जाना था, जिससे न्यूनतम चालू अनुपात 1.33:1 (कार्यशील पूंजी अंतर, अर्थात् कुल चालू आस्तियां घटाव बैंक उधार से इतर चालू देयताएं, के 25 प्रतिशत की तुलना में) होगा। यदि उधारकर्ता तत्काल इस अपेक्षा का अनुपालन करने की स्थिति में न हो, तो उधारकर्ता द्वारा पहले से प्राप्त मौजूदा आवश्यकता-आधारित ऋण सीमाओं में कटौती नहीं की जानी थी। उधारकर्ता को अनुमतियोग्य ऋण सीमा से अधिक राशि को अलग कर कार्यशील पूंजी मीयादी ऋण (डब्ल्यूसीटीएल) के रूप में माना जाना था, जो 5 वर्ष से अनधिक निश्चित अवधि के भीतर छमाही किस्तों में चुकाया जाना था। डब्ल्यूसीटीएल पर संबंधित नकद ऋण के लिए प्रभारित दर से अन्यून दर पर ब्याज लगाया जाना था तथा बैंक स्वविवेक पर अधिकतम सीमा से अनधिक उच्चतर ब्याज दर लगा सकते थे। इसके अलावा, डब्ल्यूसीटीएल की समय पर चुकौती करने में किसी प्रकार की चूक होने पर दांडिक दर पर ब्याज दर लगाने के लिए उपयुक्त प्रावधान किए जाने थे। यदि उत्पादन में वृद्धि के कारण अतिरिक्त सीमा जरूरी हो जाए, तो बैंकों से यह सुनिश्चित करने के लिए कहा गया कि डब्ल्यूसीटीएल घटक में वृद्धि न की जाए तथा 1.33:1 के वृद्धिशील चालू अनुपात के आधार पर अतिरिक्त सीमाओं की अनुमति दी जाए। जहां कहीं संभव हो सामान्य तथा उच्चस्तरीय ऋण अपेक्षाओं के लिए अलग-अलग सीमाएं निर्धारित की जाएं, जिनमें उन अवधियों का उल्लेख किया जाए जिनके दौरान संबंधित सीमाओं का उपयोग उधारकर्ताओं द्वारा किया जाना है। इन मानदंडों को लागू करने के बाद फर्मों द्वारा सावधानीपूर्वक स्टॉक प्रबंधन के कारण धारित स्टॉक में गिरावट आई (सिंह आदि, 1982)। व्यापक स्तर पर, कंपनी वित्त संबंधी आंकड़ों ने लघु उद्योगों के पक्ष में बैंक ऋण में एक क्षेत्रवार बदलाव का भी सुझाव दिया।

1980 में बैंकों का राष्ट्रीयकरण

3.110 ऐसा देखा गया कि निजी क्षेत्र के कुछ बैंकों को अभिशासन संबंधी कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ा। इसके अलावा, बड़ी मात्रा में ऋण सुपुर्दगी की आवश्यकता का समाधान करना जरूरी था। तदनुसार अप्रैल 1980 में 200 करोड़ रुपए और अधिक की जमा देयताओं वाले 6 बैंकों अर्थात् आंध्रा बैंक, कारपोरेशन बैंक, न्यू बैंक ऑफ इंडिया, ओरियंटल बैंक ऑफ कामर्स, पंजाब एण्ड सिंध बैंक तथा विजया बैंक का राष्ट्रीयकरण

²⁹ पद्धति I: कार्यशील पूंजी के अंतर अर्थात् बैंक वित्त को छोड़कर चालू आस्तियों और चालू देयताओं के बीच के अंतर के 25 प्रतिशत का निधीयन दीर्घावधि संसाधनों से किया जाए। इस पद्धति के तहत न्यूनतम चालू अनुपात 1:1 रखा गया। पद्धति II: चालू आस्तियों की 25 प्रतिशत का निधीयन दीर्घावधि संसाधनों से किया जाना था। चालू आस्तियों में से चालू देयताओं को घटाकर शेष 75 प्रतिशत का निधीयन बैंक वित्त द्वारा किया जाना था। इस पद्धति के तहत न्यूनतम चालू अनुपात 1.33:1 रखा गया। पद्धति III: चालू आस्तियों में से मूल चालू आस्तियों को घटाकर 25 प्रतिशत का निधीयन दीर्घावधि संसाधनों से किया जाना था। इस पद्धति के तहत चालू अनुपात 1.33 से अधिक होगा।

³⁰ नकद ऋण प्रणाली की पुनरीक्षा के लिए एक समिति का गठन किया गया (अध्यक्ष: श्री के.बी.चोरे)।

किया गया। सरकार द्वारा इन 6 बैंकों का राष्ट्रीयकरण करने के साथ भारतीय स्टेट बैंक और उसके सहयोगी बैंकों सहित सरकारी क्षेत्र के बैंकों की संख्या बढ़कर अप्रैल 1980 में 28 हो गयी, जिनके पास बैंकिंग क्षेत्र की 91 प्रतिशत जमाराशियां थीं।

सांविधिक पूर्वक्रय तथा बैंकिंग क्षेत्र पर उनके प्रभाव में वृद्धि

3.111 1970 तथा 1980 के दशक में व्यापक विस्तारकारी योजना व्यय का एक परिणाम यह था कि सरकार के बजट का विस्तार हुआ तथा राजकोषीय घाटों के वित्तीयन के लिए बैंकिंग क्षेत्र का अधिकाधिक उपयोग किया गया। जीडीपी के प्रति राजकोषीय घाटे का अनुपात निरंतर बढ़ते हुए 1970-71 में जीडीपी के 3.1 प्रतिशत से 1980-81 में 5.8 प्रतिशत तथा 1990-91 में 7.9 प्रतिशत हो गया (सारणी III.29)।

3.112 इस चरण के दौरान वृद्धि तथा मुद्रास्फीति के बीच ट्रेड-ऑफ अधिक स्पष्ट था क्योंकि पंचवर्षीय योजनाओं के अंग के रूप में किए गए उच्च निवेश को घाटे के वित्तपोषण द्वारा समर्थन दिया गया जो मुद्रास्फीतिकारी था। सरकार ने तदर्थ खजाना बिलों द्वारा घाटे के स्वतः मुद्रीकरण के जरिए रिजर्व बैंक से उधार लिया, जिसके फलस्वरूप, आरक्षित मुद्रा और मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि हो गई। घाटे के वित्त, जिससे मुद्रास्फीति में तेजी आई, के प्रभाव को कम करने के लिए रिजर्व बैंक को नकदी आरक्षित अनुपात (सीआरआर) में बार-बार वृद्धि करनी पड़ी। सीआरआर को क्रमिक रूप से बढ़ाकर जून 1973 के 5.0 प्रतिशत से जुलाई 1989 तक 15.0 प्रतिशत कर दिया गया (सारणी 3.30)। इसके अलावा, नवंबर 1983 से 10.0 प्रतिशत का अतिरिक्त सीआरआर भी लागू किया गया। यह धारणा थी कि ऋण गुणक को प्रभावी कर ऋण सृजन संबंधी बैंकों की क्षमता को कम किया जाए। समष्टि स्तर पर यह माना गया कि मांग को प्रभावित करनेवाला कारक मुद्रा आपूर्ति के बजाए ऋण है।

3.113 सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर), निवल मांग और मीयादी जमाराशियों का वह अनुपात जिसे बैंकों द्वारा नकद, सोने तथा भाररहित अनुमोदित प्रतिभूतियों में भारत में बनाए रखा जाना अपेक्षित

सारणी 3.29: केन्द्र सरकार के चुनिंदा राजकोषीय संकेतक

(जीडीपी का प्रतिशत)

वर्ष (अप्रैल-मार्च)	सकल राजकोषीय घाटा	सकल प्राथमिक घाटा	राजस्व घाटा	प्राथमिक राजस्व घाटा	केन्द्र को रिजर्व बैंक का निवल ऋण
1	2	3	4	5	6
1970-71	3.1	1.8	-0.4	-1.7	0.5
1975-76	3.6	2.2	-1.1	-2.5	-0.4
1980-81	5.8	4.0	1.4	-0.4	2.5
1985-86	7.9	5.2	2.1	-0.6	2.2
1990-91	7.9	4.1	3.3	-0.5	2.6

नोट : ऋणात्मक (-) चिह्न अधिशेष दर्शाता है।

स्रोत : हैडबुक ऑफ स्टैटिस्टिक्स ऑन दि इंडियन इकॉनॉमी, 2006-07।

सारणी 3.30: नकदी आरक्षित निधि अनुपात में परिवर्तन - 1973-1989

प्रभावी तारीख	नकदी आरक्षित निधि अनुपात *	प्रभावी तारीख	नकदी आरक्षित निधि अनुपात *
जून 29, 1973	5.00	जून 11, 1982	7.00
सितंबर 08, 1973	6.00	मई 27, 1983	7.50
सितंबर 22, 1973	7.00	जुलाई 29, 1983	8.00
जुलाई 01, 1974	5.00	अगस्त 27, 1983	8.50
दिसंबर 14, 1974	4.50	नवंबर 12, 1983	8.50
दिसंबर 28, 1974	4.00	फरवरी 04, 1984	9.00
सितंबर 04, 1976	5.00	अक्टूबर 27, 1984	9.00
नवंबर 13, 1976	6.00	दिसंबर 01, 1984	9.00
जनवरी 14, 1977	6.00	अक्टूबर 26, 1985	9.00
जुलाई 01, 1978	6.00	नवंबर 22, 1986	9.00
जून 05, 1979	6.00	फरवरी 28, 1987	9.50
जुलाई 31, 1981	6.50	मई 23, 1987	9.50
अगस्त 21, 1981	7.00	अक्टूबर 24, 1987	10.00
नवंबर 27, 1981	7.25	अप्रैल 23, 1988	10.00
दिसंबर 25, 1981	7.50	जुलाई 2, 1988	10.50
जनवरी 29, 1982	7.75	जुलाई 30, 1988	11.00
अप्रैल 09, 1982	7.25	जुलाई 1, 1989	15.00

*: सीआरआर के आंकड़े देशी निवल मांग और मीयादी देयताओं (एनडीटीएल) के प्रतिशत हैं।

स्रोत : हैडबुक ऑफ स्टैटिस्टिक्स ऑन दि इंडियन इकॉनॉमी, 2006-07।

था, के जरिए भी बैंकिंग क्षेत्र निधियों का बंधुआ स्रोत बन गया। 1970 तथा 1991 के बीच एसएलआर में 12.5 प्रतिशत अंकों का संशोधन किया गया। यद्यपि एसएलआर को विवेकपूर्ण अपेक्षा के रूप में 1949 में शुरू किया गया था, यह केंद्र तथा राज्य सरकार और सरकारी क्षेत्र की कुछ संस्थाओं के घाटे के वित्तपोषण का एक साधन बन गया (सारणी 3.31)। इस प्रकार 1991 तक बैंकिंग क्षेत्र के 63.5 प्रतिशत संसाधनों का पूर्वक्रय एसएलआर और सीआरआर के रूप में कर लिया गया था।

सारणी 3.31: सांविधिक चलनिधि अनुपात में परिवर्तन - 1970-1990

प्रभावी तारीख	सांविधिक चलनिधि अनुपात *
05 फरवरी 1970	26.00
24 अप्रैल 1970	27.00
28 अगस्त 1970	28.00
04 अगस्त 1972	29.00
17 नवंबर 1972	30.00
08 दिसंबर 1973	32.00
01 जुलाई 1974	33.00
01 दिसंबर 1978	34.00
25 सितंबर 1981	34.50
30 अक्टूबर 1981	35.00
28 जुलाई 1984	35.50
01 सितंबर 1984	36.00
08 जून 1985	36.50
06 जुलाई 1985	37.00
25 अप्रैल 1987	37.50
2 जनवरी 1988	38.00
22 सितंबर 1990	38.50

*: देशी निवल मांग और मीयादी देयताओं (एनडीटीएल) के प्रतिशत हैं।

स्रोत : हैडबुक ऑफ स्टैटिस्टिक्स ऑन दि इंडियन इकॉनॉमी, 2006-07।

3.114 सीआरआर/एसएलआर में हुई वृद्धि स्वयं बैंकिंग क्षेत्र को प्रभावित नहीं कर सकती थी बशर्ते उक्त अपेक्षाएं पर्याप्त रूप से लाभकारी रही होतीं। तथापि, बैंकों ने सीआरआर की पात्र शेष राशियों पर (उस समय के 3 प्रतिशत के सांविधिक न्यूनतम के ऊपर) बाजार दर से कम ब्याज कमाया, जबकि सरकारी प्रतिभूतियों पर होनेवाली आय, उधार ब्याज दर तो दूर, बचत जमा पर मिलनेवाली ब्याज दर से भी काफी कम थी। उदाहरण के लिए 1981-82 तक, सरकारी प्रतिभूतियों पर आय बैंकों द्वारा एक से तीन साल की परिपक्वतावाली जमाराशियों पर प्रदत्त ब्याज दर से कम थी। यद्यपि उसके बाद सरकारी प्रतिभूतियों पर आय में वृद्धि हुई, तथापि यह बैंकों की उधार ब्याज दरों की तुलना में काफी कम थी (सारणी 3.32)।

3.115 इस चरण में कई नियंत्रण लागू किए गए (बॉक्स III.1)।

3.116 निदेशित ऋण व्यवस्थाओं के विस्तार, नियंत्रित ब्याज दर संरचना तथा सांविधिक पूर्वक्रयों में वृद्धि सभी का बैंकों की लाभप्रदता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। उदारीकरण के प्रति शुरू किए गए कई उपायों, जिनके ब्यौरे इस खंड में बाद में दिए गए हैं, के फलस्वरूप बैंकों की आस्तियों पर प्रतिलाभ (आरओए) 1980 के दशक के द्वितीयार्ध में थोड़ा सुधरने के पहले 1975 और 1985 के बीच तेजी से कम हो गया। सभी बैंक समूहों में समान रूप से लाभप्रदता में गिरावट देखी गई, यद्यपि स्टेट बैंक समूह में यह अधिक मुखर थी (सारणी 3.33)।

सारणी 3.32: ब्याज दरों की संरचना - वाणिज्य बैंक

(प्रतिशत वार्षिक)

मार्च के अंत में)	वाणिज्य बैंक दर							केन्द्र सरकार की प्रतिभूतियां प्राथमिक प्रतिफल
	जमा ब्याज दरें			उधार ब्याज दरें				
	1 से 3 साल	3 से 5 साल	5 साल से अधिक	एसबीआइ अग्रिम दर **	अधिकतम दर सामान्य	न्यूनतम दर सामान्य	न्यूनतम दर चयनात्मक ऋण नियंत्रण	
1	2	3	4	5	6	7	8	9
1971	6.00-6.5	7.0	7.25	7.0-8.5	-	-	-	-
1972	6.0	6.5	7.25	8.5	-	-	12.0	-
1973	6.0	6.5	7.25	8.5	-	-	12.0	-
1974	6.0	7.0	7.25	8.5-9.0	-	10.0-11.0	12.00-13.0	5.18
1975	6.75-8.0	7.75-9.0	8.00-10.00	9.0-13.5	-	11.0-13.0	14.00-15.0	5.67
1976	8.0	9.0	10.00	14.0	16.50	12.5	14.00-15.0	5.79
1977	8.0	9.0	10.00	14.0	16.50	12.5	14.00-15.0	5.73
1978	6.0	8.0	9.00	13.0	15.00	12.5	14.00-15.0	5.85
1979	6.0	7.5	9.00	13.0	15.00	12.5	14.00-15.0	5.84
1980	7.0	8.5	10.00	16.5	18.00	12.5	15.50-18.0	-
1981	7.50-8.5	10.0	10.00	16.5	19.40-19.50	13.5	16.70-19.5	7.03
1982	8.00-9.0	10.0	10.00	16.5	19.50	-	17.50-19.5	7.29
1983	8.00-9.0	10.0	11.00	16.5	19.50	-	17.50-19.5	8.36
1984	8.00-9.0	10.0	11.00	16.5	18.00	-	16.50-18.0	9.29
1985	8.00-9.0	10.0	11.00	16.5	18.00	-	16.50-18.0	9.98
1986	8.50-9.0	10.0	11.00	16.5	17.50	-	16.50-17.5	11.08
1987	8.50-9.0	10.0	11.00	16.5	17.50	-	16.50-17.5	11.38
1988	9.00-10.0	10.0	10.00	16.5	16.50	-	16.5	11.25
1989	9.00-10.0	10.0	10.00	16.5	-	16.0	16.0	11.40
1990	9.00-10.0	10.0	10.00	16.5	-	16.0	16.0	11.49

'-' : अनुपलब्ध

* : 1974 से 1979 तक की अवधि के आंकड़े मोचन प्रतिफल से संबंधित हैं।

** : स्टेट बैंक की उधार दर से संबंधित है, जो बैंक द्वारा स्वीकृत विभिन्न श्रेणी और वर्ग के अग्रिमों के लिए बेंचमार्क ब्याज दर थी।

स्रोत : हैंडबुक ऑफ स्टैटिस्टिक्स ऑन दि इंडियन इकॉनॉमी, 2006-07 तथा मुद्रा और वित्त की रिपोर्ट, खंड II, विभिन्न अंक।

बॉक्स III.1

लागू किए गए प्रमुख नियंत्रण : 1967 से 1991

1967	आर्थिक नीति की जरूरतों के प्रति बैंकिंग प्रणाली को बेहतर रूप में संरेखित करने की दृष्टि से दिसंबर 1967 में बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण की घोषणा की गई।	पहली पद्धति में रखें, जिसमें बैंक वित्त को छोड़कर चालू आस्तियों और चालू देयताओं के बीच के अंतर का निधीयन दीर्घावधि स्रोतों से किया जाना अपेक्षित था।
1968	योजना की प्राथमिकताओं के अनुसार ऋण आबंधित करने के लिए रिजर्व बैंक तथा सरकार की सहायता हेतु फरवरी 1968 में राष्ट्रीय ऋण परिषद (एनसीसी) की स्थापना की गई।	1976 न्यूनतम उधार दरों के अलावा बैंक ऋणों के लिए अधिकतम दर निर्धारित की गई।
1969	50 करोड़ रुपए से अधिक जमाराशिवाले 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया।	1980 ऋणकर्ताओं के दीर्घावधि स्रोतों में से कार्यशील पूंजी के प्रति उनके अंशदान को ऋण की दूसरी पद्धति में रखा गया अर्थात्, उत्पादन के अनुमानित स्तर के लिए अपेक्षित चालू आस्तियों का कम से कम 25 प्रतिशत, जिससे न्यूनतम चालू अनुपात 1.33 :1 होगा (1975 में निर्धारित मानदंडों के तहत विनिर्दिष्ट कार्यशील पूंजी अंतर के 25 प्रतिशत की तुलना में)।
1969	पूरे देश में बड़े पैमाने पर जमा संग्रहण करने के लिए तथा कमजोर वर्गों को उधार में वृद्धि करने के लिए अग्रणी बैंक योजना लागू की गई।	1980 14 मार्च 1980 को 200 करोड़ रुपए से अधिक मांग और मीयादी देयताओं वाले 6 बैंकों का राष्ट्रीयकरण 15 अप्रैल 1980 को किया गया।
1972	प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र की संकल्पना को औपचारिक रूप दिया गया। सरकारी क्षेत्र के बैंकों के लिए नवंबर 1974 में तथा निजी क्षेत्र के बैंकों के लिए नवंबर 1978 में विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित किए गए।	1988 सेवा क्षेत्र दृष्टिकोण (एसएए) लागू कर अग्रणी बैंक योजना को आशोधित किया गया।
1972	समाज के कमजोर वर्गों की जरूरतें पूरी करने तथा उनके उत्थान के लिए 1972 में विभेदक ब्याज दर (डीआरआइ) योजना शुरू की गई।	1989 सीआरआर को क्रमिक रूप से बढ़ाकर जून 1973 के 5.0 प्रतिशत से जुलाई 1989 तक 15.0 प्रतिशत किया गया।
1973	प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र को छोड़कर सभी ऋणों के लिए न्यूनतम उधार दर निर्धारित की गई।	1991 एसएएलआर को फरवरी 1970 के 26 प्रतिशत से 12.5 प्रतिशत अंक बढ़ाकर सितंबर 1990 में 38.5 प्रतिशत किया गया।
1973	जिला ऋण योजनाएं शुरू की गईं।	
1975	बैंकों से अपेक्षा की गई कि वे बैंकिंग प्रणाली से 10 लाख रुपए से अधिक की सकल ऋण सीमा वाले सभी उधारकर्ताओं को उधार की	

व्यष्टि नियंत्रणों में कमी, उदारीकरण तथा बैंकों के सुदृढीकरण के प्रति आरंभिक उपाय

3.117 1980 के दशक के मध्य में अर्थव्यवस्था के कई क्षेत्रों में उदारीकरण के प्रति कई छोटे कदम उठाए गए। उदाहरण के लिए, कोटा और अधिकतम सीमा को शिथिल किया गया तथा आयातों को उदार बनाया गया। कई तरह से 1980 के दशक के उत्तरार्ध में वित्तीय उदारीकरण की पहली लहर की भी शुरुआत हुई। इस प्रक्रिया के अंग के

रूप में, रिजर्व बैंक ने उदारीकरण के प्रति कई पहलें कीं। गुणवत्ता के अच्छे रिकार्डवाले उधारकर्ताओं को कुछ राहत प्रदान करने की दृष्टि से तथा साथ ही उधारकर्ताओं पर लगायी जानेवाली ब्याज दरों के मामले में बैंकों को लचीलापन प्रदान करने के लिए, न्यूनतम दर के अधीन सभी उधार ब्याज दरों पर अधिकतम सीमा समाप्त कर दी गई। बैंकों को ऐसा विवेकाधिकार दिया गया कि वे रियायती उधार दर पर ऋण प्राप्त श्रेणियों के अलावा अन्य श्रेणियों से न्यायसंगत तरीके से अलग ब्याज दर वसूलें। अल्पावधि ब्याज दरों को प्रणाली की अन्य ब्याज दरों के साथ बेहतर रूप में संरेखित करने के लिए कई उपाय भी किए गए। सरकारी प्रतिभूति बाजार में मांग और आपूर्ति की स्थिति को दर्शाने के लिए सरकारी बांडों पर ब्याज दरें क्रमिक रूप से बढ़ा दी गईं।

सारणी 3.33: वाणिज्य बैंकों की आस्तियों पर प्रतिलाभ*

वर्ष (जनवरी- दिसंबर)	एसबीआइ	राष्ट्रीयकृत बैंक	अन्य भारतीय अनुसूचित वाणिज्य बैंक	आस्तियों पर प्रतिलाभ
1970	0.48	0.64	0.65	0.59
1975	1.19	0.57	0.59	0.77
1980	0.86	0.56	0.59	0.66
1985	0.08	0.06	0.13	0.07
1989-90 @	0.12	0.15	0.23	0.15

* : कुल आस्तियों के प्रतिशत के रूप में कर पूर्व निवल लाभ।

@ : अप्रैल-मार्च

स्रोत : भारत स्थित बैंकों संबंधी सांख्यिकीय सारणियां, विभिन्न अंक।

3.118 भौगोलिक व्याप्त तथा अत्यधिक नियंत्रणों के रूप में बैंकिंग के नेटवर्क के विस्तार की प्रक्रिया ने बैंकों की आस्तियों की गुणवत्ता तथा उनकी लाभप्रदता को प्रभावित किया। इन गतिविधियों के प्रतिसाद में, समेकन और विशाखीकरण के लिए तथा कुछ सीमा तक वित्तीय क्षेत्र के अविनियमन के लिए 1980 के दशक के मध्य में कई उपाय किए गए। समेकन उपायों का उद्देश्य यह था कि बैंकों की संरचना, प्रशिक्षण, हाउसकीपिंग, ग्राहक सेवा, आंतरिक प्रक्रियाओं

और प्रणालियों, ऋण प्रबंधन, ऋण वसूली, स्टाफ उत्पादकता और लाभप्रदता में सुदृढ़ता लाई जाए। बैंकों को परिचालनार्थ लचीलापन प्रदान करने के लिए भी कुछ पहलें की गईं।

3.119 1980 के दशक के आरंभ में भारतीय बैंकिंग क्षेत्र को स्टाक और बांड बाजारों, गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों तथा म्यूच्युअल फंड की स्कीमों से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। कई कंपनियां सफलतापूर्वक इक्विटी बाजार में आई तथा उन्होंने कर प्रोत्साहनों सहित या रहित लाभकारी आय के साथ बांड जारी किए। लघु बचत लिखतें (राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र VI निर्गम की तरह) भी लोकप्रिय हुई क्योंकि उनमें कर लाभ का प्रस्ताव था। इसने बचतकर्ताओं को उन बैंक जमा राशियों से दूर कर दिया जिनमें इस प्रकार की कोई भी विशिष्टता नहीं थी तथा जिनमें जमाकर्ताओं को बहुत कम अथवा ऋणात्मक वास्तविक ब्याज दर का प्रस्ताव था। बैंकिंग क्षेत्र मोटे तौर पर बंधा हुआ था क्योंकि बैंककारी विनियमन अधिनियम इसे बैंकिंग से इतर कार्यकलाप शुरू करने की अनुमति नहीं देता था। फलस्वरूप, घरेलू क्षेत्र की बचत राशियों में जमा राशियों के हिस्से में गिरावट आई जबकि गैर बैंकिंग कंपनियों की जमा राशियों तथा सरकार द्वारा दी जानेवाली अल्प बचत लिखतों के हिस्से में वृद्धि हुई। बैंकिंग उद्योग में गैर मध्यस्थता की इस प्रक्रिया का मुख्य कारण यह था कि व्यक्तियों और कंपनी जमाकर्ताओं को कई तरह के निवेश के अवसर उपलब्ध थे (ब्यौरों के लिए अध्याय IV देखें)। कई अन्य देशों की तरह भारत स्थित बैंकों को ऐसे कार्यकलाप करने की अनुमति नहीं थी जो परंपरागत तौर पर स्वयं बैंकिंग से संबंधित नहीं थे। बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 में बैंकिंग की परिभाषा इस प्रकार की गई “उधार देने या निवेश के प्रयोजन से जनता से धन के निक्षेप स्वीकार करना, जो कि मांग पर या अन्यथा प्रतिदेय हों तथा चेक, ड्राफ्ट या आर्डर द्वारा या अन्यथा निकाले जा सकें।” इसने बैंकों को बैंकैतर आस्तियों पर निवेश करने की मनाही की। इस प्रकार बैंक ऐतिहासिक रूप से इस प्रकार के क्षेत्रों में कार्य करते थे, यथा बैंकिंग सेवाएं, विप्रेषण सेवा का प्रावधान, चेकों तथा विनिमय बिलों की वसूली, गारंटियों का निर्गम, साख पत्र खोलना तथा सुरक्षित जमा लॉकर पट्टे पर देना।

3.120 उदारीकरण के प्रति एक निश्चित उपाय के रूप में, बैंककारी विनियमन अधिनियम को 1984 में संशोधित किया गया ताकि वित्तीय गैर मध्यस्थता के कारण बैंकों की भूमिका में आई गिरावट का समाधान किया जा सके। बैंकों को सहायक संस्थाओं के जरिए व्यापारी बैंकिंग कार्यकलाप करने की अनुमति दी गई। तदनुसार कई बैंकों ने व्यापारी बैंकिंग और प्रतिभूति बाजार संबंधी कार्यकलाप, उपस्कर पट्टेदारी, किराया खरीद, म्यूच्युअल फंड, आवास ऋण तथा जोखिम पूंजी संबंधी कार्य करने के लिए सहायक संस्थाओं की स्थापना की। बैंकिंग कार्यकलापों के विशाखीकरण ने बैंकों का व्यवसाय बढ़ाने में और ब्याजेतर आय प्राप्त करने का अवसर प्रदान कर उनकी लाभप्रदता बढ़ाने में उनकी मदद की। यह एक सांकेतिक

प्रक्रिया थी क्योंकि औद्योगिक क्षेत्र इन कार्यकलापों को करनेवाले बैंकों के साथ अच्छा महसूस कर रहा था। इस अविनियमन के फलस्वरूप, कुछ ऐसी जोखिम थी जिनका समाधान किया जाना था। रिजर्व बैंक ने इनका समाधान सहायक संस्थाओं के जरिए प्रतिभूति कारोबार करने के लिए बैंकों को प्रोत्साहित करके किया, इस प्रकार परंपरागत बैंकिंग और गैर परंपरागत कार्यकलाप के बीच अभेद्य दीवार खड़ी कर दी गई। रिजर्व बैंक ने संबद्ध उधार को न्यूनतम करने के लिए औद्योगिक समूहों के साथ प्रतिधारिताओं की भी मनाही की।

3.121 बैंकों का स्वास्थ्य भी रिजर्व बैंक के लिए प्रमुख चिंता का विषय बन गया है। अधिकांश राष्ट्रीयकृत बैंकों का पूंजी आधार कमजोर था। बैंकों के पूंजी आधार को सुदृढ़ बनाने के लिए, रिजर्व बैंक ने सरकार से परामर्श करके राष्ट्रीयकृत बैंकों के पूंजी आधार को बढ़ाने के लिए एक योजना तैयार की। सरकार ने सातवीं पंचवर्षीय योजना (अप्रैल 1985-मार्च 1990) के दौरान 20 राष्ट्रीयकृत बैंकों के बीच 2000 करोड़ रुपए की राशि का आबंटन किया। पूंजी आधार को बढ़ाने की इस योजना का उद्देश्य यह था कि जमा राशि के प्रति स्वाधिकृत निधियों के अनुपात को बढ़ाकर उसे 2.5 प्रतिशत के स्तर तक लाया जाए। आबंटित राशि का निवेश साथ-साथ गैर बेचान योग्य विशेष प्रतिभूतियों में कर दिया गया, जिन पर 7.75 प्रतिशत वार्षिक की ब्याज दर देय थी।

3.122 बैंकिंग प्रणाली को सुदृढ़ करने की दृष्टि से, 1985 में स्वास्थ्य कूट प्रणाली लागू की गई, जिसमें बैंक ऋणों को उनके निष्पादन के अनुसार वर्गीकृत किया गया। स्वास्थ्य कूट प्रणाली के तहत वाणिज्य बैंकों से यह अपेक्षा की गई कि वे अलग-अलग अग्रिमों की गुणवत्ता के आधार पर एकरूप ग्रेडिंग प्रणाली के तहत अपने अग्रिम संविभाग को आठ श्रेणियों में वर्गीकृत करें। इस प्रणाली में आठ कूट थे। इनमें से पांच से आठ क्रमांक तक को अनर्जक आस्ति माना गया। इनमें ये शामिल थे - (क) वापस मांगे गए ऋण; (ख) मुकदमा दायर खाते अर्थात् ऐसे खाते जिनमें कानूनी कार्रवाई या वसूली की कार्यवाही शुरू की गई थी; (ग) डिक्रीशुदा ऋण; अर्थात् जहां मुकदमा दायर किया गया है तथा डिक्री प्राप्त हुआ है और (घ) अशोध्य तथा संदिग्ध के रूप में वर्गीकृत ऋण। अनर्जक ऋणों पर ब्याज लगाना बंद करने की विवेकपूर्ण लेखांकन प्रथा के रूप में, बैंकों को मई 1989 में सूचित किया गया कि वे स्वास्थ्य कूट वर्गीकरण 6,7 तथा 8 के तहत वर्गीकृत ऋणों पर उस तिमाही से ब्याज नहीं लगाएं एवं उसे अपनी आय में शामिल नहीं करें, जिस तिमाही में व्यक्तिगत खातों को उक्त श्रेणियों के तहत वर्गीकृत किया गया है। बैंक खातों में और अधिक पारदर्शिता लाने के प्रति एक और उपाय के रूप में तथा यह सुनिश्चित करने के लिए कि आय का निर्धारण अधिक विवेकपूर्ण आधार पर किया गया है, बैंकों को अक्टूबर 1990 में यह सूचित किया गया कि वे स्वास्थ्य कूट वर्गीकरण 5 के तहत वर्गीकृत अग्रिमों पर भी लेखा वर्ष 1990-91 से उस तिमाही से ब्याज नहीं लगाएं तथा उसे अपने आय लेखा में शामिल नहीं करें, जिस तिमाही में व्यक्तिगत खातों को इस प्रकार

वर्गीकृत किया गया हो। स्वास्थ्य कूट वर्गीकरण 4 के तहत ब्याज लगाने का कार्य पर्याप्त प्रतिभूति की उपलब्धता तथा प्रतिभूति को वसूलने की संभावनाओं के आधार पर बैंकों के विवेक पर छोड़ दिया गया।

3.123 सारांश के तौर पर, इस चरण के आरंभ में आनेवाले प्रमुख मुद्दे बैंकों तथा उद्योग के बीच के मजबूत अंतर्बंधन थे, जिसके फलस्वरूप कृषि की उपेक्षा की गई। इस चरण में इस बात पर ध्यान केंद्रित किया गया कि उक्त अंतर्बंधन को तोड़कर कृषि को ऋण के प्रवाह में सुधार लाया जाए। इस प्रयोजन के लिए प्रमुख उपाय थे - देश में प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण तथा प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र उधार के रूप में निदेशित ऋण शुरू करना। राष्ट्रीयकरण के चरण के दौरान की उपलब्धियां व्यापक, विभिन्नतापूर्ण तथा व्यापक तौर पर स्वीकृत थीं। 1969 तथा बाद में 1980 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण में बैंकिंग कारोबार के बड़े खंड को सरकारी स्वामित्व के तहत ला दिया। राष्ट्रीयकरण के बाद के चरण में, राष्ट्र इस प्रकार की वित्तीय संरचना निर्मित करने में सक्षम था जो भौगोलिक दृष्टि से व्यापक और वित्तीय दृष्टि से विशाखीकृत हो, ताकि अर्थव्यवस्था की बढ़ रही जरूरतों को पूरा करने के लिए संसाधन जुटाने की प्रक्रिया तीव्र की जा सके। अर्थव्यवस्था के सभी उत्पादक कार्यकलापों को समय पर एवं पर्याप्त ऋण उपलब्ध कराना सुनिश्चित करने के लिए 1969 में बैंकों का राष्ट्रीयकरण एक प्रमुख उपाय था। इसकी अभिकल्पना इस प्रकार की गई ताकि छोटे व्यक्तियों और ग्रामीण एवं अर्ध शहरी क्षेत्रों तक पहुंचा जा सके और उन क्षेत्रों को ऋण उपलब्ध कराया जा सके जिन्हें उस समय तक बैंकिंग प्रणाली द्वारा उपेक्षित किया गया था, ऐसा उस स्वल्पप्रतियोगितात्मक (Oligopolistic) संरचना के स्थान पर किया जाना था जिसके तहत प्रणाली द्वारा मुख्य रूप से शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों की जरूरतें पूरी की जा रही थीं तथा जहां ऋण की स्वीकृति को एक संरक्षण का कार्य माना जाता था और उसे प्राप्त करना एक विशेषाधिकार माना जाता था।³¹ दिसंबर 1990 के अंत में, देश में वाणिज्य बैंकों (आरआरबी सहित) की 59,752 शाखाएं थीं, जिनमें से 34,791 (58.2 प्रतिशत) ग्रामीण क्षेत्रों में थीं। 1969 के आरंभ से देखे गए तीव्र शाखा विस्तार के फलस्वरूप, प्रति बैंक कार्यालय औसत आबादी 1969 के 65,000 से घटकर दिसंबर 1990 के अंत में 14,000 हो गई। इसने विशेष रूप से बैंक सुविधारहित ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग का प्रसार करने के प्रति किए गए व्यापक प्रयासों को प्रदर्शित किया।³² इस विस्तार की एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि क्षेत्रों के बीच एक सुदृढ़ समाभिरूपता थी। 1977 के 1:4 लाइसेंसिंग नियम के पश्चात बैंक सुविधा रहित क्षेत्रों में बैंक शाखाओं में वस्तुतः वृद्धि हुई क्योंकि 1977 तथा 1990 के बीच खोली गई बैंक शाखाओं में से तीन-चौथाई से अधिक बैंक सुविधा रहित क्षेत्रों में थीं।

3.124 व्यापक शाखा विस्तार के फलस्वरूप बैंकिंग प्रणाली की जमाराशियों और ऋण में वृद्धि 1969 के क्रमशः जीडीपी के 13 और 10 प्रतिशत से बढ़कर 1991 तक क्रमशः 38 प्रतिशत और 24 प्रतिशत हो गई। खोली गई नयी शाखाओं से जमा संग्रहण में काफी मदद मिली तथा साक्ष्य यह बताते हैं कि वृद्धिशील जमाराशियों का एक बड़ा भाग 1969 के बाद खोली गई शाखाओं से प्राप्त हुआ। कुल जमाराशियों में ग्रामीण जमाराशियों का हिस्सा 1969 के 3 प्रतिशत से बढ़कर 1990 में 16 प्रतिशत हो गया। कुल बैंक ऋण में ग्रामीण क्षेत्र को ऋण का हिस्सा 1969 के 3.3 प्रतिशत से बढ़कर 1990 में 14.2 प्रतिशत हो गया। बैंकिंग क्षेत्र ने क्षेत्रवार आबंटन की अपेक्षाओं के अधीन अर्थव्यवस्था की ऋण संबंधी जरूरतें पूरी कीं तथा निवेशयोग्य निधियों के दक्ष और उत्पादक नियोजन में आयोजना संबंधी प्राधिकारियों को समर्थन प्रदान किया ताकि स्थिरता और सामाजिक न्याय के साथ वृद्धि को अधिकतम किया जा सके।

3.125 1970 और 1980 के दशक में बढ़ रहे राजकोषीय घाटे तथा बढ़े हुए स्वतः मुद्रीकरण, जिसके जरिए सरकार तदर्थ खजाना बिलों की मदद से रिजर्व बैंक से उधार ले सकती थी, के फलस्वरूप आरक्षित मुद्रा और मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि हो गई। आरक्षित मुद्रा में वृद्धि को रोकने के लिए रिजर्व बैंक से अपेक्षित था कि वह आरक्षित नकदी अनुपात (सीआरआर) में वृद्धि करे। यद्यपि बैंकिंग प्रणाली द्वारा संसाधन संग्रहण में तीव्र वृद्धि हुई, बैंकिंग प्रणाली से की गई मांग में भी वृद्धि हुई। सरकार के राजकोषीय घाटे में वृद्धि का वित्तपोषण करने के लिए, रिजर्व बैंक को बैंकों का एसएलआर बढ़ाने के लिए मजबूर किया गया। एक समय पर, बैंकिंग क्षेत्र के संसाधनों के 63.5 प्रतिशत का पूर्वक्रय सीआरआर और एसएलआर द्वारा कर लिया गया था तथा इस प्रकार के नियोजनों पर उचित प्रतिफल प्राप्त नहीं हो रहा था। विभिन्न क्षेत्रों से निधियों की बढ़ी हुई मांग को देखते हुए कंपनियों के स्तर पर कुछ वित्तीय अनुशासन लाने के प्रयास किए गए। तथापि, इस प्रयोजन के निर्धारित मानदंडों को अत्यधिक सख्त पाया गया। विशेष रूप से परंपरागत क्षेत्रों को सख्त मौद्रिक नीति की अवधियों के दौरान समग्र ऋण प्रतिबंधों का सामना करना पड़ा। फलस्वरूप, परंपरागत क्षेत्रों ने बैंकिंग प्रणाली से इतर स्रोतों से निधियों की मांग आरंभ की, यथा पूंजी बाजार से और जनता से प्रत्यक्ष तौर पर जमाराशियां जुटाना जो गैर मध्यस्थता की ओर ले जाता है। दूसरी ओर प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए ऋण मूल्यांकन मानकों को कम किया गया। इस अवधि के दौरान, जमा और उधार दर की संरचना बहुत जटिल हो गई। सरकारी प्रतिभूतियों और प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र ऋणों पर कम प्रतिलाभ का अभिप्राय यह था कि अन्य क्षेत्रों से ऊंची दरों पर ब्याज वसूला जाना था। ब्याज की दरें उधारकर्ताओं के प्रकार,

³¹ नरसिंहम समिति रिपोर्ट, 1991।

³² वही

उधार के आकार और स्थान के अनुसार अलग-अलग थीं। विनिर्दिष्ट ब्याज दरें कतिपय कार्यकलापों यथा अनाज की खरीद, तेल कंपनियों और सरकारी क्षेत्र की कुछ प्रमुख इकाइयों के लिए सस्ती थीं। पर्याप्त प्रतिस्पर्धा के अभाव के साथ विभिन्न प्रकार के नियंत्रणों के फलस्वरूप बैंकिंग प्रणाली की उत्पादकता और दक्षता में गिरावट आई और उसकी लाभप्रदता गंभीर रूप से प्रभावित हुई। बैंकों की पूंजी की स्थिति में गिरावट आई और उनके पास बड़ी मात्रा में अनर्जक आस्तियां इकट्ठी हो गईं।

3.126 1980 के दशक के मध्य में बैंकिंग क्षेत्र को उदार बनाने और उसकी लाभप्रदता, स्वास्थ्य एवं सुदृढ़ता में सुधार लाने के लिए कुछ प्रयास किए गए, जो उस समय तक व्यापक रूप से निजी स्वामित्ववाली प्रणाली से रूपांतरित होकर सरकारी क्षेत्र की प्रमुखता वाली प्रणाली बन चुका था। तथापि, उस समय मौजूद नियंत्रणों/ विनियमनों के प्रकार और मात्रा को देखते हुए ये छोटे कदम थे। 1990 के दशक के आरंभ में सरकार द्वारा शुरू किए गए संरचनागत सुधारों के फलस्वरूप प्रमुख सुधार अगले चरण में घटित हुए।

V. वित्तीय क्षेत्र सुधारों का चरण - 1991-92 तथा उसके बाद

3.127 भुगतान संतुलन की गंभीर समस्या की पृष्ठभूमि में केंद्र सरकार द्वारा 1990 के दशक के आरंभ में शुरू किए गए संरचनागत सुधारों, जिसमें व्यापार, उद्योग, निवेश तथा बाह्य क्षेत्र शामिल थे, के अंग के रूप में आरंभ किए गए वित्तीय क्षेत्र संबंधी सुधारों के प्रतिसाद में इस चरण में बैंकिंग क्षेत्र में उल्लेखनीय विकास हुआ। वास्तविक अर्थव्यवस्था में हुए सुधारों की पूरी संभाव्यता का दोहन करने के लिए एक जागरूक और प्रतिस्पर्धी वित्तीय क्षेत्र, विशेष तौर पर बैंकिंग क्षेत्र, की जरूरत महसूस की गई। भारत सरकार ने वित्तीय क्षेत्र की संरचना, संगठन, कार्य और प्रक्रिया संबंधी सभी पहलुओं की जांच करने के लिए अगस्त 1991 में वित्तीय प्रणाली संबंधी एक उच्चशक्ति प्राप्त समिति (सीएफएस) (अध्यक्ष: श्री एम.नरसिंहम) का गठन किया। समिति ने नवंबर 1991 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में व्यापक सिफारिशों की जो आनेवाले वर्षों में बैंकों, विकास वित्त संस्थाओं (डीएफआई) तथा पूंजी बाजार संबंधी वित्तीय क्षेत्र के सुधारों का आधार बना। समिति ने बैंकिंग क्षेत्र के भौगोलिक विस्तार तथा इसके कार्यो/परिचालनों और इस प्रकार अर्थव्यवस्था में वित्तीय मध्यस्थता और वृद्धि के संवर्धन में इसके द्वारा की गई सराहनीय प्रगति को रेखांकित किया। तथापि साथ ही समिति ने बैंकिंग क्षेत्र की खराब हालत को चिंतापूर्वक नोट किया। समिति ने सतर्क किया कि यदि प्रणाली की वित्तीय हालत में आई गिरावट का तुरंत उपचार नहीं किया गया तो इससे इस क्षेत्र को सौंपी गई बचतों के मूल्य और उन पर मिलनेवाले प्रतिलाभ में और अधिक कमी आ सकती है तथा जमाकर्ताओं और निवेशकों के विश्वास पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। तदनुसार, वित्तीय क्षेत्र को दक्षता और गतिशीलता प्रदान करने के लिए किए जा रहे समग्र संरचनागत सुधारों के अंग के रूप

में वित्तीय क्षेत्र संबंधी सुधारों की शुरुआत की गई। बैंकिंग और वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के प्रति देश का दृष्टिकोण 'पंचसूत्र' अथवा पांच सिद्धांतों द्वारा दिशानिर्देशित था: (i) सतर्कता और सुधार संबंधी उपायों का अनुक्रमण; (ii) मुख्यतः प्रबलित करनेवाले मानदंड लागू करना; (iii) विभिन्न क्षेत्रों (मौद्रिक, राजकोषीय, बाह्य और वित्तीय क्षेत्रों) के बीच पूरक सुधार लागू करना; (iv) वित्तीय संस्थाओं का विकास; तथा (v) वित्तीय बाजारों का विकास और समेकन। इस चरण में बैंकिंग क्षेत्र के विकास को दो उपचरणों में और विभाजित किया जा सकता है, अर्थात् 1991-92 से 1997-98 तक तथा 1997-98 के बाद।

सुधार का पहला चरण : 1991-92 से 1997-98 तक

वित्तीय स्वास्थ्य और सुदृढ़ता

3.128 बैंकिंग क्षेत्र की कमजोर स्थिति, कम लाभप्रदता तथा कमजोर पूंजी आधार 1990 के दशक के आरंभ में उसकी मुख्य समस्या थी। इसी से जुड़ा हुआ एक मुद्दा बैंकिंग क्षेत्र की सही स्थिति के मूल्यांकन से संबंधित था क्योंकि उस समय अनुसरण की जा रही स्वास्थ्य कूट प्रणाली व्यक्तिनिष्ठ विचारों पर आधारित थी तथा उसमें सुसंगति की कमी थी। इन मुद्दों का समाधान करने के लिए कई परस्पर प्रबलित करनेवाले उपाय शुरू किए गए। बैंकिंग क्षेत्र के स्वास्थ्य को सुधारने की दृष्टि से अप्रैल 1992 में एक चरणबद्ध तरीके से आय निर्धारण, आस्ति वर्गीकरण और प्रावधानीकरण तथा पूंजी पर्याप्तता संबंधी अंतरराष्ट्रीय तौर पर स्वीकृत विवेकपूर्ण मानदंड लागू किए गए। बैंकों को सूचित किया गया कि वे किसी अनर्जक आस्ति पर ब्याज न लगाएं तथा उसे आय खाते में शामिल न करें। इस प्रयोजन के लिए वस्तुनिष्ठ मानदंडों के आधार पर अनर्जक आस्तियों की स्पष्ट परिभाषा की गई। उस समय प्रचलित आठ स्वास्थ्य कूटों की मौजूदा प्रणाली की तुलना में, बैंकों से यह अपेक्षा की गई कि वे अपने अग्रिमों को चार व्यापक समूहों में वर्गीकृत करें, अर्थात् (i) मानक आस्तियां, (ii) अवमानक आस्तियां, (iii) संदिग्ध आस्तियां, तथा (iv) हानिगत आस्तियां।

3.129 पुराने आठ श्रेणीवाले स्वास्थ्य कूट प्रणाली में चार श्रेणियों को अनर्जक आस्ति माना गया था, अर्थात् मांगे गए ऋण, मुकदमा दायर खाते, डिक्रीशुदा ऋण और अशोध्य एवं संदिग्ध के रूप में वर्गीकृत ऋण तथा बैंक इन श्रेणियों पर ब्याज आय नहीं लगा सकते थे। तथापि, समस्याग्रस्त ऋण की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं थी और वास्तविक तौर पर बैंक सभी अनर्जक आस्तियों पर ब्याज आय लगा सकते थे। संशोधित मानदंडों ने बैंकों के स्वास्थ्य की सही स्थिति प्रकट की। पुरानी स्वास्थ्य कूट प्रणाली के आधार पर मार्च 1992 के अंत में सभी सरकारी क्षेत्र के बैंकों के कुल देशी अनर्जक अग्रिम कुल बकाया अग्रिमों का 14.5 प्रतिशत थे, जो संशोधित वर्गीकरण के आधार पर 31 मार्च 1993 को 23.2 प्रतिशत आता है। इसका अभिप्राय

यह था कि बैंकों के अग्रिमों का लगभग एक-चौथाई अनुत्पादक आस्तियों में लगाया गया था। इसने बैंकों की लाभप्रदता पर न सिर्फ़ प्रतिकूल असर डाला अपितु निधियों के पुनर्नियोजन को भी निवारित किया और इस प्रकार उनके तुलनपत्रों के विकास को निरुद्ध किया गया।

3.130 बैंकों से यह भी अपेक्षा की गई कि वे अवमानक आस्तियों पर 10 प्रतिशत तथा 'संदिग्ध' के रूप में वर्गीकृत अग्रिमों के प्रतिभूत भाग पर 20 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक का प्रावधान करें, जो उस अवधि पर निर्भर होगा जिस अवधि के लिए आस्तियां संदिग्ध बनी रहें। 'संदिग्ध' आस्तियों के अप्रतिभूत भाग तथा 'हानि आस्तियों' के लिए 100 प्रतिशत प्रावधान करने की अपेक्षा की गई। तथापि, बैंकों से कहा गया कि वे प्रबंधन सूचना के साधन के रूप में आस्तियों के वर्गीकरण की स्वास्थ्य कूट प्रणाली का अनुसरण करते रहें।

3.131 बैंकों के पूंजी आधार को सुदृढ़ करने के लिए, भारत में उनके लिए (विदेशी बैंकों सहित) जोखिम भारित आस्तियों के प्रति पूंजी अनुपात (सीआरएआर) की प्रणाली भी चरणबद्ध रूप में लागू की गई। विदेश में शाखा रखनेवाले भारतीय बैंकों से यह अपेक्षा की गई कि वे यथाशीघ्र तथा हर हालत में 31 मार्च 1994 तक 8 प्रतिशत का पूंजी पर्याप्तता मानदंड प्राप्त कर लें। भारत में कार्यरत विदेशी बैंकों को 8 प्रतिशत का यह मानदंड 31 मार्च 1993 तक प्राप्त करना था। अन्य बैंकों से यह अपेक्षित था कि वे 4 प्रतिशत का पूंजी पर्याप्तता मानदंड 31 मार्च 1993 तक तथा 8 प्रतिशत का मानदंड 31 मार्च 1996 तक प्राप्त कर लें।

3.132 बैंकों द्वारा अनंतिम प्रावधानीकरण संबंधी अपेक्षा लगभग 10,000 करोड़ रुपए होने का अनुमान रिजर्व बैंक ने लगाया। साथ ही, पूंजी पर्याप्तता मानदंड पूरा करने के लिए बैंकों को अतिरिक्त संसाधनों की भी अपेक्षा थी। बैंकों द्वारा अपेक्षित कुल संसाधन 14,000 करोड़ रुपए के आसपास थे। इसमें से बैंक अपने स्वयं के अधिशेष से 2 वर्ष की अवधि के लिए लगभग 4,000 करोड़ रुपए प्रदान करने में समर्थ थे तथा लगभग 10,000 करोड़ रुपए प्रणाली द्वारा अतिरिक्त संसाधनों के रूप में अपेक्षित थे।

3.133 बैंकों की वित्तीय सुदृढ़ता बहाल करने और बनाये रखने के लिए तथा विवेकपूर्ण लेखांकन मानदंड एवं पूंजी पर्याप्तता मानदंड का पहला चरण लागू किए जाने से उत्पन्न अंतर को पूरा करने में उन्हें समर्थ बनाने के लिए, सरकार ने वित्तीय वर्ष 1993-94 से राष्ट्रीयकृत बैंकों के लिए पुनः पूंजीकरण कार्यक्रम आरंभ किया। सरकार द्वारा राष्ट्रीयकृत बैंकों को मार्च 1998 तक कुल 20,046 करोड़ रुपए का पूंजी अंशदान किया गया। इसके अलावा, सरकार ने 2 बैंकों की हानियों को उनकी पूंजी के प्रति बट्टे खाते डालने के लिए मार्च 1997 को समाप्त वर्ष के दौरान 1,532 करोड़ रुपए की राशि प्रदान की ताकि उनका तुलनपत्र स्वच्छ हो सके और वे शीघ्र सार्वजनिक निर्गम ला सकें।

3.134 चूंकि सरकार द्वारा पूंजी का अंतर्वेशन प्रावधानीकरण संबंधी और मानदंडों को पूरा करने के लिए बैंकों को समर्थ बनाने हेतु तथा पूंजी पर्याप्तता दिशानिर्देश पूरी तरह लागू किए जाने पर अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकताओं का खयाल रखने हेतु अपर्याप्तता था, सरकार ने सुसंगत अधिनियमों को संशोधित कर यह निर्णय लिया कि सरकारी क्षेत्र के बैंकों को जनता से इक्विटी निधियां जुटाने के लिए पूंजी बाजार में सीधे प्रवेश करने की अनुमति दी जाए। तथापि, यह निर्धारित किया गया कि सरकारी स्वामित्व राष्ट्रीयकृत बैंकों की इक्विटी के कम से कम 51 प्रतिशत पर बना रहेगा। तथापि, प्रत्याशित आय की तुलना में इक्विटी का अत्यधिक बड़ा आधार कुछ राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा पूंजी बाजार के दोहन में बाधा बन रहा था, इसे देखते हुए सरकार ने बैंकों को प्रदत्त पूंजी घटाने की अनुमति दी। किसी भी स्थिति में प्रदत्त पूंजी को कम कर संशोधन की तारीख को विद्यमान राष्ट्रीयकृत बैंकों की प्रदत्त पूंजी के 25 प्रतिशत से नीचे नहीं ले जाना था। राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा 31 मार्च 1997 तक 3,038 करोड़ रुपए की कुल पूंजी को बट्टे खाते डालने की अनुमति दी गई। तथापि 4 बैंकों ने अपनी प्रति शेयर आय को सुधारने के लिए 1996-97 में कुल 842 करोड़ रुपए की प्रदत्त पूंजी सरकार को वापस की।

3.135 मार्च 1998 के अंत तक, सरकारी क्षेत्र के 9 बैंकों ने बाजार से 6,015 करोड़ रुपए की कुल राशि की पूंजी (प्रीमियम सहित) जुटाई, जिसमें 1996-97 के दौरान एसबीआई के जीडीआर निर्गम से जुटाई गई 1,270 करोड़ रुपए की राशि शामिल है। इसके अलावा, कुछ बैंकों ने अपनी टियर II पूंजी में शामिल करने के लिए गौण ऋण भी जुटाया। बैंकों द्वारा पूंजी जुटाए जाने से पीएसबी के स्वामित्व का विशाखीकरण हुआ, जिससे निजी शेयरधारिता और शेयरधारकों के मूल्य एवं बोर्ड पर निजी शेयरधारकों के प्रतिनिधित्व से जुड़े मुद्दों के कारण उनकी कार्यप्रणाली में उल्लेखनीय गुणात्मक अंतर आया (अध्याय V भी देखें)।

3.136 प्रतिकूल चयन के कारण नयी अनर्जक आस्तियों को बढ़ने से रोकने के लिए, बैंकों को अन्य ऋणदात्री संस्थाओं के चूककर्ताओं के प्रति आगाह किया गया। इस प्रयोजन के लिए, रिजर्व बैंक ने अप्रैल 1994 में ऋण संबंधी आंकड़ों में साझेदारी की योजना शुरू की। नयी अनर्जक आस्तियों को बढ़ने से रोकने के अलावा, पहले से संचित अनर्जक आस्तियों की वसूली का भी मुद्दा था। इस संदर्भ में, वाणिज्य बैंकों को सूचित किया गया कि वे लोक अदालतों का अधिकाधिक उपयोग करें, जिन्हें न्यायिक हैसियत प्रदान किया गया है तथा जो बैंकों और छोटे उधारकर्ताओं के बीच विवाद के निपटान की सुविधाजनक तथा कम खर्चीली पद्धति के रूप में उभरे हैं। साथ ही 1993 में 'बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को देय ऋणों की वसूली अधिनियम' बनाया गया जिसमें ऐसे ऋणों के त्वरित अधिनियम तथा वसूली के लिए न्यायाधिकरणों की स्थापना का प्रावधान किया गया। उक्त अधिनियम बनने के बाद, देश में कई स्थानों पर 29 ऋण वसूली

न्यायाधिकरणों (डीआरटी) तथा 5 ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरणों (डीआरएटी) की स्थापना की गई।

3.137 शुरू किए गए विभिन्न उपायों का बैंकों के तुलनपत्र की गुणवत्ता पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। थोड़े समय में बैंक अपनी अनर्जक आस्तियों में उल्लेखनीय कमी करने में समर्थ हो गए। सकल अग्रिमों के प्रतिशत के रूप में सरकारी क्षेत्र के बैंकों की सकल अनर्जक आस्तियां, जो मार्च 1993 के अंत में 23.2 प्रतिशत थीं, मार्च 1998 के अंत तक कम होकर 16.0 प्रतिशत रह गईं। प्रावधान में वृद्धि के बावजूद आम तौर पर बैंकिंग क्षेत्र तथा विशेष तौर पर सरकारी क्षेत्र के बैंकों की समग्र लाभप्रदता में सुधार हुआ, जिसके ब्यौरे बाद के खंड में दिए गए हैं। बैंकिंग क्षेत्र की सुदृढ़ता में भी उल्लेखनीय सुधार हुआ। 75 बैंकों में से 58 बैंक मार्च 2006 के अंत तक 8 प्रतिशत का निर्धारित सीआरएआर प्राप्त कर सके। 8 राष्ट्रीयकृत बैंक, 6 निजी क्षेत्र के पुराने बैंक तथा 3 विदेशी बैंक मार्च 1996 के अंत तक 8 प्रतिशत का जोखिम भारित आस्तियों के प्रति पूंजी का निर्धारित अनुपात प्राप्त नहीं कर सके। अतः उन्हें कतिपय प्रतिबंधों, यथा अन्य बातों के साथ-साथ जोखिम भारित आस्तियों में कम वृद्धि तथा पूंजी व्यय एवं शाखा विस्तार को रोकने, की शर्त पर निर्धारित अनुपात प्राप्त करने के लिए 1 साल का और समय दिया गया। मार्च 1998 के अंत में, 27 पीएसबी में से 26 बैंकों ने 8 प्रतिशत पूंजी पर्याप्तता की निर्धारित अपेक्षा पूरी की। 5 बैंकों (सरकारी क्षेत्र के 1 बैंक तथा निजी क्षेत्र के 4 पुराने बैंक) को छोड़कर शेष सभी बैंक 8 प्रतिशत का निर्धारित सीआरएआर प्राप्त करने में समर्थ रहे (सारणी 3.34)।

बैंकों पर बाह्य प्रतिबंधों को हटाना

3.138 बैंकों की लाभप्रदता को प्रभावित करनेवाला एक प्रमुख कारक आरक्षित नकदी अनुपात (सीआरआर) तथा सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) के रूप में उच्च पूर्वक्रय था, जो 1990 के दशक के आरंभ में 63.5 प्रतिशत के ऐतिहासिक रूप से ऊंचे स्तर पर पहुंच गया था। इसके अलावा, ब्याज दरों की नियंत्रित संरचना ने बैंकों को उधारकर्ताओं की ऋण पात्रता के आधार पर ब्याज दर लगाने की अनुमति नहीं दी और इस प्रकार

संसाधनों की आबंटनात्मक दक्षता प्रभावित हुई। जनवरी 1993 और अप्रैल 1993 के आरंभ से क्रमशः एसएलआर तथा सीआरआर में चरणबद्ध कटौती की गई। एसएलआर को फरवरी 1992 के 38.5 प्रतिशत की सर्वोच्च दर से क्रमिक रूप से कम कर अक्टूबर 1997 तक 25.0 प्रतिशत के सांविधिक न्यूनतम स्तर पर लाया गया। सुधार के आरंभिक वर्षों में केंद्र सरकार के राजकोषीय घाटे में तीव्र कटौती हुई। तदनुसार, बैंकिंग क्षेत्र को निधियों के बंधक स्रोत के रूप में उपयोग करने की आवश्यकता कम हो गई। सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज दरों को भी कमोबेश बाजार निर्धारित कर दिया गया। अनुसूचित वाणिज्य बैंकों (एससीबी) का सीआरआर, जो 1 जुलाई 1989 तथा 8 अक्टूबर 1992 के बीच निवल मांग और मीयादी देयताओं (एनडीटीएल) का 15 प्रतिशत था, चरणबद्ध रूप में कम कर 22 नवंबर 1997 तक 9.5 प्रतिशत कर दिया गया। नवंबर 1995 तथा जनवरी 1997 के बीच, सीआरआर में 5 प्रतिशत अंकों तक की कटौती की गई। 10 प्रतिशत वृद्धिशील सीआरआर को भी हटा लिया गया।

3.139 सांविधिक पूर्वक्रयों में कटौती ने बैंकों की लाभप्रदता को प्रभावित करनेवाले न सिर्फ बाह्य अवरोधों को दूर किया, अपितु इससे बैंकों के ऋणयोग्य संसाधनों में भी वृद्धि हुई। इसके अलावा, मुद्रा बाजार में अधिक सामान्य चलनिधि स्थिति को देखते हुए, उन बैंक निधियों के अनुपात में और उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जो निजी क्षेत्र में वित्तीय वृद्धि और रोजगार के लिए उपलब्ध थीं। तथापि, बैंकों के ऋणयोग्य संसाधनों की वृद्धि के बावजूद मांग और आपूर्ति दोनों कारकों की वजह से 1996-97 से ऋण की वृद्धि में मंदी आई। विवेकपूर्ण मानदंड लागू करने पर बैंक अपने ऋण संविभाग को बढ़ाने के प्रति चौकस हो गए। विशेष रूप से अनर्जक आस्तियों के अपेक्षाकृत उच्च स्तर का कमजोर बैंकों पर गंभीर प्रभाव पड़ा। पूंजी पर्याप्तता अनुपात में उपलब्ध कम गुंजाइश (मार्च 1996 के अंत में 8.7 प्रतिशत) के कारण ऋण प्रदान करने की बैंकों की क्षमता भी प्रभावित हुई। अलग-अलग बैंक के स्तर पर, जैसाकि पहले बताया गया है कुछ बैंक मार्च 1998 के अंत में पूंजी पर्याप्तता संबंधी अपेक्षाएं पूरी नहीं कर सके। कंपनी क्षेत्र से निधियों की मांग भी कम हो गई। उत्पाद बाजार में प्रतिस्पर्धा में वृद्धि को देखते हुए, कंपनी क्षेत्र ने क्षमता बढ़ाने के बजाए अपना ध्यान

सारणी 3.34: सीआरएआर की स्थिति - मार्च 1998 के अंत की स्थिति

बैंक समूह	1996		1997		1998	
	8 प्रतिशत और अधिक सीआरएआर वाले बैंकों की संख्या	8 प्रतिशत से कम सीआरएआर वाले बैंकों की संख्या	8 प्रतिशत और अधिक सीआरएआर वाले बैंकों की संख्या	8 प्रतिशत से कम सीआरएआर वाले बैंकों की संख्या	8 प्रतिशत और अधिक सीआरएआर वाले बैंकों की संख्या	8 प्रतिशत से कम सीआरएआर वाले बैंकों की संख्या
1	2	3	4	5	6	7
सरकारी क्षेत्र के बैंक	19	8	25	2	26	1
निजी क्षेत्र के बैंक	28	6	30	4	30	4
विदेशी बैंक	28	3	39	-	42	-
कुल	75	17	94	6	98	5

पुनर्विन्यास पर केंद्रित किया। प्रतिस्पर्धा में हुई वृद्धि ने भी कंपनियों को अपने तुलनपत्रों का पुनर्विन्यास करने के लिए मजबूर किया, जिसके द्वारा उन्होंने प्रतिधारित आय पर अपनी निर्भरता बढ़ा दी तथा उधार राशियां कम कर दीं। कम हो रही मुद्रास्फीति के साथ सांकेतिक ब्याज दरों के गिरने की वजह से वास्तविक ब्याज दरों में हुई वृद्धि ने भी ऋण विस्तार में आई कमी में अंशदान किया (मोहन, 2005)। अतः सीआरआर और एसएलआर के रूप में सांविधिक पूर्वक्रय कम किये जाने के बावजूद बैंकों ने अपनी अपेक्षा से अधिक मात्रा में सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करना जारी रखा। मार्च 1996 के अंत में एसएलआर प्रतिभूतियों में बैंकों का निवेश निवल मांग और मीयादी देयताओं का 36.9 प्रतिशत था जबकि सांविधिक अपेक्षा 31.5 प्रतिशत थी (अध्याय VI भी देखें)।

3.140 बैंकों को अपनी जमा और उधार ब्याज दरें निर्धारित करने की स्वतंत्रता भी प्रदान की गई। ब्याज दरों की संरचना, जो अत्यधिक जटिल हो गई थी, को पहले युक्तियुक्त बनाया गया तथा बाद में जमा और उधार दोनों पक्षों की कुछ दरों को छोड़कर उसे अविनियमित किया गया। बचत बैंकों के खातों को छोड़कर देशी मीयादी जमाराशियों पर ब्याज दरों की संरचना को 1 अक्टूबर 1995 के आरंभ से अधिक लचीला बना दिया गया (बॉक्स III.2)। सभी मीयादी जमाराशियों पर ब्याज दरों के निर्धारण, अवधिपूर्व आहरण सहित तथा जमाराशि के आकार से निरपेक्ष रहते हुए एक समान दर प्रस्तावित करने को समाप्त कर दिया गया। बैंकों को उनके बोर्ड के अनुमोदन की शर्त पर वाणिज्यिक निर्णय के आधार पर जमा ब्याज दरें निर्धारित करने की अनुमति दी गई। रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित अधिकतम सीमा की शर्त पर बैंकों को विभिन्न अनिवासी जमाराशि पर ब्याज दरों का निर्णय करने की स्वतंत्रता भी दी गई। बाह्य ऋण प्रवाह, विशेष रूप से अल्पावधि प्रवाह, के प्रबंधन के अंग के रूप में विदेशी मुद्रा में मूल्यवर्गित जमाराशियों तथा अनिवासी भारतीयों (एनआरआई) से प्राप्त रुपया जमाराशियों पर निर्धारित ब्याज दर की अधिकतम सीमा जारी रखी गई।

3.141 उधार ब्याज दरों को युक्तियुक्त बनाकर उसकी 6 श्रेणियों को कम करके 1992-93 में 4 श्रेणी तथा और कम करके 1993 में 3 श्रेणी कर दी गई। ब्याज दर संरचना को युक्तियुक्त बनाने की प्रक्रिया को 18 अक्टूबर 1994 से 2 लाख रुपए से अधिक ऋण सीमा के लिए न्यूनतम उधार दर (एमएलआर) को समाप्त किए जाने के साथ एक बड़ी गति मिली (बॉक्स III.2)। सिर्फ निर्यात, 2 लाख रुपए तक के अल्पावधि ऋण तथा विभेदक ब्याज दर (डीआरआई) योजना संबंधी उधार ब्याज दरों को विनियमित करना जारी रहा। बैंकों से अपेक्षा की गई कि वे 2 लाख रुपए से अधिक के अग्रिमों के लिए निधियों की लागत तथा लेनदेन लागत को हिसाब में लेते हुए अपने बोर्डों के अनुमोदन के साथ मूल उधार दर (पीएलआर) की घोषणा करें, जो सभी शाखाओं पर समान रूप से लागू हो। ब्याज दरों को एक उल्लेखनीय सीमा तक अविनियमित किया गया

ताकि न सिर्फ मौद्रिक नीति की गतिविधि में मदद मिले अपितु ऐसा इसलिए भी किया गया क्योंकि नियंत्रित ब्याज दर युग अक्षम और खर्चीला साबित हुआ तथा उससे जरूरतमंद लोगों को ऋण प्रवाह आवश्यक रूप से सुनिश्चित नहीं किया जा सका। ब्याज दरों को अविनियमित करते हुए यह सुनिश्चित करने के लिए सावधानी बरती गई कि बैंकों के पास ऐसे प्रोत्साहन न हों जिससे वे उच्चतर जोखिम उठाते हुए ऊंची ब्याज दरों पर उधार देने के लिए उत्साहित हों अर्थात् प्रतिकूल चयन की समस्या न होने पाए। इस संबंध में प्रावधानीकरण और पूंजी पर्याप्तता मानदंडों का निर्धारण एक प्रमुख सुरक्षोपाय था जिसने बैंकों को इस बात के लिए विवश किया कि वे एक सीमा से अधिक जोखिम स्वीकार न करें।

3.142 ब्याज दरों के अविनियमन से यह अभिप्रेत था कि बैंक चलनिधि की समग्र स्थिति और अपनी जोखिम अवधारणाओं (उधार दरों के लिए) पर निर्भर रहते हुए जमाओं और उधार राशियों पर ब्याज दरें निर्धारित कर सकते थे। कुछ वर्षों में बैंकों ने अलग-अलग उधारकर्ताओं से ली जानेवाली ब्याज दर निर्धारित करने के लिए मानदंडों का एक सेट विकसित कर लिया। ब्याज दरों के अविनियमन ने विभिन्न प्रकार के नवोन्मेषों को जन्म दिया यथा अन्य बातों के साथ-साथ स्थिर, चल तथा आंशिक रूप से स्थिर और आंशिक रूप से चल ब्याज दरें।

3.143 अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की उधार ब्याज दरें अक्टूबर 1991 में 20 प्रतिशत की ऊंचाई पर पहुंच गई थीं। तथापि बड़े पूंजी प्रवाहों के फलस्वरूप होनेवाली पर्याप्त चलनिधि के कारण अविनियमन के बाद ब्याज दरों में गिरावट की स्पष्ट प्रवृत्ति दिखाई दी। अक्टूबर 1997-98 तक, उधार ब्याज दरें गिरकर 14 प्रतिशत रह गईं। जमा ब्याज दरें भी 1991-92 के 13 प्रतिशत वार्षिक (3 साल से अधिक तथा 5 साल तक की परिपक्वता के लिए) से काफी गिरकर 11.5 - 12.0 प्रतिशत रह गईं (सारणी 3.35)।

3.144 सीआरआर/एसएलआर में कटौती के साथ एनपीए में कटौती तथा ब्याज दरों के अविनियमन का बैंकिंग क्षेत्र की लाभप्रदता पर उल्लेखनीय रूप से सकारात्मक प्रभाव पड़ा। वस्तुनिष्ठ विवेकपूर्ण मानदंड लागू किए जाने के साथ 14 बैंकों (सरकारी क्षेत्र के 12 बैंकों) ने मार्च 1993 को समाप्त वर्ष के लिए निवल हानि सूचित की। 1996-97 में हानि उठाने वाले अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की संख्या कम होकर 8 (जिनमें से 3 सरकारी क्षेत्र के बैंक थे) रह गई। यद्यपि अगले साल में हानि उठानेवाले बैंकों की संख्या बढ़कर 11 हो गई, हानि उठानेवाले सरकारी क्षेत्र के बैंकों की संख्या और गिरकर 2 रह गई। कुल मिलाकर 1994-95 तक बैंकिंग क्षेत्र में टर्नअराउंड आया क्योंकि 1994-95 के दौरान सरकारी क्षेत्र के 27 बैंकों के वित्तीय परिणामों में, 1993-94 की 4,349 करोड़ रुपए की निवल हानि के विपरीत, 1,116 करोड़ रुपए का निवल लाभ दिखाई दिया। राष्ट्रीयकृत बैंकों का कार्य-निष्पादन विशेष रूप से उल्लेखनीय था क्योंकि उन्होंने 1993-94 में हुई 4,705 करोड़ रुपए की निवल हानि की तुलना

बॉक्स III.2

ब्याज दरों का अविनियमन

क. जमा ब्याज दरें		अप्रैल 2001	15 लाख रुपए और अधिक की थोक जमा राशियों के लिए 15 दिनों की न्यूनतम परिपक्वता अवधि घटाकर 7 दिन कर दी गई।
अक्टूबर 1989	46 दिन से 90 दिन तथा 90 दिन से एक साल नामक दो श्रेणियों का विलय कर अल्पावधि देशी जमा राशियों पर ब्याज दरों को युक्तियुक्त बनाया गया। 11 अक्टूबर 1989 से इन दोनों पर एक समान दर पर ब्याज देय बनाया गया। 16 अप्रैल 1990 से एनआरई जमा राशि दर में इसी तरह का सरलीकरण लाया गया।	जुलाई 2003	एनआरई जमा राशियों पर ब्याज दर की अधिकतम सीमा को लिबोर/स्वैप दरों से जोड़ दिया गया।
अप्रैल 1992	मौजूदा परिपक्वतावार अधिकतम सीमा संबंधी निर्धारणों को 46 दिन से अधिक की सभी जमा राशियों पर 13 प्रतिशत की एकल उच्चतम दर द्वारा प्रतिस्थापित कर जमा दरों पर अधिकतम सीमा को सरल बनाया गया।	नवंबर 2004	15 दिनों की न्यूनतम परिपक्वता अवधि सभी जमा राशियों के लिए घटाकर 7 दिन कर दी गई।
अप्रैल 1993	विदेशी मुद्रा अनिवासी जमा (बैंक) [एफसीएनआर (बी)] योजना नामक एक नई योजना लागू की गई, जिसके तहत विनिमय जोखिम का वहन बैंकों द्वारा किया जाना था तथा ब्याज दरें रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित की जानी थीं। विदेशी मुद्रा अनिवासी खाता, एफसीएनआर (ए) नामक पिछली योजना को अगस्त 1994 तक समाप्त कर दिया गया।	ख. उधार ब्याज दरें	
अक्टूबर 1995	बैंकों को लचीलापन प्रदान करने के लिए, दो साल से अधिक परिपक्वतावाली जमा राशियां अधिकतम सीमा के विनिर्देश से मुक्त हैं।	अक्टूबर 1988	स्थिर दर संबंधी मौजूदा विनिर्देशों को न्यूनतम (फ्लोर) दरों में परिवर्तित कर बैंकों को दरें बढ़ाने का विकल्प दिया गया।
अप्रैल 1996	दो साल से अधिक एनआरई मीयादी जमा राशियों पर ब्याज दरों को 4 अप्रैल 1996 से मुक्त कर दिया गया।	सितंबर 1990	कृषि, लघु उद्योग, विभेदक ब्याज दर (डीआरआइ) योजना और निर्यात ऋण जैसे कुछ क्षेत्रों को छोड़कर सेक्टर-विशिष्ट और कार्यक्रम-विशिष्ट निर्धारणों को बंद कर दिया गया।
जुलाई 1996	बैंकों को एक साल से अधिक परिपक्वतावाली मीयादी जमा राशियों के लिए ब्याज दरें निर्धारित करने की स्वतंत्रता दी गई। निधियों के बेहतर अल्पावधि प्रबंधन के लिए, मीयादी जमा राशियों की न्यूनतम अवधि 46 दिन से कम कर 30 दिन कर दी गई। 30 दिन से एक साल की परिपक्वता अवधि के लिए बैंक रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित अधिकतम सीमा के अधीन ब्याज दरें निर्धारित कर सकते हैं।	अप्रैल 1992	एससीबी के अग्रिमों (डीआरआइ अग्रिमों तथा निर्यात ऋण को छोड़कर) की ब्याज दरों को, ऋण के आकार के अनुसार अग्रिमों के 6 स्लैब को घटाकर 4 स्लैब करके, युक्तियुक्त बनाया गया।
अप्रैल 1997	30 दिन से एक साल तक की परिपक्वता वाली देशी मीयादी जमा राशियों पर अधिकतम ब्याज दर को बैंक दर से संबद्ध किया गया। एक साल से अधिक एनआरई खातों के तहत मीयादी जमा राशियों पर ब्याज दरों को मुक्त कर दिया गया।	अप्रैल 1993	उधार दरों को और युक्तियुक्त बनाया गया क्योंकि पहले दो स्लैबों का विलय कर स्लैबों की संख्या 4 श्रेणियों से घटाकर 3 श्रेणी की गई।
सितंबर 1997	बैंकों को 6 माह और अधिक की एनआरई मीयादी जमा राशियों पर अपनी ब्याज दरें निर्धारित करने के लिए मुक्त कर दिया गया।	अक्टूबर 1994	2 लाख रुपए से अधिक की ऋण सीमा के लिए अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की उधार ब्याज दरों को 18 अक्टूबर 1994 से अविनियमित कर दिया गया।
अक्टूबर 1997	बचत जमा राशि तथा एफसीएनआर (बी) से इतर जमा दरों को पूर्णतः अविनियमित कर दिया गया।	अक्टूबर 1995	बैंकों को इस बात की स्वतंत्रता दी गई कि वे देशी तथा एनआरई जमा राशियों दोनों के लिए 2 लाख रुपए तथा अधिक की मीयादी जमा राशियों के प्रति दिए जानेवाले अग्रिमों पर ब्याज दर का निर्णय करें तथा अपनी ब्याज दरें निर्धारित करें। विदेशी मुद्रा में पोतलदानोत्तर ऋण की ब्याज दर संरचना (पीएससीएफसी) को युक्तियुक्त बनाया गया।
अप्रैल 1998	बैंकों को 15 लाख रुपए और अधिक की थोक जमा राशियों के लिए विभेदक ब्याज दर का प्रस्ताव करने तथा देशी मीयादी जमा राशियों और एनआरई जमा राशियों के अवधिपूर्व आहरण पर अपनी दंडिक ब्याज दर लगाने की आजादी दी गई। मीयादी जमा राशियों की परिपक्वता की न्यूनतम अवधि 30 दिन से घटाकर 15 दिन कर दी गई।	फरवरी 1997	बैंकों को इस बात की अनुमति दी गई कि वे ऋणों के ऋण तथा नकदी ऋण घटकों के लिए अलग पीएलआर तथा अलग स्प्रेड निर्धारित करें।
		अप्रैल 1998	बैंकों को इस बात की अनुमति दी गई कि वे सावधि जमा राशियों के प्रति दिए गए ऋणों पर मूल उधार दर (पीएलआर) के समतुल्य अथवा उससे कम ब्याज दर लगाएं।
		अप्रैल 1999	बैंकों को अवधि संबद्ध पीएलआर परिचालित करने की स्वतंत्रता दी गई।
		अप्रैल 2003	बैंकों की उधार दरों में पारदर्शिता सुनिश्चित करने तथा ऋणों के मूल्य निर्धारण में शामिल जटिलता कम करने की दृष्टि से बैचमार्क पीएलआर (बीपीएलआर) की योजना लागू की गई। अवधि संबद्ध पीएलआर की वर्तमान प्रणाली को बंद कर दिया गया।

सारणी 3.35: वाणिज्य बैंकों की ब्याज दरों में घटबढ़

वर्ष (अप्रैल-मार्च)	जमा दरें			उधार दरें	
	1 से 3 साल	3 साल से अधिक और 5 साल तक	5 साल से अधिक	न्यूनतम दर	(सामान्य)
1	2	3	4	5	
1990-91	9.00-10.00	11.00	11.00	16.00*	
1991-92	12.00	13.00	13.00	19.00*	
1992-93	11.00	11.00	11.00	17.00*	
1993-94	10.00	10.00	10.00	14.00*	
1994-95	11.00	11.00	11.00	15.00@	
1995-96	12.00	13.00+	13.00+	16.50@	
1996-97	11.00-12.00+	12.00-13.00+	12.50-13.00+	14.50-15.00@	
1997-98	10.50-11.00+	11.50-12.00+	11.50-12.00+	14.00@	

+ : मार्च के अंत में सरकारी क्षेत्र के 5 प्रमुख बैंकों की जमा दरें।
 @ : उधार ब्याज दरों को अक्टूबर 1994 से अविनियमित कर दिया गया। निर्दिष्ट दर सरकारी क्षेत्र के 5 प्रमुख बैंकों की मूल उधार दरों को संदर्भित करती है।
 * : रिजर्व बैंक द्वारा वाणिज्य बैंकों के लिए निर्धारित मुख्य उधार दर।
 स्रोत : हैंडबुक ऑफ स्टैटिस्टिक्स ऑन दि इंडियन इकॉनॉमी, 2006-07।

में 1994-95 में 270 करोड़ रुपए का निवल लाभ कमाया। फलस्वरूप बैंकिंग क्षेत्र (अनुसूचित वाणिज्य बैंकों) की लाभप्रदता, जो आस्तियों पर प्रतिलाभ द्वारा मापे जाने पर 1991-92 के 0.4 प्रतिशत से गिरकर 1992-93 में (-) 1.1 प्रतिशत रह गई थी, बढ़कर 1997-98 तक 0.8 प्रतिशत हो गई (सारणी 3.36) (ब्यौरों के लिए अध्याय IX देखें)।

सारणी 3.36: अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की लाभप्रदता के संकेतक

वर्ष (अप्रैल-मार्च)	लाभ कमानेवाले एससीबी की संख्या	हानि उठानेवाले एससीबी की संख्या	समग्र लाभ/हानि (-) (करोड़ रु.)	आस्तियों पर प्रतिलाभ (प्रतिशत)	
	2	3	4	एससीबी	पीएसबी
1	2	3	4	5	6
1992-93	59 (15)	14 (12)	-4,150	-1.08	-0.99
1993-94	60 (15)	14 (12)	-3,625	-0.85	-1.15
1994-95	73 (19)	13 (8)	2,154	0.41	0.25
1995-96	80 (19)	14 (8)	939	0.16	-0.07
1996-97	92 (24)	8 (3)	4,504	0.67	0.57
1997-98	92 (25)	11 (2)	6,502	0.82	0.77

एससीबी - अनुसूचित वाणिज्य बैंक
 पीएसबी - सरकारी क्षेत्र के बैंक
 टिप्पणी : कोष्ठकों के आंकड़े सरकारी क्षेत्र के बैंकों की संख्या दर्शाते हैं।

3.145 यद्यपि मध्यावधि नीतिगत उद्देश्य सीआरआर को कम करके उस समय के 3 प्रतिशत के सांविधिक न्यूनतम स्तर तक लाना था, तथापि मौजूद मौद्रिक स्थितियों को देखते हुए सीआरआर को सितंबर 2004 से 4.50 प्रतिशत से क्रमिक रूप से बढ़ाकर 9 प्रतिशत कर दिया गया है। इसी तरह, नीतिगत उद्देश्य एसएलआर को 25 प्रतिशत से नीचे लाना था, जिसके लिए समर्थक कानूनी प्रावधान भी कर दिए गए हैं। तथापि, मौजूद मौद्रिक स्थितियों को देखते हुए एसएलआर को कम करना संभव नहीं हुआ है। मुद्रास्फीति तथा सख्त मौद्रिक नीति को देखते हुए ब्याज दरें भी बढ़ गई हैं। अतः बैंकों से अनुरोध किया गया कि वे अपनी कारोबारी नीतियों की समीक्षा करें ताकि वे कारोबारी चक्र की वास्तविकता और प्रतिचक्रिय मौद्रिक नीतिगत प्रतिसादों की पहचान करते हुए दीर्घावधि अर्थक्षम वित्तपोषण को परिचालनों में लाभप्रदता के साथ संयुक्त करने की स्थिति में हों।

प्रतिस्पर्धी वातावरण बनाना

3.146 कुछ वर्षों में भारतीय बैंकिंग क्षेत्र कम प्रतिस्पर्धी हो गया क्योंकि 1969 में 14 बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद निजी क्षेत्र में किसी नये बैंक की स्थापना की अनुमति नहीं दी गई। यद्यपि बड़ी संख्या में संस्थाएं मौजूद थीं, पर उन्हें नई संस्थाओं के प्रवेश का कोई खतरा नहीं था। नई संस्थाओं के प्रवेश का खतरा नहीं होने के कारण बैंकिंग क्षेत्र में अक्षमता आ गई। कुछ अन्य प्रतिबंधों यथा ब्याज दरों के विनियमन तथा कार्यशील पूंजीगत अपेक्षाओं के वित्तपोषण की प्रणाली का भी प्रतिस्पर्धी वातावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। अपने वाणिज्यिक निर्णय के आधार पर शाखाएं खोलने या बंद करने पर प्रतिबंध लगाए जाने के कारण बैंक भी अपने परिचालनों में बंधे हुए थे। सुधार का एक प्रमुख उद्देश्य यह था कि निजी क्षेत्र के बैंकों के प्रवेश की अनुमति देकर अधिक दक्षता लाई जाए, विदेशी बैंकों की अधिक शाखाओं को लाइसेंस प्रदान करने को तथा नए विदेशी बैंकों के प्रवेश को उदार बनाया जाए और बैंकों को दिए जानेवाले परिचालनगत लचीलेपन में वृद्धि की जाए। इन्हें ध्यान में रखते हुए बैंकिंग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा लाने के लिए कई उपाय शुरू किए गए।

3.147 पहला, रिजर्व बैंक ने निजी क्षेत्र में नए बैंकों के प्रवेश की अनुमति प्रदान की। जनवरी 1993 में निजी क्षेत्र के नए बैंकों के प्रवेश संबंधी मानदंडों की घोषणा की गई। दूसरा, देश में अविनियमन और बदले हुए बैंकिंग परिदृश्य के प्रति किए जा रहे उपायों के संदर्भ में मई 1992 में यह निर्णय लिया गया कि शाखाएं खोलने के मामले में बैंकों को और अधिक आजादी दी जाए। जहां बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाएं बंद नहीं कर सकते थे, वहीं ग्रामीण/अर्ध-शहरी क्षेत्रों में उनके शाखा नेटवर्क को युक्तियुक्त बनाने में उन्हें समर्थ करने के लिए उन्हें इस

बात की अनुमति दी गई कि वे शाखा के उसी प्रखंड अथवा सेवा क्षेत्र के भीतर स्थित शाखाओं का स्थान बदलकर वर्तमान शाखा नेटवर्क को युक्तियुक्त बना सकते हैं, शहरी/महानगरीय/पत्तन शहर वाले केंद्रों में स्थित शाखाओं का स्थान उसी इलाके/नगरपालिका वार्ड के भीतर बदल सकते हैं, विशेषीकृत शाखाएं खोल सकते हैं, कारोबार अलग कर सकते हैं, नियंत्रित कार्यालय/प्रशासनिक इकाई स्थापित कर सकते हैं और विस्तार काउंटर खोल सकते हैं। दिसंबर 1994 में यह निर्णय लिया गया कि लाइसेंस प्राप्त शाखाओं और विस्तार काउंटरों में स्वचालित टेलर मशीन (एटीएम) लगाने के लिए बैंकों को रिजर्व बैंक की पूर्वनुमति प्राप्त करने की जरूरत नहीं है। तथापि बैंकों को इस प्रकार का एटीएम लगाने, यदि कोई हो, की सूचना रिजर्व बैंक को देना अपेक्षित था। बैंकों को अन्य स्थानों पर भी एटीएम लगाने की आजादी दी गई तथा ऐसे मामलों में उन्हें ऑफ-साइट एटीएम परिचालित करने के पहले रिजर्व बैंक के संबंधित क्षेत्रीय कार्यालय से एक लाइसेंस प्राप्त करना चाहिए। तीसरा, उरुग्वे दौर में नए बैंकों और मौजूदा बैंकों को एक साल में 12 लाइसेंस प्रदान करने की वचनबद्धता की गई थी। तथापि, भारत में विदेशी बैंकों की शाखाओं की अनुमति प्रदान करने में अधिक उदार नीति अपनायी। चौथा, नियंत्रित ब्याज दर संरचना के कारण बैंकों के बीच मूल्यसंबंधी प्रतिस्पर्धा की गुंजाइश कम हो गई और संसाधनों के दक्ष आबंटन के लिए मिलनेवाले प्रोत्साहन सीमित हो गए, जिसका संकेत पहले किया जा चुका है। इस प्रकार पहले दिए गए ब्यौरों के अनुसार प्रतिस्पर्धा लाने की प्रक्रिया में ब्याज दरों का अविनियमन एक बड़ा तत्व था। पांचवां, उदारीकरण नीति के अनुरूप उधारकर्ताओं की कार्यशील पूंजी के आकलन में बैंकों को पूर्ण परिचालनात्मक स्वतंत्रता की अनुमति देने का निर्णय लिया गया। तदनुसार, अप्रैल 1997 में अधिकतम अनुमत बैंक वित्त (एमपीबीएफ) संबंधी सभी अनुदेशों को वापस ले लिया गया। कार्यशील पूंजी संबंधी जरूरतों का आकलन करने की पद्धति के बारे में निर्णय लेने की पूरी आजादी बैंकों को दी गई। कंपनियों को अपनी कार्यशील पूंजी संबंधी जरूरतों के बारे में बैंकों को आश्वस्त करना था। कंपनियां एक बैंक से, संघीय व्यवस्था से अथवा सिंडीकेट मार्ग से वित्त जुटा सकती थीं। छठा, वाणिज्य बैंकों द्वारा परियोजना ऋण संबंधी सभी प्रतिबंधों को हटा लिया गया था। परंपरागत तौर पर, परियोजना वित्त मीयादी ऋणदात्री संस्थाओं के दायरे में आता था।

3.148 यद्यपि प्रतिस्पर्धा की स्थितियां पैदा कर दी गई थीं, इस चरण के दौरान बैंकिंग क्षेत्र के भीतर पर्याप्त प्रतिस्पर्धा नहीं आ सकी। निजी क्षेत्र के नए बैंकों के प्रवेश को उदार बनाने के बाद, 1998 तक निजी क्षेत्र में 10 नए बैंकों की स्थापना की गई। इसके अलावा, 22 विदेशी बैंकों की भी स्थापना की गई। विदेशी बैंकों की शाखाओं की संख्या मार्च 1993 के अंत में 140 थी जो बढ़कर मार्च 1998 के अंत में 186 हो गई। अनुसूचित वाणिज्यिक

बैंकों की कुल आस्तियों में निजी क्षेत्र के नए बैंकों का हिस्सा मार्च 1998 के अंत तक बढ़कर 3.2 प्रतिशत हो गया। मार्च 1998 के अंत में विदेशी बैंकों का हिस्सा 8.2 प्रतिशत था, जो मार्च 1993 के अंत जैसा ही था। प्रतिस्पर्धा पर असर नहीं के बराबर बना रहना विलय की सीमित संख्या (चार) से भी स्पष्ट था। सामान्यतः प्रतिस्पर्धा तेज होने तक विलय और अधिग्रहण संबंधी कार्यकलाप अनिवार्य रूप से बढ़ जाते हैं (ब्यौरों के लिए अध्याय VIII देखें)। बैंकों के निवल ब्याज मार्जिन (एनआइएम) में भी पर्याप्त प्रतिस्पर्धा की कमी दिखाई दी, जो इस चरण के दौरान 1992-93 के 2.51 प्रतिशत से बढ़कर 1997-98 में 2.95 प्रतिशत हो गया (ब्यौरों के लिए अध्याय IX देखें)। ऐसा इस तथ्य के बावजूद हुआ कि इस चरण के दौरान बैंक अलाभप्रद स्थिति में थे क्योंकि पहले दिए गए ब्यौरों के अनुसार इस चरण के दौरान ब्याज दरों में उल्लेखनीय गिरावट आई थी। यह नोट किया जाए कि उधार पर ब्याज दरों में कटौती का प्रभाव अधिकांशतः तात्कालिक होता है, जबकि जमा दरें मौजूदा जमाराशियां परिपक्व होने के बाद परिचालन में आती हैं।

संस्थाओं को सुदृढ़ बनाना

3.149 सुधार के चरण के आरंभ में पर्यवेक्षण की सुदृढ़ प्रणाली की जरूरत कई कारणों से महसूस की गई यथा (i) विवेकपूर्ण विनियमन का कारगर कार्यान्वयन सुनिश्चित करना; (ii) वित्तीय मध्यस्थों के बीच परंपरागत अंतर को दूर करना; तथा (iii) उदारीकृत वातावरण में बैंकों के सामने जोखिमों में वृद्धि। इन्हें ध्यान में रखते हुए रिजर्व बैंक के भीतर वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड (बीएफएस) की स्थापना की गई ताकि वह पर्यवेक्षणात्मक कार्यों की ओर अनन्य रूप से ध्यान दे सके और बैंकिंग प्रणाली, वित्तीय संस्थाओं और गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों का समन्वित रूप में कारगर पर्यवेक्षण कर सके। बीएफएस द्वारा पर्यवेक्षणात्मक निगरानी को आरंभ में बैंकों, वित्तीय संस्थाओं और गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों तक सीमित रखा गया। बाद में, इसकी व्याप्ति को बढ़ाकर उसमें यूसीबी, आरआरबी और प्राथमिक व्यापारियों को भी शामिल कर लिया गया। बीएफएस ने पर्यवेक्षणात्मक प्रणाली को सुदृढ़ बनाने के लिए कई उपाय शुरू किए। त्वरित सुधारात्मक कार्रवाई करने के लिए 'आरंभिक चेतावनी प्रणाली' हेतु, नवंबर 1995 में बैंकों के लिए कंप्यूटरीकृत अप्रत्यक्ष निगरानी और चौकशी (ऑसमॉस) प्रणाली शुरू की गई।

3.150 बैंक की निरीक्षण प्रणाली की नए सिरे से समीक्षा की गई और जुलाई 1997 से आरंभ होनेवाले निरीक्षण चक्र से बैंकों के प्रत्यक्ष निरीक्षण के लिए एक नया दृष्टिकोण अपनाया गया। देशी वाणिज्यिक बैंकों के लिए कैमैल्स प्रणाली (पूजी पर्याप्तता, आस्ति गुणवत्ता, प्रबंधन, आय, चलनिधि प्रणाली और नियंत्रण) तथा विदेशी बैंकों के लिए सीएएलसीएस (पूजी पर्याप्तता, आस्ति गुणवत्ता, चलनिधि अनुपालन और प्रणाली) के तहत

बैंकों के पूर्ण परिचालन और कार्यानिष्ठादन के मूल्यांकन पर ध्यान केंद्रित किया गया। आंतरिक और बाह्य लेखा परीक्षा की भूमिका भी सुदृढ़ की गई। वार्षिक लेखों के लेखा-परीक्षण के अलावा, बाह्य लेखा-परीक्षकों से यह अपेक्षा भी की गई कि वे कुछ अन्य पहलुओं को सत्यापित और प्रमाणित करें यथा सांविधिक चलनिधि संबंधी अपेक्षाओं, आय निर्धारण, आस्ति वर्गीकरण और प्रावधानीकरण संबंधी विवेकपूर्ण मानदंडों का अनुपालन तथा बैंकों के तुलनपत्रों में प्रकट किए जानेवाले वित्तीय अनुपात। इस प्रकार पर्यवेक्षण में रिजर्व बैंक की पर्यवेक्षणात्मक प्रक्रिया को शामिल करने के अलावा अब बाह्य लेखा-परीक्षा तथा आंतरिक लेखा-परीक्षा पर भी ध्यान केंद्रित किया गया।

3.151 अन्य उल्लेखनीय संस्थागत गतिविधि ग्राहक सेवा के क्षेत्र से संबंधित थी। बैंकिंग क्षेत्र के विनियामक के रूप में रिजर्व बैंक आरंभ से ही बैंकों में ग्राहक सेवा की समीक्षा, परख और मूल्यांकन में सक्रिय रूप से संलग्न था। बैंकों के ग्राहकों को प्रदान की जा रही सेवाओं की गुणवत्ता के लिए रिजर्व बैंक की स्थायी बनी हुई चिंता समय-समय पर इसके विनियामक पहलों में परिलक्षित हुई। ऐसी आशा थी कि अविनियमन तथा निजी क्षेत्र के नए बैंकों के प्रवेश के जरिए बैंकिंग क्षेत्र में होनेवाली प्रतिस्पर्धा से ग्राहक सेवा की गुणवत्ता ऊंची होगी जिससे बैंकों के ग्राहकों चिरकालिक आशाएं पूरी होंगी। तथापि, भारत और कई अन्य देशों में यह अधिकाधिक रूप में महसूस किया जाना लगा कि सिर्फ प्रतिस्पर्धा की ताकतें यह सुनिश्चित नहीं करती हैं कि पारदर्शी रूप में उचित मूल्य पर पर्याप्त गुणवत्तावाली ग्राहक सेवा उपलब्ध हो अथवा ग्राहक के साथ उचित व्यवहार हो। अतः आम जनता के लिए बेहतर ग्राहक सेवा प्राप्त करने हेतु एक प्रक्रिया तैयार करने के लिए विनियामकों से हस्तक्षेप की जरूरत महसूस हुई (लीलाधर, 2007)। तदनुसार, बैंकिंग सेवाओं में कमी के लिए ग्राहकों की शिकायतों के त्वरित और कम खर्चीले समाधान हेतु रिजर्व बैंक ने जून 1995 में बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 के तहत बैंकिंग लोकपाल योजना, 1995 की घोषणा की। इस योजना में आरआरबी तथा अनुसूचित प्राथमिक सहकारी बैंकों को छोड़कर भारत में कारोबार करनेवाले सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंकों को शामिल किया गया। यदि किसी व्यक्ति की योजना में विनिर्दिष्ट मामलों से संबंधित किसी शिकायत का उसके संतोषपर्यंत समाधान दो महीनों की अवधि के भीतर नहीं हुआ तो वह एक साल की अवधि के भीतर बैंकिंग लोकपाल से संपर्क कर सकता है।

3.152 वर्ष 2002 और 2006 के दौरान बैंकिंग लोकपाल योजना को संशोधित किया गया। बैंकिंग लोकपाल योजना (बीओएस) 2006 में सभी वाणिज्य बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक और अनुसूचित प्राथमिक सहकारी बैंक शामिल हैं। बैंकिंग लोकपाल को बैंकिंग सेवा में कमी तथा ऋणों और

अग्रिमों की मंजूरी, जहां तक वे ब्याज दर आदि के बारे में रिजर्व बैंक के निदेशों का अनुपालन न किए जाने से संबंधित हैं, संबंधी शिकायतें निपटाने के लिए प्राधिकृत किया गया है। बीओएस 2006 में क्रेडिट कार्ड जारी करने, वायदा की गई सुविधा प्रदान करने में चूक, उचित प्रथा कोड का अनुपालन न करने और पूर्व सूचना के बिना अत्यधिक प्रभार लगाने आदि जैसे नए क्षेत्रों को शामिल किया गया है। आसानी से शिकायत प्रस्तुत करना सुकर बनाने के लिए, आवेदन का फार्मेट निर्धारित किया गया है परंतु शिकायत भरने के लिए उसका प्रयोग अधिदेशात्मक नहीं है तथा शिकायतें ऑनलाइन और ई-मेल या हार्डकॉपी के जरिए भी की जा सकती हैं। बीओएस 2006 के अनुसार, योजना की कार्यप्रणाली पर अधिक नियंत्रण रखने के लिए, योजना चलाने में शामिल पूरा खर्च अब रिजर्व बैंक द्वारा वहन किया जाता है तथा अब तक प्रचलित प्रथा के अनुसार सहभागी बैंकों द्वारा उसका भार वहन नहीं किया जाता है। बैंकिंग लोकपाल कार्यालयों में अब पूरी तरह से रिजर्व बैंक का स्टाफ रखा जाता है जबकि पहले एसएलबीसी के संयोजक बैंकों से स्टाफ रखा जाता था। जिस बैंक के विरुद्ध निर्णय पारित किया गया हो, वह अपने मुख्य कार्यपालक के अनुमोदन से अपीलीय प्राधिकारी के पास अपील कर सकता है। बैंकिंग लोकपाल योजना के प्रभारी भारतीय रिजर्व बैंक के उप गवर्नर अपीलीय प्राधिकारी होते हैं। मई 2007 में किए गए संशोधन के अनुसार शिकायतकर्ता योजना के तहत विनिर्दिष्ट शिकायत के आधार के भीतर आनेवाले मामलों के संबंध में बैंकिंग लोकपाल के निर्णय के विरुद्ध भी अपील कर सकते हैं।

ग्रामीण ऋण सुपुर्दगी प्रणाली में सुधार लाना

3.153 प्रभावी भौगोलिक विस्तार, कार्यपरक पहुंच, कृषि को ऋण प्रवाह में सुधार तथा ऋण के अनौपचारिक स्रोतों के प्रभाव में परिणामी कमी के बावजूद ग्रामीण वित्तीय संस्थाओं में अनेक खामियां पाई गई हैं अर्थात्, उत्पादकता और दक्षता में सुधार, चुकौती की नैतिकता और लाभप्रदता में क्षय। 1991 के सुधारों की पूर्वसंध्या पर ग्रामीण ऋण सुपुर्दगी प्रणाली को पुनः खराब स्थिति में पाया गया।³³ जहां कुल ऋण संरचना में अर्थक्षमता लाने के प्रश्न की ओर प्राधिकारियों/समितियों का ध्यान गया, एक अर्थक्षम संरचना का विकास नहीं हुआ। अतः एक ऐसी ग्रामीण ऋण सुपुर्दगी प्रणाली विकसित करना जरूरी था जिसमें बड़ी मात्रा में आर्थिक सहायता शामिल न हो। इस संदर्भ में यह महसूस किया गया कि ब्याज दरों के बेहतर संरेखण और लक्ष्य एवं गैर लक्ष्य उधार का मिश्रण जरूरी था। कई ऐसे क्षेत्र भी थे जहां ग्रामीण ऋण सुपुर्दगी प्रणाली स्पष्टतः असंतोषजनक थी तथा इस बात की जरूरत महसूस की गई कि ऋण सुपुर्दगी प्रणाली में स्थायी सुधार लाने के लिए शीघ्र उपाय किए जाने की जरूरत है।

³³ आर.वी.गुप्ता समिति (1998)

3.154 वित्तीय प्रणाली समिति, 1991 ने इस बात की सिफारिश की कि निदेशित ऋण कार्यक्रम की सुसंगतता बने रहने की दुबारा जांच की जाए और इसे चरणबद्ध रूप से समाप्त किया जाए। इसने यह भी संस्तुति की कि प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र को पुनःपरिभाषित कर उसमें छोटे और सीमान्त किसानों, अतिलघु उद्योग क्षेत्र, छोटे व्यवसाय और परिवहन परिचालकों, ग्रामीण और कुटीर उद्योगों, ग्रामीण कारीगरों तथा अन्य कमजोर वर्गों को शामिल किया जाए और इस पुनःपरिभाषित प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के लिए कुल ऋण के 10 प्रतिशत पर ऋण का लक्ष्य निर्धारित किया जाए। पुनःपरिभाषित प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र से बाहर छूट गए क्षेत्रों को ऋण प्रदान करना सुनिश्चित करने के लिए, वित्तीय प्रणाली संबंधी समिति ने रिजर्व बैंक द्वारा पुनर्वित्त सुविधा लागू किए जाने की सिफारिश की।

3.155 रिजर्व बैंक द्वारा किए गए ब्यौरेवार आकलन से यह सूचित हुआ कि पुनःपरिभाषित प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के लिए कुल ऋण के 10 प्रतिशत से काफी अधिक मात्रा अपेक्षित होगी तथा इस प्रकार समिति की सिफारिश स्वीकार किए जाने पर पुनःपरिभाषित प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के भीतर के क्षेत्रों को अत्यंत तंगी का सामना करना होगा। यह भी महसूस किया गया कि प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के लक्ष्य में भारी कटौती करने का तथा इन क्षेत्रों की जरूरतें रिजर्व बैंक से प्राप्त पुनर्वित्त के जरिए पूरी करने का जरा भी औचित्य नहीं है क्योंकि इससे सर्जित मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होगी और इस प्रकार मुद्रास्फीतिकारी दबाव बढ़ेगा। प्रगतिशील दृष्टिकोण से यह सुनिश्चित करना जरूरी था कि प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र ऋण संबंधी नीति में किए जानेवाले इसी प्रकार के परिवर्तन से उत्पादक प्रयोजनों के लिए ऋण के प्रवाह में कोई विघटन उत्पन्न न होने पाए। यह महसूस किया गया कि जहां प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र उधार के लिए निर्धारित व्याप्ति और लक्ष्य की पुनरीक्षा जरूरी है, कई देशों के अनुभव यह बताते हैं कि ऋण का कुछ निदेशन जरूरी है (आरबीआइ, 1992)। तथापि, ऋण सुपुर्दगी का व्यष्टि विनियमन छोड़ दिए जाने तथा ऋण संबंधी मामलों में बैंकों को स्वतंत्रता दिए जाने के बाद दो कारणों से आशंकाएं पैदा हुईं अर्थात् प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र उधार में अनुशासन और समयबद्ध आधार पर जरूरतमंद और योग्य लोगों को ऋण का प्रवाह। अतः प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र उधार के लिए पात्र कार्यकलापों को बढ़ा दिया गया, ब्याज दरों को अविनियमित किया गया तथा निवेश के वैकल्पिक स्रोतों की अनुमति दी गई, इस प्रकार प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र उधार को पहले से अधिक लचीला बना दिया गया।

3.156 सरकारी और निजी क्षेत्र दोनों में कई बैंक प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के लक्ष्य को पूरा नहीं कर सके। अतः, सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के जिन बैंकों ने प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र या कृषि को लक्ष्य के अनुसार पूरा उधार नहीं दिया उनसे अपेक्षा की गई कि वे ग्रामीण मूलभूत संरचना विकास निधि (आरआइडीएफ) में विनिर्दिष्ट राशि आबंटित करें। पहला आरआइडीएफ 1995-96 में ग्रामीण मूलभूत संरचना संबंधी परियोजनाओं के वित्तपोषण के लिए राज्य सरकारों को ऋण प्रदान करने हेतु नाबार्ड में स्थापित किया

गया। आरआइडीएफ ग्रामीण मूलभूत संरचना संबंधी वित्तपोषण के लिए बैंक निधियां जुटाने का प्रमुख साधन बन गया। 1998 तक 10,000 करोड़ रुपए की कुल राशि सहित आरआइडीएफ की चार शृंखलाएं बनायीं गयीं। उक्त चार आरआइडीएफ से कुल मिलाकर 9,095 करोड़ रुपए की संयुक्त राशि का संवितरण किया गया।

3.157 1991-92 में वित्तीय क्षेत्र सुधार लागू होने पर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की, जो ग्रामीण ऋण सुपुर्दगी प्रणाली में एक महत्वपूर्ण तत्व हैं, वाणिज्यिक अर्थक्षमता उभरते आर्थिक परिदृश्य में उनकी वांछित भूमिका के बारे में निर्णय लेने के संदर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक बनकर उभरी। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की वित्तीय स्थिति उनके सीमित कारोबारी अवसरों, विस्तार/विशाखीकरण की कम गुंजाइश, जोखिमवाले अग्रिमों में अधिक एक्सपोजर सहित ऋण के छोटे आकार तथा वित्तीय नियोजन में व्यावसायिक अक्षमता के कारण कमजोर हो गई। आरआरबी की गैर अर्थक्षमता चिंता का विषय थी अतः उनकी अर्थक्षमता को सुधारने के लिए कई नीतिगत पहलें की गईं। यह देखते हुए कि अधिकांश आरआरबी कमजोर थे तथा हानि उठा रहे थे और ऋण संबंधी उनके लक्ष्य समूह में कमजोर वर्ग शामिल थे, रिजर्व बैंक ने सभी आरआरबी को 2 साल की अवधि के लिए 31 दिसंबर 1994 तक भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 की धारा 42 की उपधारा 1 और 1(क) के परंतुक से मुक्त करते हुए उनकी निवल मांग और मीयादी देयताओं के 3 प्रतिशत पर नकदी आरक्षित अनुपात बनाए रखने की अनुमति उन्हें दे दी। बाद में 22 दिसंबर 1993 को सरकार और नाबार्ड के परामर्श से रिजर्व बैंक ने आरआरबी के लिए उपायों के एक पैकेज की घोषणा की ताकि उन्हें अपने मौजूदा शाखा नेटवर्क को युक्तियुक्त बनाने में अधिक स्वतंत्रता मिले और परिचालनात्मक दक्षता आ जाए। इन उपायों में उन आरआरबी को, जिनकी संवितरित राशि 1992-93 के दौरान 2 करोड़ रुपए से कम थी, सेवा क्षेत्र संबंधी दायित्वों से मुक्त करना तथा परिचालन क्षेत्र के भीतर सहकारी संस्थाओं की तरह कार्य करने की अनुमति देना शामिल हैं। उनके अग्रिमों को क्रास सब्सिडाइज करने के लिए, आरआरबी को इस बात की अनुमति दे दी गई कि वे लक्ष्य समूह को वित्तपोषण की सीमा 40 प्रतिशत से बढ़ाकर नए ऋणों का 60 प्रतिशत कर सकते हैं।

3.158 आरआरबी के प्रबंधनात्मक, परिचालनात्मक और संगठनात्मक पुनर्विन्यास के लिए तथा उनके तुलनपत्रों को स्वच्छ करने के लिए भी कार्रवाई की गई। उनका आरआरबी की पहचान व्यापक पुनर्विन्यास के लिए की गई। 1994-95 में भारत सरकार ने पहचान किए गए 49 आरआरबी के व्यापक पुनर्विन्यास के लिए 150 करोड़ रुपए की राशि प्रदान की। जून 1995 में आरआरबी की शाखा लाइसेंसिकरण नीति को युक्तियुक्त बनाया गया। 70 आरआरबी, जिन्हें सेवा क्षेत्र संबंधी दायित्वों से मुक्त किया गया था, को इस बात की अनुमति दी गई कि वे अधिमानतः उसी प्रखंड के भीतर तालुका/प्रखंड मुख्यालयों, ग्राम बाजारों, मंडियों तथा कृषि उपज केंद्रों में अपनी हानि उठानेवाली शाखाओं को रि-लोकेट

कर सकते हैं। वैकल्पिक रूप से, वे अपनी हानि उठानेवाली शाखाओं को सेटलाइट/चल कार्यालयों में रूपांतरित कर सकते थे। 1995-96 के केंद्रीय बजट में 1995-96 के दौरान दूसरे चरण में पुनर्विन्यास के लिए कुछ और आरआरबी के लिए 300 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया। इस प्रयोजन के लिए सरकार द्वारा अभिज्ञात 2 आरआरबी के अलावा नाबार्ड द्वारा चरण II में पुनर्विन्यास के लिए 68 और आरआरबी की पहचान की गई। केंद्र सरकार ने चरण II पुनर्विन्यास में आरआरबी के पुनर्विन्यास के लिए 500 करोड़ रुपए का प्रावधान किया (1995-96 के बजट में 300 करोड़ रुपए तथा 1996-97 के बजट में 200 करोड़ रुपए)। आरआरबी पर 1995-96 से आय निर्धारण और आस्ति वर्गीकरण के विवेकपूर्ण मानदंड तथा 1996-97 से प्रावधानीकरण मानदंड लागू करके पुनर्विन्यास की प्रक्रिया को अधिक टिकाऊ बनाया गया।

3.159 आरआरबी के वित्तीय कार्य निष्पादन पर इन उपायों का वांछित असर पड़ा। लाभ कमानेवाले आरआरबी की संख्या पिछले साल के 34 से तेजी बढ़कर 1997-98 में 109 हो गई। एक समूह के रूप में आरआरबी ने भी 1997-98 में 43 करोड़ रुपए का निवल लाभ कमाया, जबकि पिछले साल 589 करोड़ रुपए की निवल हानि हुई थी।

3.160 वाणिज्यिक बैंकों और आरआरबी को सुदृढ़ करने के अलावा, कृषि ऋण के प्रवाह की समस्या दूर करने के लिए कई उपाय किए गए। पहला, ग्रामीण ऋण का दायरा बढ़ाकर उसमें भंडारण और एनबीएफसी के माध्यम से ऋण की सुविधाओं को शामिल किया गया। दूसरा, मार्जिन कम करके, फसलचक्र के साथ अतिदेय राशियों को पुनः परिभाषित कर, नई ऋण पुनर्विन्यास नीतियों, एकबारगी निपटान तथा गैर संस्थागत ऋणदाताओं के प्रति ऋणग्रस्त किसानों के लिए राहत उपायों के जरिए प्रक्रियागत और लेनदेनगत अवरोधों को दूर करने का प्रयास किया गया। तीसरा, किसान कार्ड योजना को सुधारकर उसका दायरा बढ़ाया गया, जबकि कुछ बैंकों ने सामान्य क्रेडिट कार्ड (जीसीसी) को लोकप्रिय बनाया, जो उपभोगसहित बहु-उद्देश्यों के लिए बेजमानती ओवरड्राफ्ट के स्वरूप का था। चौथा, सरकारी और निजी क्षेत्र के बैंकों को ऋण सुपुर्दगी बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया गया जबकि प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र ऋण में कमी के लिए निरुत्साहक उपायों को सुदृढ़ किया गया। पांचवां, बैंकों से अनुरोध किया गया कि वे फ्लैट दर के बजाए अलग-अलग व्यक्तियों की जोखिम के वास्तविक आकलन के आधार पर किसानों को दिए जानेवाले ऋण का मूल्यनिर्धारण करें जो उधारकर्ता की श्रेणी या अंतिम उपयोग पर निर्भर हो और यह सुनिश्चित किया जाए कि लगाई जानेवाली ब्याज दरें न्यायपूर्ण और उचित हों। कुछ और उपाय भी शुरू किए गए जिनमें शाखा प्रबंधकों को अधिक अधिकार देना, आवेदनों का सरलीकरण, अधिक संख्या में लघु उद्योग हेतु विशेषज्ञता प्राप्त शाखाएं खोलना, संमिश्र ऋणों के लिए सीमा बढ़ाना तथा वसूली की प्रक्रिया को सुदृढ़ करना शामिल हैं। संक्षेप में,

उचित मूल्य के युग में मौजूदा कानूनी और संस्थागत सीमाओं के भीतर ऋण सुपुर्दगी में सुधार लाने पर जोर दिया गया।

3.161 विभिन्न उपायों के बावजूद, कृषि को ऋण प्रवाह 1980 के दशक के 18.1 प्रतिशत की तुलना में 1992-93 से 1997-98 तक की छह वर्ष की अवधि में कम होकर 17.3 प्रतिशत रह गया। मार्च 1993 के अंत और मार्च 1998 के अंत के बीच कुल ऋण के प्रतिशत के रूप में कृषि के लिए ऋण, ऋण की तीव्रता तथा कुल खाद्येतर बैंक ऋण के प्रतिशत के रूप में कृषि को प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र अग्रिम में भी गिरावट आई (सारणी 3.37) (ब्यौरों के लिए अध्याय VI देखें)।

3.162 सारांश में इस उप-चरण (1991-92 से 1997-98) के आरंभ में मुख्य मुद्दे थे - खराब वित्तीय कार्यनिष्पादन, खराब आस्ति गुणवत्ता, बैंकों की खराब पूंजी स्थिति तथा पर्याप्त प्रतिस्पर्धा का अभाव। अतः लाभप्रदता, वित्तीय स्थिति और पूंजी की सुधार लाने के लिए सरकार, रिजर्व बैंक तथा बैंकों ने स्वयं कई उपाय शुरू किए। शुरू किए गए प्रमुख उपायों में वस्तुनिष्ठ विवेकपूर्ण मानदंड शुरू करना, सांविधिक पूर्वक्रयों में कटौती तथा परिचालनात्मक लचीलापन और सरकारी क्षेत्र के बैंकों की कार्यात्मक स्वायत्तता शामिल हैं। उदारीकृत माहौल में बैंकिंग क्षेत्र के सामने मौजूद विभिन्न जोखिमों को देखते हुए, पर्यवेक्षणात्मक प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने के लिए भी विशेष बल दिया गया। शुरू किए गए विभिन्न उपायों का अच्छा असर पड़ा। इस उप-चरण के अंत तक वित्तीय कार्यनिष्पादन, आस्ति गुणवत्ता और पूंजी की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार दिखाई दिया। वस्तुतः वित्तीय कार्यनिष्पादन में हुआ सुधार उल्लेखनीय था क्योंकि बैंकों पर वस्तुनिष्ठ लेखांकन मानदंड लागू किए गए। अन्य बातों के साथ-साथ इसका कारण था आस्ति गुणवत्ता में सुधार और निवल ब्याज मार्जिन में वृद्धि। प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति पैदा करना सुधार का एक उद्देश्य था। यद्यपि प्रतिस्पर्धात्मक माहौल बनाने के लिए कई उपाय शुरू किए गए, प्रतिस्पर्धा नहीं के बराबर बनी रही। इस चरण में सुधार संबंधी विभिन्न उपायों का प्रमुख अंशदान यह था कि इसकी वजह से बैंकों के

सारणी 3.37: कृषि के लिए अनुसूचित वाणिज्य बैंक ऋण

मद	मार्च के अंत में)	
	1993	1998
1	2	3
1. कुल ऋण के प्रतिशत के रूप में कृषि को ऋण	13.6	10.7
2. कुल जीडीपी के प्रतिशत के रूप में कृषि ऋण	3.2	2.5
3. कृषि जीडीपी के प्रतिशत के रूप में कृषि ऋण	11.2	9.6
4. सकल खाद्येतर बैंक ऋण के प्रतिशत के रूप में प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र अग्रिम	35.5	34.6
5. सकल खाद्येतर बैंक ऋण के प्रतिशत के रूप में कृषि को प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र अग्रिम	14.2	12.1
स्रोत :	1. मूलभूत सांख्यिकीय विवरणियां, मार्च 1993 तथा मार्च 1998। 2. हैंडबुक ऑफ स्टैटिस्टिक्स ऑन दि इंडियन इकॉनॉमी, 2006-07।	

व्यवहार में परिवर्तन आया तथा उन्होंने अपनी वित्तीय स्थिति और लाभप्रदता को सुधारने पर अधिकाधिक ध्यान केंद्रित किया। तथापि उल्लेखनीय सुधार के बावजूद इस उप-चरण के अंत में भी कुछ चिंताजनक स्थितियां मौजूद थीं। पहला, अंतरराष्ट्रीय मानकों के आधार पर सरकारी क्षेत्र के बैंकों की अनर्जक आस्तियों का स्तर अभी भी बहुत ऊंचा था। दूसरा, कुछ बैंक दो साल की विनिर्दिष्ट समयावधि के बाद भी विनिर्दिष्ट पूंजी पर्याप्तता अनुपात का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सके। तीसरा, यद्यपि बैंकिंग क्षेत्र में कुल मिलाकर 1994-95 में टर्नअराउंड आया और उन्होंने लाभ कमाया, कुछ बैंक (सरकारी क्षेत्र के दो बैंकों सहित) इस चरण के अंत में भी हानि उठाते रहे। चौथा, प्रतिस्पर्धा में पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई तथा बैंकों का निवल ब्याज मार्जिन ऊंचा बना रहा। सुधार शुरू होने के पहले कृषि को ऋण प्रवाह में हुए सुधार के बावजूद, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों जैसी ग्रामीण वित्तीय संस्थाओं को गंभीर कमजोरियों का सामना करना पड़ा। अतः उनका पुनर्विन्यास करने के प्रयास किए गए, जिनका उनकी वित्तीय स्थिति पर वांछित असर पड़ा। तथापि, इस चरण में कृषि क्षेत्र को दिए गए ऋण में कमी आई।

सुधार का दूसरा चरण : 1998-99 तथा आगे

विवेकपूर्ण मानदंडों और एनपीए प्रबंधन को सुदृढ़ बनाना

3.163 यद्यपि सुधार के चरण के आरंभ में शुरू किया गया आय निर्धारण, आस्ति वर्गीकरण और प्रावधानीकरण संबंधी विवेकपूर्ण मानदंड बैंकिंग प्रणाली की लाभप्रदता और उनकी वित्तीय स्थिति के वस्तुनिष्ठ आकलन के प्रति एक प्रमुख कदम था, कई मामलों में ये मानदंड अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं से निम्न कोटि के थे। अतः इस बात की जरूरत महसूस की गई कि उन्हें और सुदृढ़ बनाया जाए और अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं के समतुल्य लाया जाए। जून 1997 के पूर्वी एशियाई संकट ने भी यह सुझाया कि बैंकिंग प्रणाली कमजोर होने का वास्तविक अर्थव्यवस्था के लिए क्या जोखिम हो सकता है। बैंकिंग क्षेत्र को और सुदृढ़ बनाने के लिए रूपरेखा बैंकिंग क्षेत्र सुधार समिति (अध्यक्ष: श्री एम.नरसिंहम) द्वारा प्रदान की गई, जिसने अप्रैल 1998 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। तथापि, विवेकपूर्ण मानदंड सुदृढ़ करते समय, यह सुनिश्चित करना भी जरूरी था कि बैंकों द्वारा जोखिम से बचने की प्रवृत्ति, जो विवेकपूर्ण मानदंड लागू करने के बाद देखी गई, बहुत बढ़ने न पाए।

3.164 अक्टूबर 1998 में, अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के जोखिम भारित आस्तियों के प्रति पूंजी अनुपात (सीआरएआर) की विनिर्दिष्ट न्यूनतम सीमा में एक प्रतिशत अंक की वृद्धि कर उसे 31 मार्च 2000 को समाप्त वर्ष से 9 प्रतिशत कर दिया गया। सरकारी तथा अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियों, एसएलआर से बाहर की प्रतिभूतियों में निवेश तथा चूककर्ता संस्थाओं द्वारा जारी राज्य सरकार द्वारा गारंटीप्राप्त प्रतिभूतियों के लिए भी जोखिम-भार निर्धारित किए गए। दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में आस्ति देयता संबंधी बेमेल का सामना करनेवाले बैंकों के अनुभव ने आवश्यक

आस्ति देयता प्रबंधन (एएलएम) संबंधी प्रथाएं लागू करने की आवश्यकता को रेखांकित किया। अतः बैंकों पर आस्ति देयता प्रबंधन संबंधी रूपरेखा लागू की गई। बैंकिंग परिचालनों में बढ़ी हुई जटिलता तथा पूर्वी एशिया में देखे गए वित्तीय संकट जैसे संकट को रोकने की आवश्यकता ने भी इस बात को जरूरी बना दिया कि वित्तीय संस्थाओं की सुदृढ़ता को मजबूत करने, और विशेष रूप से, जोखिम प्रबंधन प्रथाओं और प्रक्रियाओं को अपग्रेड करने के लिए निरंतर प्रयास किए जाएं। अतः एएलएम की रूपरेखा की अनुपूर्ति जोखिम प्रबंधन संबंधी दिशानिर्देशों से की गई।

3.165 आय निर्धारण, आस्ति वर्गीकरण और प्रावधानीकरण संबंधी मानदंडों को भी सख्त बनाया गया। बैंकों से अपेक्षा की गई कि वे 31 मार्च 2000 को समाप्त वर्ष के लिए मानक आस्तियों पर न्यूनतम 0.25 प्रतिशत का सामान्य प्रावधान करें, जिसे बाद में निरंतर बढ़ाकर 1 प्रतिशत कर दिया गया। इस उपाय से बैंकों के प्रचक्रिय व्यवहार को शांत करने की परिकल्पना की गई। मार्च 2001 से अनर्जक आस्तियों (एनपीए) की पहचान करने के लिए 'गत देय' की संकल्पना समाप्त कर दी गई। संशोधित मानदंडों के अनुसार, आस्ति को संदिग्ध माना गया, यदि वह 31 मार्च 2001 तक 24 महीनों के बजाय 18 महीनों तक अवमानक श्रेणी में रही हो। मई 2002 में आस्ति वर्गीकरण संबंधी मानदंडों को और सख्त बनाया गया, जब बैंकों को यह सूचित किया गया कि मार्च 2005 को समाप्त वर्ष से आस्ति को उस समय संदिग्ध माना जाएगा जब वह पहले के 18 महीनों के बजाय 12 महीनों तक अवमानक श्रेणी में बनी रही हो।

3.166 मार्च 2004 से आय निर्धारण संबंधी मानदंडों को और सख्त बनाकर आस्ति को अनर्जक आस्ति के रूप में उस स्थिति में वर्गीकृत किया जाने लगा जब वह पहले के छह महीनों के बजाय 90 दिनों की अवधि तक अदत्त रही हो। जून 2004 में, रिजर्व बैंक ने बैंकों को यह भी सूचित किया कि वे (क) 3 वर्ष से अधिक श्रेणी के लिए 'संदिग्ध' के तहत शामिल की गई अनर्जक आस्तियों के जमानती अंश के बारे में; तथा (ख) 31 मार्च 2004 को 3 वर्ष से अधिक समय के लिए 'संदिग्ध' श्रेणी में बनी रही अनर्जक आस्तियों के बारे में श्रेणीबद्ध उच्चतर प्रावधानीकरण अपनाएं। 31 मार्च 2005 को समाप्त वर्ष से चरणबद्ध रूप में 3 वर्ष की अवधि के दौरान प्रावधानीकरण को बढ़ाकर 60 प्रतिशत और 100 प्रतिशत के दायरे में कर दिया गया। राज्य सरकार द्वारा गारंटीकृत एक्सपोजरों के मामलों में आस्ति वर्गीकरण और प्रावधानीकरण संबंधी अपेक्षाओं को राज्य सरकार की गारंटी लागू किए जाने से असंबद्ध कर दिया गया।

3.167 बीआइएस की बैंकिंग पर्यवेक्षण संबंधी बासेल समिति (बीसीबीएस) ने 'अंतर-कंपनी बाजार जोखिमों संबंधी पूंजी समझौते में संशोधन' जारी किया, जिसमें बाजार जोखिमों के लिए व्यक्त पूंजी प्रभार प्रदान करने के लिए व्यापक दिशानिर्देश शामिल किए गए। बाजार जोखिमों के लिए पूंजी प्रभार संबंधी बीसीबीएस के मानदंडों का कार्यान्वयन निलंबित

रहने तक, बैंकों को जनवरी 2002 में सूचित किया गया कि वे निवेश घटबढ़ रिजर्व (आइएफआर) बनाएं जो 5 वर्षों के भीतर 'ट्रेडिंग के लिए धारित' (एचएफटी) तथा 'बिक्री के लिए उपलब्ध' (एएफएस) श्रेणियों में किए गए उनके निवेशों का कम से कम 5 प्रतिशत होना चाहिए ताकि वे बाजार जोखिम पूरी करने के लिए बेहतर स्थिति में हों। बाद में जून 2004 में बैंकों से अपेक्षा की गई कि वे 2 वर्ष की अवधि में चरणबद्ध रूप में बासेल मानदंड के अनुरूप बाजार जोखिमों के लिए पूंजी प्रभार बनाए रखें।

3.168 विवेकपूर्ण मानदंड लागू करने तथा ऋण वसूली प्रणाली को मजबूत बनाए बिना अनर्जक आस्तियों को कम करने का गंभीर परिणाम यह हुआ कि बैंक जोखिम से बचने लगे, जैसाकि पहले ब्यौरेवार बताया जा चुका है। जहां बड़ी कंपनियां डिबेंचर अथवा वाणिज्यिक पत्र जैसे अन्य वैकल्पिक स्रोतों का आश्रय ले सकती थीं, अन्य उधारकर्ताओं, विशेषकर मझौली और छोटी कंपनियों, के सामने ऋण की कमी का संकट आ गया, अतः उपाय शुरू करने की गति को सतर्कतापूर्वक कम करने की जरूरत महसूस की गई। साथ ही, मानदंडों को और कारगर बनाने के लिए तथा वांछित परिणाम तुरंत प्राप्त करने के लिए कदम उठाने की जरूरत महसूस की गई। यद्यपि बैंकों की विगत देय राशियों की वसूली के लिए कुछ उपाय किए गए, परंतु उनका वांछित परिणाम सामने नहीं आया। जिस गति से ऋण वसूली न्यायाधिकरणों (डीआरटी) ने कार्य किया, वह कानूनी और अन्य संरचनागत कारकों के कारण अत्यधिक मंद थी। विभिन्न प्रस्तावों की जांच करने के बाद, यह निर्णय लिया गया कि एक आस्ति पुनर्निर्माण कंपनी की स्थापना की जाए। साथ ही यह निर्णय लिया गया कि एक केंद्रीकृत एआरसी के बजाय कई एआरसी बनाये जाएं। एआरसी के लिए आवश्यक विधिक समर्थन प्रदान करने हेतु, भारत सरकार ने वित्तीय आस्तियों का पुनर्निर्माण और प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 बनाया जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ इस बात का प्रावधान किया कि न्यायालयों या न्यायाधिकरणों के हस्तक्षेप के बिना देय राशियों की वसूली के लिए प्रतिभूति हित लागू किया जाए। उक्त अधिनियम में बैंकों/वित्तीय संस्थाओं द्वारा वित्तीय आस्तियों की बिक्री प्रतिभूतिकरण कंपनियों (एससी)/पुनर्निर्माण कंपनियों (आरसी) को करने का भी प्रावधान किया गया। रिजर्व बैंक के परामर्श से केंद्र सरकार ने यह भी निर्णय लिया कि सिविल न्यायालयों द्वारा संगठित लोक अदालतों को भेजे जानेवाले मामलों की मौद्रिक सीमा पहले के 5 लाख रुपए से बढ़ाकर 20 लाख रुपए कर दी जाए। पहले 2001 में कंपनी ऋण पुनर्विन्यास (सीडीआर) की एक योजना भी लागू की गई थी ताकि बीआइएफआर, डीआरटी और अन्य विधिक कार्यवाहियों की परिधि के बाहर समस्याओं का सामना कर रही अर्थक्षम संस्थाओं के कंपनी ऋणों के समय पर तथा पारदर्शी पुनर्विन्यास के लिए एक प्रक्रिया शुरू की जा सके।

3.169 संचित एनपीए की समस्या का समाधान करने के अलावा इस बात की भी जरूरत महसूस की गई कि नए एनपीए को रोका जाए, जो कई मामलों में प्रतिकूल चयन के कारण उत्पन्न होता है। इसके लिए ऋण

संबंधी स्वस्थ निर्णयों के लिए व्यवस्थित रूप में उधारकर्ताओं के बारे में आंकड़े प्राप्त करने और उसकी साझेदारी हेतु ऋण सूचना ब्यूरो की स्थापना की जरूरत महसूस की गई। तदनुसार, केंद्रीय बजट 2000-01 में ऋण सूचना ब्यूरो (भारत) लिमिटेड (सिबिल) की स्थापना की घोषणा की गई। विधिक प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने और बैंक/वित्तीय संस्थाओं के उधारकर्ताओं के बारे में ऋण संबंधी जानकारी एकत्र, प्रोसेस करने और उसमें साझेदारी के लिए ऋण सूचना ब्यूरो को सुकर बनाने की दृष्टि से, मई 2005 में ऋण सूचना अधिनियम बनाया गया तथा उसके तहत नियमों और विनियमों को भी अधिसूचित किया गया। उक्त अधिनियम में ऋण सूचना कंपनियों को इस बात का अधिकार प्रदान किया कि वे सभी उधारकर्ताओं से संबंधित जानकारी एकत्र कर सकें तथा रिजर्व बैंक को इस बात का अधिकार प्रदान किया कि वह ऋण सूचना कंपनियों की कार्यप्रणाली के संबंध में नीति निर्धारित कर सके और ऐसी कंपनियों को निदेश भी दे सके।

3.170 बैंकों की विगत देयताओं की वसूली के लिए शुरू किए गए विभिन्न उपायों का अनुकूल प्रभाव पड़ा क्योंकि बैंकों ने विभिन्न साधनों का उपयोग कर एनपीए में अवरुद्ध 25,520 करोड़ रुपए की वसूली 2003-04 तथा 2006-07 के बीच की (सारणी 3.38)। यद्यपि विवेकपूर्ण मानदंड लागू करने के बाद आस्ति संबंधी गुणवत्ता में सुधार आ रहा था, इसने इस चरण में स्पष्ट सुधार दर्शाया क्योंकि सकल और निवल दोनों तरह का एनपीएल तेजी से गिरकर वैश्विक स्तरों के आसपास आ गया (सारणी 3.39)।

3.171 जब आस्ति की गुणवत्ता में सुधार शुरू हुआ, ऋण की वृद्धि, जिसमें अंशतः जोखिम से बचने की प्रवृत्ति के कारण 1996-97 तथा 2003-04 के बीच उल्लेखनीय गिरावट आई थी, 2004-05 से तेज होने लगी। ऋण वृद्धि, जो आरंभ में खुदरा खंड तक संकेंद्रित थी, शीघ्र ही व्यापक हो गई और वह कृषि, उद्योग और लघु क्षेत्र तक फैल गई। ऋण वृद्धि तेज होकर 2004-05 में 30 प्रतिशत से अधिक हो गई तथा अगले दो वर्षों तक कमोबेश उसी स्तर पर बनी रही। तथापि, बैंक जमा वृद्धि दर तीव्र ऋण वृद्धि के अनुरूप नहीं चल सकी। बैंकों ने, जिन्होंने जोखिम से बचने के लिए एसएलआर अपेक्षाओं से अधिक मात्रा में एसएलआर प्रतिभूतियों में बढ़े निवेश किए थे, पहले सरकारी प्रतिभूतियों में वृद्धिशील निवेश को प्रतिबंधित किया (2004-05) तथा उसके बाद उन्होंने एसएलआर प्रतिभूतियों में किए गए निवेशों का नकदीकरण भी किया (2005-06)। 2006-07 में, यद्यपि बैंकों ने सरकारी प्रतिभूतियों में वृद्धिशील निवेश किया, तथापि एनडीटीएल के प्रतिशत के रूप में एसएलआर संविभाग में गिरावट जारी रही। फलस्वरूप, एसएलआर प्रतिभूतियों में निवेश, जो मार्च 2003 के अंत में 41.5 प्रतिशत के सर्वाधिक उच्च स्तर पर पहुंच गया था, क्रमिक रूप से गिरकर मार्च 2007 के अंत तक 28.0 प्रतिशत रह गया।

3.172 तीव्र ऋण वृद्धि की एक महत्वपूर्ण विशेषता घरेलू क्षेत्र को दिए जानेवाले बैंक ऋण में तीव्र वृद्धि थी। फलस्वरूप, कुल बैंक ऋण में खुदरा

सारणी 3.38: विभिन्न सरणियों के माध्यम से एससीबी द्वारा वसूले गए अनर्जक अग्रिम

(राशि करोड़ रुपए में)

मद/ वर्ष (अप्रैल-मार्च)	2003-04			2004-05			2005-06			2006-07		
	शामिल राशि	वसूल की गई राशि	शामिल राशि के प्रतिशत के रूप में वसूल की गई राशि	शामिल राशि	वसूल की गई राशि	शामिल राशि के प्रतिशत के रूप में वसूल की गई राशि	शामिल राशि	वसूल की गई राशि	शामिल राशि के प्रतिशत के रूप में वसूल की गई राशि	शामिल राशि	वसूल की गई राशि	शामिल राशि के प्रतिशत के रूप में वसूल की गई राशि
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
i) एकबारगी निपटान/समझौता योजनाएं*	1,510	617	40.9	-	-	-	772	608	78.8	-	-	-
ii) लोक अदालत	1,063	149	14.0	801	113	14.1	2,144	265	12.4	758	106	14.0
iii) डीआरटी	12,305	2,117	17.2	14,317	2,688	18.8	6,273	4,735	75.5	9,156	3,463	37.8
iv) सरफेसाई अधिनियम	7,847	1,156	14.7	13,224	2,391	18.1	8,517	3,363	39.5	9,058	3,749	41.4
कुल	22,725	4,039	17.8	28,342	5,192	18.3	17,706	8,971	50.7	18,972	7,318	38.6

* : सरकारी क्षेत्र के बैंकों द्वारा एसएमई खातों के लिए एकबारगी निपटान योजना 30 जून 2006 को बंद कर दी गई।

ऋण का हिस्सा मार्च 1996 के अंत के 10 प्रतिशत से बढ़कर मार्च 2007 के अंत में 25 प्रतिशत हो गया। घरेलू ऋण के भीतर, आवास ऋण की मात्रा कुल ऋण के आधे से थोड़ी अधिक थी। भूसंपदा क्षेत्र को दिए जानेवाले अग्रिमों में हुई तीव्र वृद्धि को देखते हुए बैंकों को सूचित किया गया कि वे निहित जोखिम को नियंत्रित करने हेतु उचित जोखिम प्रबंधन प्रणाली शुरू करें। तीव्र ऋण वृद्धि को देखते हुए रिजर्व बैंक ने अप्रैल 2006 में इस बात

सारणी 3.39: सकल और निवल अनर्जक आस्तियां

मार्च के अंत में	सकल अग्रिमों के प्रतिशत के रूप में सकल अनर्जक आस्तियां		निवल अग्रिमों के प्रतिशत के रूप में निवल अनर्जक आस्तियां	
	एससीबी	पीएसबी	एससीबी	पीएसबी
1	2	3	4	5
1993	-	23.2	-	-
1994	-	24.8	-	-
1995	-	19.5	-	10.7
1996	-	18.0	-	8.9
1997	15.7	17.8	8.1	9.2
1998	14.4	16.0	7.3	8.2
1999	14.7	15.9	7.6	8.1
2000	12.7	14.0	6.8	7.4
2001	11.4	12.4	6.2	6.7
2002	10.4	11.1	5.5	5.8
2003	8.8	9.4	4.0	4.5
2004	7.2	7.8	2.8	3.1
2005	5.2	5.5	2.0	2.1
2006	3.3	3.6	1.2	1.3
2007	2.5	2.7	1.0	1.1

‘-’ : अनुपलब्ध

एससीबी - अनुसूचित वाणिज्य बैंक

पीएसबी - सरकारी क्षेत्र के बैंक

का संकेत दिया कि खाद्येतर बैंक ऋण में होनेवाली वृद्धि को, जिसमें सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों और निजी कंपनी क्षेत्र के बांडों/डिबेंचरों/शेयरों में तथा वाणिज्यिक पत्र में निवेश शामिल हैं, 30 प्रतिशत से अधिक वृद्धि के स्तर से सुविचारित तौर पर कम करके 2006-07 में लगभग 20 प्रतिशत किया जाएगा। विशिष्ट क्षेत्रों को दिए जाने वाले अग्रिमों अर्थात् वैयक्तिक ऋणों, पूंजी बाजार एक्सपोजरों के लिए पात्र ऋण एवं अग्रिमों, 20 लाख रुपए से अधिक रिहाइशी आवास ऋणों और वाणिज्यिक भूसंपदा ऋणों पर सामान्य प्रावधानीकरण अपेक्षा 0.40 प्रतिशत से बढ़ाकर अप्रैल 2006 में 1 प्रतिशत तथा और बढ़ाकर 31 जनवरी 2007 को 2 प्रतिशत कर दी गई।

3.173 रिजर्व बैंक ने नीतिगत दरों में वृद्धि के साथ विवेकपूर्ण उपायों का उपयोग किया। खुदरा क्षेत्र को ऋण में हुई निरंतर वृद्धि तथा सामान्य मुद्रास्फीतिकारक स्थितियों को ध्यान में रखते हुए, रिपो दर में कुछ चरणों में 175 आधार अंकों की वृद्धि कर उसे मार्च 2004 के 6.0 प्रतिशत से 31 मार्च 2007 तक 7.75 प्रतिशत कर दिया गया।³⁴ सीआरआर, जिसे घटाकर मार्च 2004 में 4.5 प्रतिशत कर दिया गया था, क्रमिक रूप से बढ़ाकर 31 मार्च 2007 से 7.5 प्रतिशत कर दिया गया।³⁵ इन उपायों का वांछित प्रभाव पड़ा तथा ऋण वृद्धि कम होकर 2007-08 में 21.6 प्रतिशत रह गयी (अध्याय VI भी देखें)। 2004-05 तथा 2005-06 के बीच ऋण में हुई तीव्र वृद्धि के फलस्वरूप जोखिम भारत आस्तियों में तीव्र वृद्धि हुई। तथापि इस वृद्धि के बावजूद बैंक निर्धारित मानदंडों के काफी ऊपर सीआरएआर बनाए रखने में समर्थ रहे (सारणी 3.40)। इसे काफी सीमा तक लाभप्रदता में हुए सुधार द्वारा सुकर बनाया गया। क्योंकि इसने बैंकों को उनकी प्रतिधारित आय बढ़ाने की अनुमति दी (ब्यौरों के लिए अध्याय V देखें)।

³⁴ बाद में रिपो दर को चरणों में बढ़ाकर 29 जुलाई 2008 से 9.0 प्रतिशत कर दिया गया। *प्रतिस्पर्धा में आई तेजी*

³⁵ बाद में सीआरआर को चरणों में बढ़ाकर 19 जुलाई 2008 से 8.75 प्रतिशत कर दिया गया (30 अगस्त 2008 से 9.0 प्रतिशत)।

सारणी 3.40 : अनुसूचित वाणिज्य बैंकों का सीआरएआर - 2007

(मार्च-अंत)

बैंक समूह	सीआरएआर के अनुसार अनुसूचित वाणिज्य बैंकों का वितरण				सीआरएआर
	4 प्रतिशत से कम	4-9 प्रतिशत के बीच	9-10 प्रतिशत के बीच	10 प्रतिशत से अधिक	
1	2	3	4	5	6
राष्ट्रीयकृत बैंक*	-	-	-	20	12.4
स्टेट बैंक समूह	-	-	-	8	12.3
निजी क्षेत्र के पुराने बैंक	1	-	2	14	12.1
निजी क्षेत्र के नये बैंक	-	-	-	8	12.0
विदेशी बैंक	-	-	-	29	12.4
अनुसूचित वाणिज्य बैंक - कुल	1 @	-	2	79	12.3

* : सरकारी क्षेत्र के अन्य बैंकों के आंकड़े शामिल।
 @ : सांगली बैंक सीआरएआर की अपेक्षा पूरी नहीं कर सका। बैंक को 19 अप्रैल 2007 से आइसीआइसीआइ बैंक के साथ समामेलित कर दिया गया।
 सीआरएआर : जोखिम- भारित आस्तियों के प्रति पूंजी का अनुपात।

3.174 यद्यपि प्रतिस्पर्धी स्थितियां 1990 के दशक के आरंभ में निर्मित हुईं, तथापि उनका असर नहीं के बराबर रहा जैसा कि पहले बताया जा चुका है। फिर भी 2000 के दशक के आरंभ में प्रतिस्पर्धा में तेजी आनी शुरू हो गई, जो विलय और अधिग्रहण संबंधी कार्यकलापों में वृद्धि के रूप में परिलक्षित हुई। इस चरण में, 2 बड़ी विकास वित्त संस्थाओं (डीएफआइ) का विलय/परिवर्तन बैंकों के रूप में हुआ। रिजर्व बैंक के दीर्घावधि परिचालन (एलटीओ) निधि के रूप में तथा सरकार द्वारा गारंटीप्राप्त बांडों के रूप में दिए जानेवाले रियायती स्रोतों को 1990 के दशक के आरंभ में हटा लिए जाने के बाद डीएफआइ ने अपना परिचालन बरकरार रखना मुश्किल पाया। जनवरी 2001 में, रिजर्व बैंक ने आइसीआइसीआइ के उसकी वाणिज्य बैंक सहायक संस्था के साथ विपरीत विलय की अनुमति दी। आइसीआइसीआइ लिमिटेड ऐसा पहला डीएफआइ था, जिसका परिवर्तन बैंक के रूप में हुआ। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के बाद आइसीआइसीआइ दूसरा सबसे बड़ा डीएफआइ था तथा इसके विपरीत विलय ने बैंकिंग क्षेत्र की कुल आस्तियों में निजी क्षेत्र के नए बैंकों की बाजार हिस्सेदारी तेजी से बढ़ा दी। 1 अक्टूबर 2004 को एक और बड़े डीएफआइ भारतीय औद्योगिक विकास बैंक का परिवर्तन बैंकिंग कंपनी के रूप में हुआ। अप्रैल 2005 में इसका विलय इसकी बैंकिंग सहायक संस्था (आइडीबीआइ बैंक लिमिटेड) के साथ किया गया। कुल मिलाकर, इस चरण में निजी क्षेत्र में 4 नए बैंक और सरकारी क्षेत्र में 1 नया बैंक अस्तित्व में आया (2 प्रमुख डीएफआइ अर्थात् आइसीआइसीआइ और आइडीबीआइ के बैंकों में परिवर्तन सहित)। इसके अलावा, 16 विदेशी बैंकों की भी स्थापना की गई। तथापि नए देशी और विदेशी बैंकों के उदय के बावजूद बैंकों की संख्या मार्च 2000 के अंत के 100 से क्रमिक रूप से घटकर मार्च 2007 के अंत तक 82 रह गयी, जो प्रतिस्पर्धात्मक दबावों में हुई वृद्धि को दर्शाता है जिसके ब्यौरे अध्याय VIII में दिए गए हैं। विदेशी बैंकों द्वारा स्थापित शाखाओं की संख्या जून 1997 के 181 से बढ़कर मार्च 2007 तक 273 हो गई। बड़ी हुई प्रतिस्पर्धा बैंकों द्वारा

बीपीएलआर से नीचे की दर पर दिए जानेवाले उधारों में हुई तीव्र वृद्धि में भी परिलक्षित हुई। पीएलआर के अधोमुखी झुकाव तथा विभिन्न श्रेणियों के उधारकर्ताओं से लिए जानेवाले ब्याज में व्यापक अंतर की समस्या से निपटने के लिए रिजर्व बैंक ने 2003-04 में बेंचमार्क पीएलआर (बीपीएलआर) नामक योजना शुरू की ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि बैंकों की उधार दरों में पारदर्शिता रहे और ऋणों के मूल्यन में शामिल जटिलता कम हो सके। तथापि, प्रतिस्पर्धा में वृद्धि के कारण कई बैंकों ने बीपीएलआर से नीचे उधार देना शुरू किया और न्यूनतम एवं अधिकतम उधार दरों के बीच स्प्रेड में उल्लेखनीय वृद्धि हो गई। बीपीएलआर से नीचे दिए गए उधार से कंपनियों को बैंकों से प्रतिस्पर्धी दरों पर निधियां जुटाने में मदद मिली। कुल उधार में बीपीएलआर से नीचे के उधार का हिस्सा 2003-04 के 43 प्रतिशत से क्रमिक रूप से बढ़कर मार्च 2007 के अंत तक 79 प्रतिशत हो गया। फलस्वरूप, निवल ब्याज मार्जिन पर दबाव बढ़ गया, विशेष रूप से, पिछले कुछ वर्षों के दौरान, जिसके ब्यौरे अध्याय IX में दिए गए हैं।

3.175 इस चरण के दौरान, प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण को सुदृढ़ करने के लिए कुछ और उपाय किए गए। एफडीआइ युग के उदारीकरण के साथ, बैंकिंग क्षेत्र में एफडीआइ को स्वचालित मार्ग के तहत लाया गया। बैंकिंग क्षेत्र में विदेशी निवेश को और उदार बनाने की दृष्टि से, सरकार ने समय समय पर रिजर्व बैंक द्वारा जारी दिशानिर्देशों के अधीन एफआइआइ द्वारा किए जानेवाले निवेश सहित स्वचालित मार्ग के तहत निजी क्षेत्र के बैंकों में एफडीआइ की सीमा 49 प्रतिशत से बढ़ाकर 74 प्रतिशत करने की घोषणा की (5 मार्च 2004 के भारत सरकार के प्रेस नोट द्वारा)। तथापि, प्रदत्त पूंजी के 74 प्रतिशत की सकल विदेशी निवेश सीमा के भीतर एफआइआइ निवेश की सीमा 49 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकी तथा हर समय प्रदत्त पूंजी का कम से कम 26 प्रतिशत निवासियों द्वारा रखा जाना अपेक्षित था। निजी क्षेत्र के कई पुराने और नए बैंकों में अनिवासियों के पास अब बहुसंख्यक इक्विटी है (सारणी 3.41)।

सारणी 3.41 : भारत के निजी क्षेत्र के बैंकों में अनिवासियों द्वारा धारित बहुसंख्यक इक्विटी (मार्च 2007 के अंत में)

बैंक का नाम	धारित इक्विटी (प्रतिशत)
1	2
फेडरल बैंक लि.	57.2
आइएनजी वैश्य बैंक लि.	73.3
सेंचुरियन बैंक ऑफ पंजाब लि.*	69.9
डेवलपमेंट क्रेडिट बैंक लि.	64.1
एचडीएफसी बैंक लि.	51.5
आइसीआइसीआइ बैंक लि.	72.0
इंडसंड बैंक लि.	59.3
यस बैंक लि.	50.8

* : 23 मई 2008 से इसका विलय एचडीएफसी बैंक लि. के साथ किया गया।

3.176 भारत सरकार के परामर्श से, रिजर्व बैंक ने 28 फरवरी 2005 को भारत में विदेशी बैंकों की उपस्थिति के लिए रोडमैप जारी किया। रोडमैप में परिकल्पित 2 चरणों के अनुसार अप्रैल 2009 में दूसरे चरण में रोडमैप की समीक्षा की जानी है। निजी क्षेत्र के बैंकों के विलय/समांगमेलन के लिए नीति भी तैयार की गई जिसमें विलय के प्रस्ताव की प्रक्रिया, अदलाबदली अनुपात के निर्धारण, प्रकटीकरण, तथा विलय की प्रक्रिया के पहले और उसके दौरान प्रवर्तकों द्वारा शेयर खरीदने/बेचने के मानदंडों के ब्यौरे शामिल किए गए हैं (ब्यौरों के लिए अध्याय VIII देखें)।

3.177 शाखा प्राधिकरण नीति को भी सितंबर 2005 में उदारीकृत तथा युक्तियुक्त बनाया गया ताकि बैंकों को उचित स्वतंत्रता दी जा सके और भारत में नई शाखा खोलने के लिए नीति को युक्तियुक्त बनाया जा सके। समय समय पर अलग-अलग शाखाएं खोलने के लिए प्राधिकार देने की प्रणाली को परामर्शी एवं अंतःक्रियाशील प्रक्रिया के माध्यम से वार्षिक आधार पर समस्त अनुमोदन देने की प्रणाली द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। संशोधित शाखा प्राधिकरण नीति के तहत शाखाओं को बदलने, उनके रूपांतरण एवं विस्तार काउंटरो के अपग्रेडेशन संबंधी मामलों में बैंकों को उचित लचीलापन और स्वतंत्रता प्रदान की गई (ब्यौरों के लिए अध्याय X देखें)।

सर्वव्यापी बैंकों/वित्तीय संगुटों³⁶ का विशाखीकरण और उदय

3.178 बैंकिंग क्षेत्र के भीतर तथा बैंकेतर संस्थाओं और पूंजी बाजार से प्रतिस्पर्धात्मक दबाव बढ़ने के कारण बैंकों ने अपने संगठन के भीतर

अथवा सहायक संस्थाएं स्थापित कर विभिन्न प्रकार की सेवाएं प्रदान कर आय के नए स्रोतों की खोज की। सुधार आरंभ होने के पहले, बैंक अधिकांशतः परंपरागत गैर निधि आधारित कारोबार अर्थात् साख पत्र खोलने, स्वीकार करने, गारंटी जारी करने, विप्रेषण कारोबार और विदेशी मुद्रा संबंधी कारोबार यथा निर्यातकों/आयातकों को वायदा संविदाएं प्रस्तावित करने का कार्य करते थे। यद्यपि बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 में आवश्यक समर्थक प्रावधान शामिल कर लिए जाने के बाद बैंकों ने 1980 के दशक के मध्य में विशाखीकरण शुरू कर दिया था, 1990 के दशक के उत्तरार्ध में विशाखीकरण में गति आई। प्राथमिक निर्गम संबंधी कार्यकलाप से जुड़ी व्यापारी बैंकिंग संबंधी कार्यकलाप और सेवाएं प्रस्तावित करने के अलावा, बैंकों ने परियोजना मूल्यांकन, पूंजी विन्यास, निधि जुटाने और ऋण की व्यवस्था करने संबंधी सेवाएं एक छत के नीचे देना शुरू कर दिया। बैंकों ने कंपनियों को परामर्शी सेवाएं देना भी शुरू कर दिया, जिनमें देशी एवं विदेशी दोनों तरह के ग्राहकों के लिए विलय एवं अधिग्रहण, अभिरक्षात्मक और निक्षेपागार सेवाएं शामिल हैं। बैंकों को बीमा कारोबार (हामीदारी के बिना) शुरू करने की भी अनुमति दी गई। कारोबार के विशाखीकरण से ब्याजेतर आय में क्रमिक वृद्धि हुई, कुल आय में जिसका हिस्सा 1999-2000 और 2004-05 के बीच काफी बढ़ गया। बाद के वर्षों में मुख्यतः ट्रेडिंग आय /हानि के हिस्से में आई गिरावट के कारण इसके हिस्से में गिरावट आई (सारणी 3.42)।

सारणी 3.42 : अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की कुल आय में ब्याजेतर आय का हिस्सा

(राशि करोड़ रुपये में)

वर्ष	ब्याजेतर आय	कुल आय	कुल आय में ब्याजेतर आय का हिस्सा (प्रतिशत)
1	2	3	4
1998-99	12,750	1,00,062	12.7
1999-2000	15,747	1,14,930	13.7
2000-01	16,985	1,32,076	12.9
2001-02	24,074	1,51,032	15.9
2002-03	31,603	1,72,345	18.3
2003-04	39,528	1,83,861	21.5
2004-05	34,435	1,90,236	18.1
2005-06	35,368	2,20,756	16.0
2006-07	38,929	2,76,201	14.1

³⁶ सर्वव्यापी बैंकों से तात्पर्य उन संस्थाओं से है जो बैंकिंग के अलावा बीमा और/अथवा निवेश बैंकिंग संबंधी कार्य या तो उसी संगठन के भीतर अथवा अलग से पूंजीकृत सहायक संस्थाओं के माध्यम से करती हैं। दूसरी ओर वित्तीय संगुटों में उसी संगठन के भीतर या अलग से पूंजीकृत सहायक संस्था के माध्यम से या धारक कंपनी की संरचना के भीतर 3 प्रमुख कार्यकलापों अर्थात् बैंकिंग, बीमा और प्रतिभूति बाजार में से 2 को शामिल किया जाता है (ब्यौरों के लिए अध्याय X देखें)।

3.179 बीमा जैसे विभिन्न गैर परंपरागत कार्य करने के लिए सहायक कंपनियों की स्थापना में भी बैंक सक्रिय हो गए। बैंकों द्वारा स्थापित सहायक संस्थाओं की संख्या मार्च 1998 के अंत के 37 से बढ़कर मार्च 2008 के अंत तक 131 हो गई। कुछ गैर बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ भी इतने बड़े हो गए थे कि वे प्रणाली पर असर डाल सकते थे। भारत के भीतर और बाहर कई सीमा पार के वित्तीय संगुटों का भी उदय हुआ। विनियामक परिप्रेक्ष्य से, उक्त गतिविधियों से बैंक की अगुवाई वाले समूहों और वित्तीय संगुटों के परिचालनों से उत्पन्न संभाव्य जोखिमों का हल करने में पर्यवेक्षण के प्रति खंडात्मक दृष्टिकोण की सीमाएं समझ में आने लगीं। अतः रिजर्व बैंक ने उन सभी समूहों के समेकित पर्यवेक्षण का अधिदेश प्राप्त किया जहां नियंत्रक संस्था एक बैंक थी। रिजर्व बैंक के समेकित पर्यवेक्षण की परिधि में आनेवाले सभी बैंकों को सूचित किया गया कि वे अपने अकेले वित्तीय विवरणों के अलावा मार्च 2003 को समाप्त वित्तीय वर्ष से समेकित वित्तीय विवरण (सीएफएस) तैयार और प्रकट करें। समूहव्यापी आधार पर विवेकपूर्ण मानदंड लागू करने के प्रयोजन से, समेकित बैंक द्वारा अनुपालन किए जाने हेतु विवेकपूर्ण मानदंड/सीमाएं यथा जोखिम भारित आस्ति के प्रति पूंजी अनुपात (सीआरएआर), अकेले/समूह उधारकर्ता की एक्सपोजर सीमाएं, चलनिधि अनुपात, बेमेल सीमाएं तथा पूंजी बाजार एक्सपोजर सीमाएं निर्धारित की गईं।

3.180 वित्तीय संगुटों के उदय से सामने आई प्रणालीगत जोखिमों को ध्यान में रखते हुए, अन्य विनियामकों अर्थात् भारतीय प्रतिभूति और विनियम बोर्ड और बीमा विनियामक प्राधिकरण के परामर्श से एक निगरानी प्रक्रिया भी तैयार की गई। निगरानी प्रक्रिया के कारगर कार्यान्वयन के लिए रिजर्व बैंक में एक केंद्रीय कक्ष की स्थापना की गई (ब्यौरों के लिए अध्याय X देखें)।

स्वामित्व और अभिशासन

3.181 बैंकों के स्वामित्व और अभिशासन का विशेष महत्व है क्योंकि वे बड़ी मात्रा में असंपार्श्विकीकृत सार्वजनिक निधियां स्वीकार और विनियोजित करते हैं तथा ऋण सृजन के माध्यम से ऐसी निधियों को लीवरेज करते हैं। बैंक भुगतान प्रक्रिया में भी भाग लेते हैं। तथापि, भारतीय संदर्भ में बैंकों में कंपनी अभिशासन संबंधी दो प्रमुख चिंताएं उत्पन्न हुईं। ये चिंताएं स्वामित्व के संक्रेडन तथा बैंक को नियंत्रित करनेवाले प्रबंधन की गुणवत्ता से संबंधित थीं। निजी बैंकों का विनियमन इस तथ्य को देखते हुए महत्वपूर्ण था कि बैंकों के स्वामी शेयरधारकों की हिस्सेदारी सिर्फ थोड़ी होती है तथा बैंकों की लीवरेजिंग क्षमता पर विचार करते हुए वे सार्वजनिक निधियों की बहुत बड़ी राशि को नियंत्रित करते हैं जिसमें उनकी अपनी हिस्सेदारी बहुत कम होती है (मोहन,

2004बी)। इसके लिए मानदंडों के ऐसे सेट की जरूरत थी जो बड़ी मात्रा में सार्वजनिक निधियों का नियंत्रण करनेवाले बैंकों में स्वामित्व के संक्रेडन के रूप में संकेंद्रित शेयरधारिता से उत्पन्न मुद्दों का और उससे जुड़े नैतिक खतरों तथा व्यवसायों के साथ मालिकों के संबंधों की समस्या का पर्याप्त समाधान ढूंढ़ सके। स्वामित्व के विशाखीकरण को तथा ऐसे मालिकों और निदेशकों की 'उचित और उपयुक्त' स्थिति सुनिश्चित करने को वांछनीय माना गया।

3.182 स्वामित्व और अभिशासन संबंधी विधिक प्रावधान बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 में निर्धारित किए गए हैं। इनकी अनुपूर्ति समय समय पर जारी विनियामक निर्धारणों द्वारा की गई। ऐसे एक विनिर्देश के अनुसार निजी क्षेत्र के बैंकों में 5 प्रतिशत और अधिक धारिता वाले सभी शेयरधारकों से अपेक्षा की गई कि वे योग्यता, प्रतिष्ठा, पिछले रिकार्ड, ईमानदारी, वित्तीय विधीक्षा के संतोषजनक परिणाम, निधियों के स्रोत आदि के 'उपयुक्त और उचित' परीक्षण पूरी करें। आवेदक कंपनी होने के मामले में, 'उपयुक्त और उचित' परीक्षण में ऊपर दर्शाए गए अनुसार कंपनी से जुड़े व्यक्तियों और अन्य संस्थाओं के मूल्यांकन के अलावा अच्छे कंपनी अभिशासन, वित्तीय शक्ति तथा ईमानदारी को शामिल किया जाना है। निजी क्षेत्र के बैंक की प्रदत्त पूंजी के 5 प्रतिशत और अधिक तक शेयरों का आबंटन अंतरण किसी संस्था/समूह को करने के लिए रिजर्व बैंक की पूर्व स्वीकृति अपेक्षित है। तथापि, इस संबंध में ब्यौरेवार दिशानिर्देश 3 फरवरी 2004 को जारी किए गए। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि विनिर्दिष्ट सीमा से अधिक समस्त धारितावाले शेयरधारक शेयरों के अंतरण की स्वीकृति प्रदान किए जाने के पहले उपयुक्त और उचित परीक्षणों को पूरा करें। जून 2004 में रिजर्व बैंक ने निजी क्षेत्र के बैंकों को यह भी निदेश दिया कि वे योग्यता, विशेषज्ञता, पिछले रिकार्ड, ईमानदारी और अन्य 'उपयुक्त और उचित' मानदंडों के आधार पर बोर्ड पर निदेशक के रूप में नियुक्ति/नियुक्त बने रहने के लिए किसी व्यक्ति की उपयुक्तता निर्धारित करने के लिए उचित सावधानी की प्रक्रिया अपनाएं।

3.183 साथ ही, व्यापक परामर्श के बाद रिजर्व बैंक ने फरवरी 2005 में निजी क्षेत्र के बैंकों में स्वामित्व और अभिशासन की व्यापक नीतिगत रूपरेखा जारी की। उक्त रूपरेखा में अंतर्निहित की व्यापक सिद्धांत यह सुनिश्चित करते हैं कि (i) अंतिम स्वामित्व और नियंत्रण अच्छी तरह विशाखीकृत हो; (ii) महत्वपूर्ण शेयरधारक 'उपयुक्त और उचित' हों; (iii) निदेशक और सीईओ 'उपयुक्त और उचित' हों तथा वे सुदृढ़ कंपनी अभिशासन सिद्धांतों का अनुपालन करें; (iv) निजी क्षेत्र के बैंक इष्टतम परिचालनों और प्रणालीगत स्थिरता के लिए 300 करोड़ रुपए की न्यूनतम निवल मालियत बनाए रखें तथा (v) नीति और प्रक्रियाएं पारदर्शी और स्वच्छ हों।

3.184 एक भलीभांति विशाखीकृत स्वामित्ववाली संरचना की प्राप्ति के लिए यह निर्धारित किया कि किसी एक संस्था अथवा संबंधित संस्थाओं के समूह के पास निजी क्षेत्र के बैंक की प्रदत्त पूंजी के 10 प्रतिशत से अधिक शेयरधारिता या नियंत्रण, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष, न हो। भारत स्थित किसी अन्य बैंक में 5 प्रतिशत से अधिक शेयरधारिता रखनेवाले किसी बैंक से यह अपेक्षा की गई कि वह इस प्रकार की धारिता कम करके उसे 5 प्रतिशत की अनुमति सीमा तक लाने के लिए समयबद्ध योजना तैयार करे। इसी तरह भारत में किसी अन्य बैंक में बैंकिंग समूह में किसी अन्य संस्था के माध्यम से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से 5 प्रतिशत से अधिक शेयरधारिता रखनेवाले भारत में मौजूदगीवाले किसी विदेशी बैंक की मूल संस्था से अपेक्षा की गई कि वह इस प्रकार की धारिता कम करके 5 प्रतिशत तक लाने हेतु समयबद्ध योजना तैयार करे। समस्याग्रस्त/कमजोर बैंकों के पुनर्विन्यास अथवा बैंकिंग क्षेत्र में समेकन के हित में, रिजर्व बैंक बैंक सहित शेयरधारिता के उच्चतर स्तर की अनुमति दे सकता है। इष्टतम परिचालनों और प्रणालीगत स्थिरता के आधार 300 करोड़ रुपए की न्यूनतम निवल मालियत को वांछनीय माना गया। 300 करोड़ रुपए से कम निवल मालियतवाले बैंकों को सूचित किया गया कि वे एक उचित अवधि के भीतर इसे बढ़ाकर इस स्तर तक लाएं। लाइसेंसिंग प्रोसेसिंग के अंग के रूप में की गई वचनबद्धताओं तथा 'उपयुक्त और उचित' और सुदृढ़ अभिशासन का अनुपालन जारी रखने को भी हिसाब में लिया जाना है।

3.185 सरकारी क्षेत्र के बैंकों में भी कंपनी अभिशासन के महत्व को ध्यान में रखते हुए, रिजर्व बैंक की पहल पर भारत सरकार ने बैंकिंग कंपनी (उपक्रमों का अभिग्रहण और अंतरण) अधिनियम, 1970/1980 तथा भारतीय स्टेट बैंक (सहयोगी बैंक) अधिनियम, 1959 में संशोधन किए ताकि सरकारी क्षेत्र के बैंकों के बोर्डों पर चुने गए निदेशकों के लिए 'उपयुक्त और उचित' मानदंड लागू करने हेतु प्रावधान करने के लिए नयी धाराएं शामिल की जा सकें। नवंबर 2007 में राष्ट्रीकृत बैंकों को आवश्यक दिशानिर्देश जारी किए गए।

ऋण सुपुर्दगी - एसएमई

3.186 बड़े उद्योगों, जिनकी पहुंच वित्त के विभिन्न देशी और अंतरराष्ट्रीय स्रोतों तक है, से भिन्न लघु और मझौले उद्यम (एसएमई) व्यापक रूप से बैंक वित्त पर निर्भर होते हैं। ब्याज दरों के अविनियमन के फलस्वरूप, ऐसी आशा थी कि जरूरतमंदों को ऋण के प्रवाह में वृद्धि होगी। तथापि, 1990 के दशक तथा चालू दशक के पहले चार वर्षों में एसएमई क्षेत्र को ऋण में कमी आई (1980 के दशक के 20.7 प्रतिशत की तुलना में 8.1 प्रतिशत)। अर्थव्यवस्था में लघु उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करते हुए, रिजर्व बैंक ने लघु उद्योग

(एसएसआई) इकाइयों को ऋण का प्रवाह बढ़ाने हेतु कई उपाय किए। इनमें लघु उद्योग और अति लघु उद्यमों की परिभाषा में संशोधन; इन उद्योगों को अप्रत्यक्ष वित्त का विस्तार; विभिन्न क्षेत्रों में यथा प्रतिभूतिकृत आस्तियों, ऋण व्यवस्थाओं, बिल भुनाई तथा लीजिंग और प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र अग्रिमों के लिए पात्र किराया खरीद में निवेश करना शामिल हैं। इसके अलावा कई कार्यकारी दलों और केंद्र सरकार एवं रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त उच्चाधिकारप्राप्त समितियों द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसरण में दिशानिर्देशों का एक व्यापक सेट तैयार किया गया जिनका अनुसरण लघु उद्योग क्षेत्र के सभी श्रेणी के उधारकर्ता को अग्रिम देने के लिए किया जाना है।

3.187 लघु उद्योग के प्रति रिजर्व बैंक की नरम ब्याज दर नीति का लाभ प्रदान करने के लिए, बैंकों को सूचित किया गया कि वे ब्याज दरों में आई गिरावट की आम प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए लघु उद्योग को दिए जानेवाले अग्रिमों पर ब्याज दर तय करें। साथ ही, केंद्रीय बजट 2003-04 में की गई घोषणा के अनुसार, भारतीय बैंक संघ ने बैंकों को सूचित किया कि वे जमानती अग्रिमों के लिए बीपीएलआर से 2 प्रतिशत ऊपर और नीचे का ब्याज दर बैंड अपनाएं। विलंबित भुगतान की समस्या को दूर करने के लिए, बैंकों को यह भी सूचित किया गया कि वे विशेष रूप से लघु उद्योग से खरीद के बारे में भुगतान दायित्व पूरा करने हेतु समग्र कार्यशील पूंजी सीमा के भीतर उप सीमाएं निर्धारित करें। उक्त क्षेत्र को समय पर ऋण उपलब्ध कराने हेतु, ऋण आवेदन के निपटान के लिए समय सीमा निर्धारित की गई। 2003-04 की मौद्रिक और ऋण नीति की मध्यावधि समीक्षा में बैंकों को इस बात की अनुमति दी गई कि वे लघु उद्योग इकाई के अच्छे पिछले रिकार्ड तथा उसकी वित्तीय स्थिति के आधार पर संपार्श्विक अपेक्षा से छुटकारे के लिए ऋण सीमा 15 लाख रुपए से बढ़ाकर 25 लाख रुपए (अपने बोर्ड के अनुमोदन से) कर सकते हैं। इसके अलावा लघु उद्योग को ऋण प्रदान करने के प्रयोजन के लिए एनबीएफसी को बैंकों द्वारा स्वीकृत सभी नए ऋणों को प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र ऋण के रूप में स्वीकार किए जाने की अनुमति दी गई।

3.188 लघु उद्योग क्षेत्र को ऋण का प्रवाह बढ़ाने के लिए कई अन्य उपाय भी शुरू किए गए। इनमें नए क्लस्टर की पहचान तथा लघु और मझौले उद्यम (एसएमई) क्षेत्र के वित्तपोषण के लिए क्लस्टर आधारित दृष्टिकोण अपनाना; विशिष्ट परियोजनाओं का प्रवर्तन तथा एनजीओ के सफल कार्य मॉडल का व्यापक प्रचार; उच्चतर स्तर का स्टॉक रखने के लिए उत्तर पूर्वी क्षेत्र में लघु उद्योग को उच्चतर कार्यशील पूंजी सीमाओं की स्वीकृति; तथा ग्रामीण उद्योग के संवर्धन के लिए नए साधनों की खोज शामिल हैं। प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र उधार संबंधी दायित्व पर कमी आने पर विदेशी बैंकों द्वारा सिडबी में रखी गई जमाराशियों पर

ब्याज दरों का पुनर्विन्यास किया गया तथा जमाराशियों की अवधि वित्त वर्ष 2005-06 से एक साल से बढ़ाकर तीन साल कर दी गई।

3.189 किए गए विभिन्न उपायों का एसएमई क्षेत्र को ऋण प्रवाह पर सकारात्मक असर पड़ा तथा 2004-05 से उसमें वृद्धि हुई। पिछले 3 वर्षों (2004-05 से 2006-07) के दौरान एसएमई क्षेत्र को ऋण की औसत वृद्धि दर 1990 के दशक के 8.1 प्रतिशत से बढ़कर 37.3 प्रतिशत हो गई। इस वृद्धि के बावजूद, कुल बैंक ऋण में लघु उद्योग क्षेत्र का हिस्सा गिरकर मार्च 2007 के अंत में 16.9 प्रतिशत (मार्च 1991 के अंत के 27.9 प्रतिशत से) तथा उद्योग को कुल ऋण में उसका हिस्सा 38.7 प्रतिशत (54.3 प्रतिशत से) रह गया। 2006-07 में लघु उद्योग क्षेत्र की ऋण की तीव्रता 1990-91 की तुलना में कम थी, जो उस साल कम वृद्धि के कारण स्वयं काफी कम थी (ब्यौरों के लिए अध्याय VI देखें)।

ऋण सुपुर्दगी में सुधार - ग्रामीण क्षेत्र

3.190 अपर्याप्तता, समय पर उपलब्धता संबंधी सीमा, उच्च लागत, लघु और सीमान्त किसानों की उपेक्षा, कई राज्यों में कम ऋण जमा अनुपात तथा अनौपचारिक बाजारों की निरंतर उपस्थिति के रूप में समय-समय पर ग्रामीण ऋण के संबंध में कई प्रकार की चिंताएं व्यक्त की गईं। यह देखा गया कि जहां वाणिज्य बैंक दक्षता और लाभप्रदता सुधारने पर अधिक ध्यान दे रहे थे, वहीं उन्होंने ग्रामीण ऋण के प्रति अपेक्षाकृत कम प्राथमिकता दी। कई प्रकार की कार्रवाइयों के बावजूद, कुछ असंतोषजनक तत्व थे जिसके कारण ग्रामीण ऋण संबंधी समग्र स्थिति में वांछित सुधार नहीं आया। वस्तुतः, 1990 के दशक में कृषि को ऋण वृद्धि कम होकर 1980 के दशक की तुलना में लगभग आधी रह गई। 1990 के दशक के उत्तरार्ध में तथा 2000 के आरंभ में वास्तविक जीडीपी में कृषि के हिस्से की तुलना में पूंजी निर्माण में इसके हिस्से में आई गिरावट चिंता का विषय थी जो अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की ग्रामीण शाखाओं को ऋण जमा अनुपात में गिरावट से तीव्र हो गई। इसके अलावा कई अनुसूचित वाणिज्य बैंकों ने कृषि सहित प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र को उधार में गिरावट सूचित की। अतः सरकार और रिजर्व बैंक ने कृषि को ऋण का प्रवाह बढ़ाने के लिए कई उपाय किए।

3.191 सरकार ने 18 जून 2004 को कई उपायों की घोषणा की जिनका उद्देश्य 2004-05 के लिए 30 प्रतिशत ऋण वृद्धि के साथ 3 वर्ष में कृषि ऋण को दुगुना करना था। इस घोषणा के अनुसरण में, वाणिज्य बैंकों के बारे में रिजर्व बैंक तथा आइबीए द्वारा और सहकारी बैंकों एवं आरआरबी के बारे में नाबार्ड द्वारा आवश्यक उपाय शुरू किए गए। इन उपायों में निम्नलिखित शामिल थे - (i) प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित किसानों

के ऋण का पुनर्विन्यास तथा उन्हें नया ऋण प्रदान करना; (ii) छोटे और सीमान्त किसानों के लिए एकबारगी निपटान; (iii) समझौते अथवा बट्टे खाते डालने से जिन किसानों का पिछला ऋण निपट गया था, उन्हें नया वित्त प्रदान करना; तथा (iv) गैर संस्थागत उधारकर्ताओं के प्रति ऋणग्रस्त किसानों के लिए राहत उपाय। बैंकों द्वारा कृषि ऋण का वास्तविक संवितरण 2006-07 तक के सभी 3 वर्षों के दौरान लक्ष्य से अधिक रहा। इस उपाय को आगे बढ़ाते हुए, केंद्रीय वित्त मंत्री ने 2007-08 के लिए बैंकों द्वारा वितरण हेतु 2,25,000 करोड़ रुपए का तथा 2008-09 के लिए 2,80,000 करोड़ रुपए का लक्ष्य निर्धारित किया। रिजर्व बैंक ने संकटग्रस्त किसानों तथा वास्तविक आपदाओं द्वारा प्रभावित व्यक्तियों की सहायता के लिए कृषि ऋण प्राप्त करने हेतु क्रियाविधि और प्रक्रिया को आसान बनाने के लिए भी कई अन्य उपाय शुरू किए।

3.192 कृषि क्षेत्र को ऋण का प्रवाह बढ़ाने हेतु रिजर्व बैंक ने कई अन्य उपाय शुरू किए। इनमें ये शामिल हैं - (i) अवस्थिति से निरपेक्ष कृषि उत्पादों के भंडारण के लिए बनाई गई भंडारण इकाइयों को दिए गए ऋणों को कृषि के प्रति अप्रत्यक्ष ऋण के रूप में मानना; (ii) कृषि को प्रत्यक्ष (अप्रत्यक्ष) उधार का प्रतिनिधित्व करनेवाली प्रतिभूतिकृत आस्तियों में बैंकों द्वारा किए गए निवेशों को कृषि के प्रति प्रत्यक्ष (अप्रत्यक्ष) उधार के रूप में मानना; तथा (iii) 50,000 रुपए तक के कृषि ऋणों के लिए और कृषि व्यवसाय एवं कृषि क्लिनिक के मामले में 5 लाख रुपए तक के ऋणों के लिए मार्जिन/प्रतिभूति संबंधी अपेक्षा समाप्त करना। इसके अलावा, रिजर्व बैंक ने अल्पावधि फसलों के लिए स्वीकृत ऋणों को उस स्थिति में एनपीए मानकर, जब उस पर मूल धन या ब्याज की किस्त नियत तारीख से 2 फसल मौसम तक अदत्त बनी रही हो, चुकोती की तारीखों को फसलों की कटाई के साथ संरेखित किया। दीर्घावधि फसलों के लिए स्वीकृत ऋणों को उस स्थिति में एनपीए माना गया जब उस पर मूल धन या ब्याज की किस्त नियत तारीख से एक फसल मौसम के लिए अदत्त रही हो।

3.193 बैंकिंग क्षेत्र की व्याप्ति के और अधिक संवर्धन के लिए, बैंकों को गैर सरकारी संगठनों/स्वयं सहायता समूहों (एनजीओ)/ (एसएचजी), व्यष्टि वित्त संस्थाओं (एमएफआइ) तथा अन्य सिविल सोसाइटी संगठनों (सीएसओ) की सेवाएं व्यवसाय सुकरकर्ता (फसिलिटेटर) तथा व्यवसाय संपर्क मॉडलों का उपयोग करके वित्तीय एवं बैंकिंग सेवाएं प्रदान करने में बिचौलियों के रूप में लेने की अनुमति दी गई है। ये बिचौलिए लोगों के द्वार तक बैंकिंग पहुंचा सकते हैं। इस उपाय से बैंकों को उस अनौपचारिक क्षेत्र को प्रतिस्पर्धा देने में सुविधा होगी जो लेनदेन करने में पहुंच, लचीलेपन तथा आसानी के कारण फलफूल रहा था।

3.194 कृषि को ऋण में आई गिरावट को देखते हुए, इस बात की जरूरत महसूस की गई कि आरआरबी को ग्रामीण ऋण सुपुर्दगी प्रणाली के

लिए कारगर साधन के रूप में प्रस्तुत किया जाए, उसकी परिचालनात्मक अर्थक्षमता को सुधारा जाए और बड़े पैमाने की क्वायतों का (लेनदेन लागत कम करके) लाभ उठाया जाए। तदनुसार, विभिन्न पणधारियों की राय जानने के बाद सलाहकार समिति (अध्यक्ष:श्री वी.एस.व्यास) द्वारा आरआरबी के विलय / समामेलन का मार्ग सुझाया गया। उक्त दल के अनुसार विलय की गई संस्थाओं का परिचालन क्षेत्र बढ़ेगा तथा विलय की प्रक्रिया से कुछ कमजोर आरआरबी को सुदृढ़ बनाने में मदद मिलेगी। दो चरणों वाले पुनर्विन्यास का सुझाव दिया गया (i) उसी राज्य में उसी प्रायोजक बैंक के आरआरबी के बीच विलय; तथा (ii) उसी राज्य में विभिन्न बैंकों द्वारा प्रायोजित आरआरबी का विलय।

3.195 भारत सरकार ने सितंबर 2005 में राज्य स्तर पर बैंकवार आरआरबी के समामेलन के पहले चरण की शुरुआत की। 31 मार्च 2005 की स्थिति के अनुसार, 523 जिलों में (मार्च 2006 के अंत में 525) 26 राज्यों में 196 आरआरबी कार्य कर रहे थे तथा उनके पास 14,484 शाखाओं (मार्च 2006 के अंत में 14,489) का नेटवर्क था। 12 सितंबर 2005 से शुरू कर भारत सरकार द्वारा 17 राज्यों में 20 बैंकों द्वारा प्रायोजित 154 आरआरबी का समामेलन 45 नए आरआरबी में किए जाने तथा पुदुचेरी संघशासित क्षेत्रों में एक नया आरआरबी बनाने के फलस्वरूप आरआरबी की कुल संख्या 196 से घटकर मई 2008 में 88 रह गई। 31 मार्च 2007 को 45 समामेलित आरआरबी द्वारा कुल 357 जिलों को कवर किया गया था। प्रत्येक आरआरबी द्वारा 2 से 25 तक जिलों को कवर किया गया था। 31 मार्च 2007 को समामेलित आरआरबी की शाखाओं की संख्या 10,563 थी। इन समामेलित आरआरबी का शाखा नेटवर्क काफी बड़ा था, जो 50 से 677 शाखाओं के दायरे में था। समामेलन के बाद की अवधि में संबंधित आरआरबी ने कार्यान्वयन के लिए नाबार्ड ने प्रायोजक बैंकों को संगठनात्मक ढांचे, अध्यक्ष की नियुक्ति तथा स्टाफ की वरिष्ठता के निर्धारण के बारे में संशोधित दिशानिर्देश जारी किए। समामेलन की प्रक्रिया को कारगर बनाने के लिए नाबार्ड ने पूरा मार्गदर्शन और समर्थन प्रदान किया। दूसरे चरण में सलाहकार समिति ने यह सिफारिश की कि उसी राज्य में विभिन्न बैंकों द्वारा प्रायोजित आरआरबी का विलय किया जाए। आरआरबी अधिनियम, 1976 में प्रायोजक बैंक के साथ आरआरबी के विलय के लिए प्रावधान नहीं किया गया है। इसके अलावा, इस प्रकार का विलय करना स्थानीय संस्था के रूप में तथा प्राथमिक तौर पर कमजोर वर्गों को ऋण प्रदान करने के लिए आरआरबी की स्थापना की भावना के प्रतिकूल होता।

3.196 आरआरबी को ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण सुपुर्दगी का महत्वपूर्ण माध्यम बनाने के लिए रिजर्व बैंक ने दिसंबर 2005 में एक विशेष पैकेज की घोषणा की, जिसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं। पहला, प्रायोजक बैंकों को सूचित किया गया कि वे आरआरबी को उचित ब्याज दर पर ऋण

व्यवस्था प्रदान करें ताकि उनका संसाधन आधार बढ़ सके। इसके अलावा, आरआरबी को अंतर-आरआरबी मीयादी मुद्रा/उधार तक और साथ ही रिपो/सीबीएलओ बाजारों तक पहुंच प्रदान की गई। दूसरा, आरआरबी को परोक्ष एटीएम की स्थापना करने, डेबिट क्रेडिट कार्ड जारी करने तथा सरकारी कारोबार करने के लिए प्राधिकृत बैंकों के उप-एजेंट के रूप में पेंशन/सरकारी कारोबार करने की अनुमति दी गई। तीसरा, रिजर्व बैंक ने सूचित किया कि उनकी वित्तीय स्थिति को हिसाब में लेते हुए करेंसी चेस्ट खोलने हेतु आरआरबी के अनुरोध पर विचार किया जा सकता है। चौथा, रिजर्व बैंक ने आरआरबी द्वारा विभिन्न प्रकार के विदेशी मुद्रा लेनदेन करने संबंधी वर्तमान मानदंडों की समीक्षा की ताकि उन्हें विदेशी शिक्षा, कारोबारी यात्रा, शारीरिक उपचार और निजी दौरे जैसे कुछ विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए विदेशी मुद्रा जारी करने संबंधी गैर व्यापार संबद्ध चालू खाता लेनदेन करने की अनुमति दी जा सके।

3.197 आरआरबी के व्यावसायिक परिचालन को नए क्षेत्रों में विशाखीकृत करना सुकर बनाने के लिए भी कई नीतिगत पहलें की गईं। ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय समावेशन के लिए एक महत्वपूर्ण माध्यम बनाने हेतु आरआरबी को नए निदेश देने के लिए, सरकार ने 25 जनवरी 2007 को आरआरबी के कार्यनिष्पादन की समीक्षा की। तदनुसार, आरआरबी को अपना जमा आधार बढ़ाने और प्राथमिकता एवं गैर प्राथमिकताप्राप्त दोनों क्षेत्रों के तहत उभरती हुई संभावनाओं का दोहन कर ऋण जमा अनुपात 56 प्रतिशत के स्तर से बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। आरआरबी को सुदृढ़ तथा उन्हें वित्तीय दृष्टि से मजबूत और प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए, सरकार ने ऋणात्मक निवल मालियत वाले आरआरबी के पुनःपूँजीकरण पर और विचार किया। भारत सरकार ने 17 मई 2007 को अधिसूचना जारी कर सरफेसी अधिनियम, 2002 के प्रयोजन के लिए 'क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक' को 'बैंक' के रूप में विनिर्दिष्ट किया। उनके कार्यनिष्पादन में सुधार लाने की दृष्टि से, आरआरबी को इस बात की अनुमति दी गई कि वे कतिपय शर्तें यथा सकारात्मक निवल मालियत, विवेकपूर्ण मानदंडों का अनुपालन, एनपीए 10 प्रतिशत से अनधिक होना, पिछले 3 वर्षों में लगातार लाभ कमाना तथा कोई संचित हानि न होना पूरी करने पर जोखिम में भागीदारी के बिना कंपनी एजेंट के रूप में बीमा कारोबार रिजर्व बैंक की पूर्वानुमति से कर सकते हैं।

3.198 ग्रामीण सहकारिताओं ने भी कुछ वर्षों से कई कमजोरियां दर्शायीं, जिन्होंने वाणिज्य बैंकों के साथ कारगर प्रतिस्पर्धा की उनकी योग्यता को अवरुद्ध किया। इन कमजोरियों में कम संसाधन आधार, खराब व्यावसायिक विशाखीकरण और वसूली, बड़ी संदिग्ध हानियां, व्यावसायिकता और कुशल स्टाफ की कमी, कमजोर एमआइएस, खराब आंतरिक जांच और नियंत्रण प्रणाली शामिल हैं। फलस्वरूप, कृषि ऋण में सहकारी बैंकों का हिस्सा कुछ वर्षों से गिर गया। सहकारी बैंकों की वित्तीय स्थिति भी खराब

हो गई। अतः राज्य सरकारों से व्यापक परामर्श के बाद सरकार ने अल्पावधि ऋण सहकारी संस्थाओं के लिए किए जानेवाले सुधारों के साथ 'पुनर्जीवन पैकेज' की घोषणा की ताकि उन्हें सही मायने में लोकतांत्रिक, स्वायत्त, मुखर, सदस्य-चालित, व्यावसायिक रूप से प्रबंधित और वित्तीय रूप से सुदृढ़ बनाया जा सके।

3.199 'पुनर्जीवन पैकेज' में अल्पावधि सहकारी ऋण संस्थाओं को कुल 13,596 करोड़ रुपए की वित्तीय सहायता प्रदान करने की परिकल्पना की गई, जिसमें भारत सरकार, राज्य सरकारों और सहकारी ऋण संरचना की इकाइयों द्वारा, राज्य सरकारों द्वारा शुरू किए जानेवाले कतिपय विधिक और संस्थागत सुधारों के अधीन, हिस्सा लिया जाना था। अल्पावधि सहकारी ऋण संरचना को दी जाने वाली वित्तीय सहायता में 31 मार्च 2004 की स्थिति के अनुसार तुलनपत्रों को ठीक करना, सात प्रतिशत सीआरएआर के न्यूनतम स्तर को प्राप्त करने के लिए समर्थन देना, एकरूप लेखांकन और निगरानी प्रणालियां विकसित करना, क्षमता निर्माण और कंप्यूटरीकरण शामिल था। पच्चीस राज्यों अर्थात् आंध्र प्रदेश, आसाम, अरुणाचल प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, हरियाणा, जम्मू और काश्मीर, झारखंड, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, सिक्किम, तामिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल ने पैकेज के लिए अपनी स्वीकृति भेज दी और उन्होंने पैकेज लागू करने के लिए केन्द्र सरकार तथा नाबार्ड के साथ समझौता ज्ञापन निष्पादित किया। इसमें देश के 96 प्रतिशत पीएसीएस तथा 87 प्रतिशत सीसीबी को कवर कर लिया गया। 2008-09 के अपने बजट भाषण में केन्द्रीय वित्त मंत्री ने यह उल्लेख किया कि केन्द्र सरकार ने चार राज्यों के लिए 1,185 करोड़ रुपए की राशि जारी की है। 2008-09 के अपने बजट भाषण में केन्द्रीय वित्त मंत्री ने यह भी उल्लेख किया कि "दीर्घावधि सहकारी ऋण संरचना को पुनर्जीवित करने के लिए प्रो. वैद्यनाथन समिति की रिपोर्ट के कार्यान्वयन हेतु केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों ने पैकेज की विषयवस्तु के बारे में एक करार किया है। पैकेज की लागत 3,074 करोड़ रुपये होने का अनुमान था, जिसमें केन्द्र सरकार की हिस्सेदारी 2,642 करोड़ रुपये या कुल भार का 86 प्रतिशत थी। सरकार राज्य सरकारों के परामर्श से उपायों का एक पैकेज तैयार कर रही थी"।

3.200 सरकार तथा रिजर्व बैंक द्वारा शुरू किए गए विभिन्न उपायों का वांछित असर पड़ा तथा कृषि को ऋण वृद्धि में 2003-04 के बाद उल्लेखनीय उछाल आया। फलस्वरूप, 2003-04 से 2006-07 के दौरान कृषि को औसत ऋण वृद्धि की दर 1990 के दशक के 10.6 प्रतिशत तथा 1980 के दशक के 18.1 प्रतिशत से बढ़कर 27.4 प्रतिशत हो गई। कुल बैंक ऋण में कृषि को ऋण का हिस्सा मार्च 2004 के अंत के 10.9 प्रतिशत

से बढ़कर मार्च 2007 के अंत में 12.2 प्रतिशत हो गया। कृषि क्षेत्र की ऋण गहनता (कृषि ऋण / कृषि जीडीपी) भी मार्च 2004 के अंत के 17.0 प्रतिशत से बढ़कर मार्च 2007 के अंत में 31.0 प्रतिशत हो गई (ब्यौरों के लिए अध्याय VI देखें)।

3.201 सरकार तथा रिजर्व बैंक द्वारा शुरू किए गए विभिन्न उपायों के फलस्वरूप आरआरबी के परिचालनों में काफी सुधार आया। आरआरबी के वित्तीय कार्यनिष्पादन में और सुधार आया तथा हानि उठानेवाले आरआरबी की संख्या 2004-05 के 22 से और गिरकर 2006-07 में 15 रह गई। आरआरबी का निवल एनपीएल मार्च 2005 के अंत के 5.2 प्रतिशत से गिरकर मार्च 2007 के अंत में 3.4 प्रतिशत रह गया। आरआरबी की ऋण वृद्धि पिछले तीन वर्षों (2001-02 से 2003-04) के औसत 17.8 प्रतिशत तथा पिछले 10 वर्षों (1994-95 से 2003-04) के 17.7 प्रतिशत से बढ़कर तीन वर्ष की अवधि (2004-05 से 2006-07) के दौरान औसत 22.9 हो गई।

वित्तीय समावेशन

3.202 भारत में बैंकों के राष्ट्रीयकरण से बैंकिंग में उल्लेखनीय बदलाव आया क्योंकि इसमें 'वर्ग बैंकिंग' से हटाकर 'समूह बैंकिंग' पर ध्यान केन्द्रित किया गया। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक बनाने के पीछे भी यही तर्क था कि बैंकिंग सेवाओं को गरीब जनता तक ले जाया जाए। कुछ वर्षों में बैंकिंग उद्योग में मात्रा एवं जटिलता में अत्यधिक वृद्धि हुई। 1990 के दशक के आरंभ से वित्तीय अर्थक्षमता, लाभप्रदता और प्रतिस्पर्धात्मकता संबंधी सभी क्षेत्रों में उल्लेखनीय सुधार के बावजूद, इस बात की चिंता थी कि बैंक आबादी के बड़े भाग तक, विशेषकर समाज के सुविधारहित वर्गों तक, मूल बैंकिंग सेवाएं पहुंचाने में समर्थ नहीं हुए। बैंकिंग क्षेत्र की व्यापित के बावजूद, औपचारिक ऋण प्रणाली अनौपचारिक वित्तीय बाजारों तक पर्याप्त रूप में पहुंच नहीं सकी। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी, वित्तीय निष्कासन के कारणों के अध्ययन के लिए प्रयास चल रहे थे ताकि गरीब एवं लाभ से वंचित व्यक्तियों का वित्तीय समावेशन सुनिश्चित करने के लिए रणनीति तैयार की जा सके।

3.203 रिजर्व बैंक को उन बैंकिंग प्रथाओं की भी चिंता थी, जिनकी वजह से आबादी का बड़ा भाग बैंकिंग सेवा से वंचित रह जाता था। अतः जरूरी समझा गया कि उन्हें औपचारिक बैंकिंग क्षेत्र के भीतर लाया जाए ताकि न सिर्फ निष्कासित वर्ग के वित्तीय समावेशन के संवर्धन के लिए अपितु उनका कारोबार बढ़ाने के लिए भी कम-से-कम मूलभूत बैंकिंग सेवाएं समाज के सभी वर्गों को समान रूप से उपलब्ध करायी

³⁷ वित्तीय समावेशन से जनसमूह को तथा लाभ से वंचित एवं कम आय वाले व्यापक वर्ग को वित्तीय सेवाओं की सुपुर्दगी अभिप्रेत है।

जा सकें। इस संदर्भ में वर्ष 2005-06 के वार्षिक नीति वक्तव्य में, रिजर्व बैंक ने उल्लेख किया कि बैंकिंग प्रथाओं के संबंध में कुछ वैध चिंताएं थीं जो आबादी के बड़े भाग को, विशेष तौर पर पेंशनभोगियों, स्वनियोजित व्यक्तियों और असंगठित क्षेत्र में नियोजित व्यक्तियों को, आकृष्ट करने के बजाय निष्कासित करती हैं। नीति में यह नोट किया गया कि जहाँ वाणिज्यिक दृष्टि से विचार करना निःसंदेह महत्वपूर्ण है, वहीं बैंकों को बहुत से विशेषाधिकार प्राप्त हैं, अतः यह आवश्यक है कि वे समता के आधार पर आबादी के सभी वर्ग को बैंकिंग सेवाएं प्रदान करें। इस पृष्ठभूमि में, नीति में यह उल्लेख किया गया कि रिजर्व बैंक व्यापक सेवाएं प्रदान करनेवाले बैंकों को प्रोत्साहित करने के लिए नीति लागू करेगा जबकि सुविधारहित वर्ग सहित समुदाय की बैंकिंग संबंधी जरूरतों के प्रति जवाबदेही न लेनेवाले बैंकों का अप्रोत्साहित किया जाएगा। इसके अलावा, आम आदमी को मूलभूत बैंकिंग सेवाओं की मनाही, अव्यक्त या व्यक्त, के मूल्यांकन के लिए बैंकों द्वारा प्रदान की जा रही सेवाओं के स्वरूप, उनकी व्याप्ति और लागत पर भी निगरानी रखी जानी थी। अतः उक्त नीतिगत वक्तव्य में बैंकों से अनुरोध किया गया कि वे अपनी वर्तमान प्रथाओं की समीक्षा कर उन्हें वित्तीय समावेशन के उद्देश्य के साथ संरेखित करें।

3.204 यह माना गया कि कई बैंकों में न्यूनतम शेष और लगाए जाने वाले प्रभारों की अपेक्षा, उनके साथ कई निःशुल्क सुविधाएं होने के बावजूद, बैंक खाता खोलने / बनाए रखने से आबादी के एक बड़े भाग को रोकती है। अतः रिजर्व बैंक ने नवंबर 2005 में बैंकों को सूचित किया कि वे 'शून्य' या बहुत कम न्यूनतम शेष तथा प्रभारों वाले 'नो - फ्रिल' मूल बैंकिंग खाते उपलब्ध कराएं ताकि ऐसे खाते आबादी के बड़े हिस्से के लिए उपलब्ध हो सकें। ऐसा गुरुतर वित्तीय समावेशन के उद्देश्य से किया गया। ऐसे खातों में लेनदेनों की संख्या एवं स्वरूप को प्रतिबंधित किया जा सकता है, परंतु उसकी जानकारी ग्राहक को पारदर्शी तरीके से पहले से दी जा सकती है। बैंकों को यह भी सूचित किया गया कि वे पारदर्शी तरीके से सुविधाएं एवं प्रभार दर्शाते हुए, ऐसे 'नो-फ्रिल' खातों की सुविधा का अपने वेबसाइट सहित व्यापक प्रचार, करें। योजना लागू होने के दो वर्षों के भीतर उल्लेखनीय प्रगति हुई। दिसंबर 2007 के अंत तक, भारत में अनुसूचित वाणिज्य बैंकों ने लगभग 12.6 मिलियन 'नो-फ्रिल' खाते खोले (ब्यौरों के लिए अध्याय VII देखें)।

शहरी सहकारी बैंक

3.205 वित्तीय क्षेत्र संबंधी सुधार शुरू होने पर शहरी सहकारी बैंकों के लिए नई चुनौतियां सामने आईं। पहली, सुधार संबंधी उपायों से बैंकिंग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा काफी बढ़ गई। दूसरी, 1990 के दशक के शुरू में भारतीय बैंकिंग क्षेत्र में हुए संरचनागत परिवर्तन ने वित्तीय

संस्थाओं के बीच, विशेष रूप से अंतर-संस्थागत एक्सपोजरों एवं भुगतान तथा निपटान सरणियों के जरिए, परस्पर निर्भरता बढ़ा दी। सहकारी बैंकों की वित्तीय स्थिति में गिरावट आसानी से वित्तीय क्षेत्र के अन्य खंडों में फैल सकती थी, जिससे प्रणालीगत समस्या आ सकती थी। तदनुसार, 1993 में अच्छी तरह से अविनियमित युग तथा वाणिज्य बैंकिंग क्षेत्र में अधिक अविनियमित परिदृश्य शुरू होने के बाद, रिजर्व बैंक ने महसूस किया कि उसे शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र के कार्यनिष्पादन का जायजा लेना चाहिए। 1990 के दशक के मध्य में प्रवेश स्तर के न्यूनतर मानदंडों ने यूसीबी में काफी कमजोरी लाने में अंशदान किया। चूंकि यूसीबी भुगतान प्रणाली का अंग थे, उनकी कमजोरी का शेष वित्तीय प्रणाली पर गंभीर परिणाम हो सकता था। अतः एक विनियामक ढांचा बनाना जरूरी था ताकि सहकारी क्षेत्र को प्रतिस्पर्धी और लचीला बनाया जा सके। यह भी जरूरी समझा गया कि बैंकारी विनियमन अधिनियम के तहत रिजर्व बैंक द्वारा और संबंधित राज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियमों के तहत राज्य सरकारों द्वारा यूसीबी के द्वैध नियंत्रण की समस्याओं का समाधान ढूँढ़ा जाए।

3.206 तथापि, शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र को 2001 में बड़ा धक्का लगा, जब एक बड़े बहुराज्यीय बैंक की शाखाओं में इस गलतफहमी से भगदड़ मच गई कि एक ऐसे बड़े ब्रोकर के पास उसका बड़ा एक्सपोजर था, जिसे शेयर बाजार में बड़ा नुकसान उठाना पड़ा था। इस सहकारी बैंक के विफल होने का यूसीबी क्षेत्र पर बड़े पैमाने पर प्रभाव पड़ा। यहाँ तक कि बैंकिंग क्षेत्र की दृष्टि से भी, इसने प्रणालीगत जोखिम प्रस्तुत की क्योंकि इस बैंक के पास राज्य में तथा अन्य राज्यों से बड़ी संख्या में यूसीबी से प्राप्त लगभग 800 करोड़ रुपए की अंतर-बैंक जमाराशियां थीं। आम आदमी तथा अन्य सहकारी बैंकों के हितों की रक्षा करने के लिए रिजर्व बैंक ने इस बैंक को निदेश जारी कर कतिपय परिचालनों पर प्रतिबंध (नयी जमाराशियां स्वीकार करने, एक जमाकर्ता को 1000 रुपए तक भुगतान की सीमा लगाने तथा नये उधार पर पाबंदी) लगा दिया तथा सहकारी समितियों के केन्द्रीय रजिस्ट्रार, नई दिल्ली से मांग की कि वह निदेशक मंडल का अतिक्रमण कर एक प्रशासक नियुक्त करे। केन्द्र सरकार ने अल्प अवधि के लिए बैंक पर स्थगनादेश भी लागू कर दिया। बाद में रिजर्व बैंक के अनुमोदन से बैंक को पुनर्निर्माण की योजना के तहत लाया गया। यूसीबी के विफल होने की अगली घटना 2002 में आंध्र प्रदेश राज्य में हुई, जबकि राज्य के एक सबसे बड़े बैंक पर उस समय भगदड़ मच गया जब सहकारी समितियों के राज्य रजिस्ट्रार द्वारा बैंक के कार्यों की जांच करने संबंधी रिपोर्ट एक समाचार पत्र में आयी।

3.207 सहकारी बैंकों की असफलताओं ने सहकारी बैंकिंग प्रणाली पर उपयुक्त पर्यवेक्षण की आवश्यकता को सामने ला दिया। सभी यूसीबी

के लिए ओएसएस की स्थापना हेतु पहले उपाय के रूप में अप्रैल 2001 में अनुसूचित यूसीबी के लिए एक पर्यवेक्षणात्मक रिपोर्टिंग प्रणाली लागू की गई। पर्यवेक्षणात्मक प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने की दृष्टि से, परोक्ष निगरानी प्रणाली (ओएसएस) का विस्तार कर उसमें 50 करोड़ रुपए तथा अधिक जमा आकारवाले सभी गैर-अनुसूचित यूसीबी को शामिल कर लिया गया। मार्च 2002 के आरंभ से चरणबद्ध रूप में पूंजी पर्याप्तता मानदंड लागू किए गए।

3.208 मार्च 2002 को समाप्त वर्ष के दौरान यूसीबी क्षेत्र में जमा वृद्धि तेजी से गिरकर पिछले तीन साल की लगभग 25.7 प्रतिशत वृद्धि की तुलना में मार्च 2002 को समाप्त वर्ष में 15.1 प्रतिशत रह गई। संकट के बाद, जिसमें गुजरात और आंध्र प्रदेश के कुछ बड़े यूसीबी शामिल थे, यूसीबी क्षेत्र में जनता के विश्वास में आयी कमी गहरी गई और सहवर्ती तौर पर यूसीबी की स्थिति सामान्यतः खराब हो गई। यूसीबी की संख्या 2003 तक निरंतर बढ़ने के बाद 2004 में कम हो गई (2003 के 1941 से 1926)। बैंकिंग क्षेत्र (अनुसूचित वाणिज्य बैंक, आरआरबी और यूसीबी) की कुल जमाराशियों में उनका हिस्सा भी उल्लेखनीय रूप से कम हो गया (2003 के 6.3 प्रतिशत से 2004 में 5.8 प्रतिशत)। 30 जून 2004 को, 1919 में से 732 यूसीबी को ग्रेड III या IV में वर्गीकृत किया गया, जो उनकी कमजोरी एवं रुग्णता को सूचित करता है। प्रणालीगत जोखिमों की पहचान करते हुए तथा यूसीबी के ग्राहकवर्ग की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए, रिजर्व बैंक ने वर्ष 2004-05 के वार्षिक नीति वक्तव्य में नये यूसीबी बनाने के लिए नए लाइसेंस देना बंद करने के निर्णय की घोषणा की। अतः रिजर्व बैंक ने कोई नया शाखा लाइसेंस स्वीकृत न करने की घोषणा की। यह स्पष्ट किया गया कि इस क्षेत्र को नियंत्रित करने के लिए विधायी एवं विनियामक ढाँचा की व्यापक समीक्षा किए जाने तक यह जरूरी था। इस पृष्ठभूमि में यह निर्णय लिया गया कि एक ऐसी रूपरेखा तैयार करने के लिए एक विजन दस्तावेज का मसौदा तैयार किया जाए, जिससे इस क्षेत्र को सुदृढ़ बनाना सुकर होगा तथा जिससे यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों को ऋण देने हेतु सौंपी गई भूमिका अदा कर सके। रिजर्व बैंक ने इन बैंकों के लिए समस्त विधायी, विनियामक और पर्यवेक्षणात्मक ढांचे की समीक्षा की तथा मार्च 2005 में 'यूसीबी के लिए विजन दस्तावेज' का मसौदा तैयार किया।

3.209 उक्त 'विजन दस्तावेज' में शहरी सहकारी बैंकों को नवीकृत करने के लिए व्यावहारिक तथा कार्यान्वयन योग्य व्यवस्थाओं का एक नया ढाँचा प्रस्तुत किया गया। 'विजन दस्तावेज' में किए गए प्रस्ताव के अनुसार, रिजर्व बैंक ने समझौता ज्ञापन पर हस्तक्षर करने के लिए राज्य सरकारों / केन्द्र सरकार (बहुराज्यीय यूसीबी के लिए) से संपर्क किया ताकि यूसीबी के विनियमन और पर्यवेक्षण के लिए उत्तरदायी इन

दो एजेंसियों के बीच गुरुतर समन्वयन सुनिश्चित किया जा सके। समझौता ज्ञापन के अंग के रूप में, सहकारी शहरी बैंकों के लिए राज्य स्तरीय कार्य बल (टैफकब) के गठन का निर्णय लिया गया जिसमें रिजर्व बैंक, राज्य सरकार तथा यूसीबी के संघ शामिल होंगे। टैफकब को यह कार्य सौंपा गया कि वे अपने राज्यों के भीतर संभाव्य रूप से अर्थक्षम और गैर अर्थक्षम यूसीबी की पहचान करें तथा बैंकों के पहले सेट के लिए पुनर्जीवन का मार्ग और दूसरे के लिए बिना किसी विघटन के निकासी का मार्ग सुझाएं। निकासी के मार्ग में सुदृढ़ बैंकों के साथ विलय/समाभेदन, सोसाइटियों में रूपांतरण अथवा अंतिम उपाय के तौर पर परिसमापन हो सकता है। जून 2005 से, 19 राज्य सरकारों और केन्द्र सरकार (बहुराज्यीय यूसीबी के मामले में) के साथ समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए जा चुके हैं, जिनमें 1,597 यूसीबी अर्थात् इस क्षेत्र के 90 प्रतिशत बैंक और 95 प्रतिशत जमाराशियां शामिल हैं। रिजर्व बैंक के साथ एमओयू पर हस्ताक्षर करनेवाले राज्यों में समन्वित पर्यवेक्षण और विनियमन को ध्यान में रखते हुए, ऐसे राज्यों में पात्र बैंकों तथा बहुराज्यीय यूसीबी को कुछ व्यावसायिक अवसर उपलब्ध कराए गए। रिजर्व बैंक ऐसे राज्यों में पात्र बैंकों से अन्य बातों के साथ साथ अतिरिक्त कारोबारी अवसरों यथा करेंसी चेस्टों की स्थापना, विदेशी मुद्रा कारोबार के लिए प्राधिकृत डीलर लाइसेंस, म्यूचुअल फंडों की बिक्री तथा नये एटीएम खोलने के लिए प्राप्त अनुरोधों पर भी विचार करता है। वर्ष 2007-08 के वार्षिक नीति वक्तव्य में यह घोषणा की गई कि ऐसे राज्यों में वित्तीय रूप से सुदृढ़ बैंकों को नयी शाखाएं खोलने की भी अनुमति दी जाएगी, एक ऐसी सुविधा जो 2004 से यूसीबी को उपलब्ध नहीं थी। साथ ही, विलय संबंधी प्रस्तावों के लिए 'अनापत्ति' प्रदान करने के लिए पारदर्शी और वस्तुनिष्ठ दिशानिर्देश उपलब्ध कराकर सुदृढ़ संस्थाओं के साथ कमजोर संस्थाओं के विलय की प्रक्रिया के माध्यम से यूसीबी का समेकन शुरू कर दिया गया। सहकारी समितियों के केन्द्रीय रजिस्ट्रार/संबंधित सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार (सीआरसीएस / आरसीएस) द्वारा जारी सांविधिक आदेशों के जरिए कुल 53 विलय किए गए।

3.210 रिजर्व बैंक द्वारा शुरू किए गए विभिन्न उपायों से यूसीबी क्षेत्र में विश्वास को बहाल करने में मदद मिली, जो यूसीबी क्षेत्र के विभिन्न कारोबारी एवं वित्तीय स्वास्थ्य मानदंडों में परिलक्षित हुआ। यूसीबी के जमा और अग्रिम में, जिनमें मार्च 2005 को समाप्त वर्ष के दौरान क्रमशः 4.7 प्रतिशत और 1.6 प्रतिशत की ऋणात्मक वृद्धि हुई थी, मार्च 2006 को समाप्त वर्ष में सकारात्मक बदलाव आया (सारणी 3.43)।

3.211 उनकी आस्ति गुणवत्ता में भी सुधार आया। सकल अनर्जक आस्तियाँ, जो मार्च 2005 को समाप्त वर्ष में कुल अग्रिमों का 23.2 प्रतिशत थीं, मार्च 2007 के अंत तक कम होकर 17.0 प्रतिशत रह

सारणी 3.43 : शहरी सहकारी बैंकों की वृद्धि

(राशि करोड़ रुपये में)

वर्ष (अप्रैल मार्च)	यूसीबी की संख्या*	जमा	वृद्धि (प्रतिशत)	अग्रिम	वृद्धि (प्रतिशत)
1	2	3	4	5	6
1997-98	1,502	40,692	-	27,807	-
2000-01	1,618	80,840	25.7	54,389	25.1
2001-02	1,854	93,069	15.1	62,060	14.1
2002-03	1,941	1,01,546	9.1	64,880	4.5
2003-04	1,926	1,10,256	8.6	67,930	4.7
2004-05	1,872	1,05,021	-4.7	66,874	-1.6
2005-06	1,853	1,14,069	8.6	71,641	7.1
2006-07अ	1,813	1,20,983	6.1	78,660	9.8

*: संबंधित वर्ष में मार्च के अंत में।
अ : अर्न्तम

गई। कुल यूसीबी में ग्रेड III और IV के यूसीबी, जो कमजोरी और रुग्णता को सूचित करते हैं, का हिस्सा भी कम हो गया (सारणी 3.44)।

ग्राहक सेवा और वित्तीय साक्षरता

3.212 ग्राहक सेवा में सुधार लाने के लिए रिजर्व बैंक ने समय समय पर विभिन्न उपाय शुरू किए। रिजर्व बैंक के विभिन्न कार्यालयों में बैंकिंग लोकपाल की स्थापना इस संबंध में एक प्रमुख नीतिगत पहल थी। स्थापित सर्वोत्तम प्रथाओं पर आधारित संहिताओं और मानकों के प्रति बैंकों के कार्यनिष्पादन को मापने में आनेवाले संस्थागत अंतराल को स्वीकार करते हुए, रिजर्व बैंक ने 2005-06 के अपने वार्षिक नीति वक्तव्य में भारतीय बैंकिंग कोड और मानक बोर्ड (बीसीएसबीआई) की स्थापना की घोषणा की। इसकी स्थापना एक स्वायत्त और स्वतंत्र निकाय के रूप में की गई तथा इसने एक स्वविनियामक संगठन का रूप ले लिया। बीसीएसबीआई ने बोर्ड के सदस्य के रूप में उसके साथ बैंकों

सारणी 3.44 : शहरी सहकारी बैंकों का श्रेणीकरण

(मार्च के अंत में)

यूसीबी का प्रकार	यूसीबी की संख्या			
	2004*	2005	2006	2007
1	2	3	4	5
श्रेणी I	880	807	716	652
श्रेणी II	307	340	460	598
श्रेणी III	529	497	407	295
श्रेणी IV	203	228	270	268
कुल	1919	1872	1853	1813
<i>जापन:</i>				
सभी यूसीबी के प्रतिशत के रूप में				
श्रेणी III और IV	38.1	38.7	36.5	31.1

*: जून के अंत में

के ऐच्छिक पंजीकरण का प्रावधान किया तथा सहमत मानकों एवं संहिताओं के अनुसार ग्राहक सेवा प्रदान करने के प्रति वचनबद्धता दर्शायी। बदले में बोर्ड ने बैंकों द्वारा सहमत संहिताओं और मानकों के साथ अनुपालन पर निगरानी रखी और आकलन किया। बोर्ड ने बैंकिंग सेवाओं के न्यूनतम मानक के लिए ढांचा प्रदान करने हेतु जुलाई 2006 में ग्राहकों के प्रति बैंक की वचनबद्धता का एक कोड जारी किया। उक्त कोड न सिर्फ ग्राहकों के प्रति बैंकों की वचनबद्धता था, अपितु एक मामले में बैंक के प्रति आम जनता का अधिकार पत्र था। अक्टूबर 2007 के अंत में, सदस्य बनने के इच्छुक बीसीएसबीआई के साथ पंजीकृत 74 अनुसूचित वाणिज्य बैंकों में से, 70 बैंकों ने, जिनके पास भारतीय बैंकिंग प्रणाली की कुल देशी आस्तियों का 98 प्रतिशत था, सदस्य के रूप में नामांकन कराया।

3.213 रिजर्व बैंक तथा पूरी बैंकिंग प्रणाली द्वारा प्रदान की जा रही ग्राहक सेवा को रिजर्व बैंक द्वारा दिए जा रहे महत्व का उपयुक्त संकेत देते हुए, रिजर्व बैंक के विभिन्न विभागों द्वारा किये जाने वाले ग्राहक सेवा संबंधी विभिन्न कार्यक्रमों को एक विभाग में समूहित करके 1 जुलाई 2006 को रिजर्व बैंक में ग्राहक सेवा विभाग बनाया गया। विभाग के कार्यक्रमों में रिजर्व बैंक तथा बैंकिंग क्षेत्र में ग्राहक सेवा तथा शिकायत निवारण संबंधी विभिन्न कार्यक्रमों, बैंकिंग लोकपाल योजना तथा भारतीय बैंकिंग कोड और मानक बोर्ड सहित, शामिल हैं। इस प्रकार की संगठनात्मक व्यवस्था से बैंकिंग क्षेत्र में ग्राहक सेवा के प्रति अधिक नीतिगत ध्यान देने में मदद मिली है।

3.214 बैंक जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा करने के अलावा, रिजर्व बैंक यह भी सुनिश्चित करना चाहता था कि उधारकर्ता वर्ग को भी बैंकों से उचित व्यवहार मिले। तदनुसार, रिजर्व बैंक ने उधारकर्ताओं के लिए उचित प्रथा कोड बनाया, जिसकी जानकारी बैंकों को 2003 में दे दी गई थी ताकि उधारकर्ताओं के उचित हितों की रक्षा की जा सके और उन्हें ऋणदाताओं द्वारा अनुचित उत्पीड़न से बचाया जा सके। उक्त कोड को मार्च 2007 में संशोधित किया गया और उसमें ऐसी अपेक्षाएं शामिल की गई कि बैंकों को उधारकर्ताओं को ऋण संबंधी व्यापक ब्यौरे तथा भावी उधारकर्ताओं के ऋण आवेदन अस्वीकार किये जाने के कारण प्रस्तुत करने चाहिए, चाहे ऋण की राशि या प्रकार कुछ भी हो। इसी तरह, भारतीय बैंक संघ ने क्रेडिट कार्ड परिचालनों के लिए उचित प्रथा कोड, प्रत्यक्ष बिक्री एजेंटों के लिए आदर्श आचार संहिता, तथा देयराशियों की वसूली एवं प्रतिभूति के पुनर्ग्रहण के लिए आदर्श संहिता तैयार थी।

3.215 वित्तीय समावेशन पर अधिक ध्यान दिए जाने तथा कृषक समुदायों के कुछ घटकों में देखे गये वित्तीय संकट की विगत घटनाओं के संदर्भ में, इस बात की जरूरत भी महसूस की गई कि वित्तीय साक्षरता

तथा बैंकिंग सेवाएं लेने वालों के बीच वित्तीय शिक्षा का स्तर सुधारने का उपाय तैयार किया जाए। उपभोक्ता ऋण और आवास ऋण में तीव्र वृद्धि को देखते हुए भारत में इस मुद्दे पर तुरंत ध्यान देने की जरूरत हुई। ऐसी स्थिति में, आय में गिरावट को रोकने तथा ऋण के पुनर्विन्यास के बारे में अच्छी सलाह देकर ऋण परामर्श के जरिए उधारकर्ताओं को सार्थक समाधान दिया जा सकता है तथा इससे वे धीरे-धीरे अपना ऋण भार कम कर सकेंगे तथा मुद्रा प्रबंधन संबंधी कौशल में सुधार ला सकेंगे। बैंकों को अपने ग्राहकों को वित्तीय शिक्षा प्रदान करने के क्षेत्र में भूमिका निभानी थी क्योंकि उधारकर्ताओं को समय पर परामर्श दिए जाने का बैंकों की आस्ति गुणवत्ता पर सकारात्मक असर पड़ सकता है। अब कुछ बैंकों ने ऋण परामर्श केंद्रों की स्थापना कर दी है। रिजर्व बैंक द्वारा किए गए विभिन्न पहलों से ग्राहक सेवा में गुणात्मक सुधार हुआ है।

प्रौद्योगिकी

3.216 उत्पादकता में सुधार लाने और दक्ष ग्राहक सेवा प्रदान करने की रणनीति के तौर पर बैंकों ने प्रौद्योगिकी की पहचान एक महत्वपूर्ण तत्त्व के रूप में की। भारतीय बैंक संघ (आइबीए) तथा कर्मचारियों के बीच हुए करार के अनुसरण में 1990 के दशक के आरंभ में बैंकों के परिचालनों का कंप्यूटरीकरण बड़े पैमाने पर शुरू हुआ। कुछ सालों में प्रौद्योगिकी के उपयोग में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। शाखाओं का कंप्यूटरीकरण तथा एटीएम की स्थापना ऐसे दो क्षेत्र थे, जिनमें प्रौद्योगिकी का उपयोग स्पष्ट दिखाई दे रहा था। सरकारी क्षेत्र के बैंकों का अधिकांश बैंकिंग कारोबार धीरे-धीरे कंप्यूटरीकृत हो गया। तथापि, इनमें से अधिकांश प्रयास स्टैंडअलोन आधार पर किए गए। अतः ऐसा महसूस किया गया कि बैंकों की शाखाओं के आंतरिक कंप्यूटरीकरण तथा कोर

सारणी 3.45 : सरकारी क्षेत्र के बैंकों का कंप्यूटरीकरण

(प्रतिशत)

वर्ग	2005	2006	2007
1	2	3	4
पूर्णतः कंप्यूटरीकृत शाखाएं	71.0	77.5	85.6
i) कोर बैंकिंग समाधान के तहत आने वाली शाखाएं	11.0	28.9	44.4
ii) पहले से पूर्णतः कंप्यूटरीकृत शाखाएं #	60.0	48.5	41.2
आंशिक रूप से कंप्यूटरीकृत शाखाएं	21.8	18.2	13.4
# : कोर बैंकिंग समाधान के तहत आने वाली शाखाओं से इतर			

बैंकिंग प्रणालियों (सीबीएस) के जरिए उनकी इंटर-कनेक्टिविटी की गति बढ़ाने की जरूरत है। सभी सीबीएस शाखाएं एक दूसरे से अंतःसंबद्ध होती हैं, जिससे ग्राहक को सीबीएस नेटवर्क पर बैंक की किसी भी शाखा से अपना खाता परिचालित करने तथा बैंकिंग सेवाएं प्राप्त करने में मदद मिलती है, चाहे उसने अपना खाता कहीं भी क्यों न रखा हो। इससे सेवा की गुणवत्ता और दक्षता में सुधार आता है। अतः बैंकों से 2002 में यह अनुरोध किया गया कि वे समयबद्ध आधार पर शाखाओं के कंप्यूटरीकरण एवं उनकी नेटवर्किंग पर विशेष ध्यान दें। मार्च 2007 के अंत तक, लगभग 86 प्रतिशत शाखाएं पूर्णतः कंप्यूटरीकृत हो गईं, जिनमें से आधी से थोड़ी अधिक शाखाएं कोर बैंकिंग समाधान के अधीन ला दी गईं (सारणी 3.45)।

3.217 हाल के वर्षों में एटीएम के उपयोग में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। मार्च 2005 के अंत तथा मार्च 2007 के अंत के बीच ऑनसाइट एटीएम की संख्या लगभग दुगुनी हो गई। ऑफसाइट एटीएम की संख्या भी बढ़ी है। शाखाओं के प्रति एटीएम के अनुपात में भी हाल के वर्षों में उल्लेखनीय सुधार हुआ है (सारणी 3.46)।

सारणी 3.46 : अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के एटीएम (मार्च के अंत में)

बैंक समूह	2005			2006			2007		
	एटीएम की संख्या			एटीएम की संख्या			एटीएम की संख्या		
	ऑन-साइट	ऑफ-साइट	कुल	ऑन-साइट	ऑफ-साइट	कुल	ऑन-साइट	ऑफ-साइट	कुल
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
राष्ट्रीयकृत बैंक	3205	1567	4772	4812	2353	7165	6634	3254	9888
स्टेट बैंक समूह	1548	3672	5220	1775	3668	5443	3655	2786	6441
निजी क्षेत्र के पुराने बैंक	800	441	1241	1054	493	1547	1104	503	1607
निजी क्षेत्र के नये बैंक	1883	3729	5612	2255	3857	6112	3154	5038	8192
विदेशी बैंक	218	579	797	232	648	880	249	711	960
कुल	7654	9988	17642	10128	11019	21147	14796	12292	27088
ज्ञापन :									
शाखाओं के प्रतिशत के रूप में एटीएम			32.8			38.6			47.5

3.218 भुगतान प्रणालियों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए, भुगतान और निपटान प्रणालियों में दक्षता लाने के लिए कई पहलें की गईं। इलेक्ट्रॉनिक भुगतान प्रणाली की जोखिम को कम करने के लिए तत्काल सकल निपटान (आरटीजीएस) तथा राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक निधि अंतरण (एनईएफटी) के कार्यान्वयन ने क्रेडिट-पुश आधार पर वास्तविक समय/ वास्तविक से निकट समय के आधार पर निधियों की प्राप्ति को समर्थ बनाया। हाल के वर्षों में मात्रा और मूल्य दोनों के रूप में इलेक्ट्रॉनिक लेनदेनों की मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है (सारणी 3.47)। भारत में आरटीजीएस सिस्टम का विस्तार अन्य देशों की तुलना में बहुत तेजी से हुआ।

3.219 प्रौद्योगिकी ने कोर बैंकिंग और इंटरनेट बैंकिंग जैसे नए उत्पादों और सेवाओं का विकास कर नवोन्मेष लाने में बैंकों की मदद की। आइटी ने बैंकों और ग्राहकों दोनों के लिए लगभग तत्काल सूचना प्रोसेसिंग की क्षमताएं प्रदान करने के अलावा लेनदेन की बड़ी मात्राओं को निपटाने तथा ग्राहक की बदलती प्रत्याशाओं के अनुरूप अनुकूलन करने में भी मदद की। प्रौद्योगिकी ने अन्य बातों के साथ-साथ प्रतिस्पर्धा, उत्पादकता और परिचालनगत दक्षता तथा बेहतर आस्ति/देयता प्रबंधन की शुरुआत कर बैंकिंग क्षेत्र में तेजी से रूपांतरण सुनिश्चित किया। आरटीजीएस प्लैटफॉर्म के जरिए प्रभावी निधि प्रवाह ने भी बैंकों द्वारा नकदी प्रबंधन में काफी मदद की।

3.220 प्रौद्योगिकी ने कुछ चुनौतियां भी प्रस्तुत कीं। इंटरनेट से ऑनलाइन लेनदेन करने की संभावना ने इस सुविधा के दुरुपयोग का खतरा बैंकों के लिए बढ़ा दिया है। उस मुद्दे के समाधान के लिए बैंकों ने उपयुक्त सुरक्षोपाय और प्रक्रियाएं अपनायी हैं ताकि रिजर्व बैंक द्वारा जारी दिशानिर्देशों के आधार पर ग्राहकों की पहचान की जा सके। इसी तरह, प्रौद्योगिकी ने व्यावसायिक सातत्य के रूप में चुनौती प्रस्तुत की है। अतः बैंकों ने नियमित और आवधिक रूप से आपदा उद्धार अभ्यास (डीआर) किया। इस संबंध में, रिजर्व बैंक ने बैंकों द्वारा अनुसरण किए जाने के लिए सामान्य न्यूनतम अपेक्षाएं सूचित कीं, जो सभी नई आइटी आधारित प्रणालियों एवं सुपुर्दगी चैनलों के लिए लागू थीं।

3.221 सुधार के पिछले 15 वर्षों के दौरान, भारतीय बैंकिंग क्षेत्र में कुछ गतिशील परिवर्तन आए हैं (बॉक्स III.3)।

3.222 सारांश के तौर पर सुधार के दूसरे चरण के लगभग 10 वर्षों के बाद भारतीय बैंकिंग क्षेत्र की संरचना में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। इस उप-चरण के मुख्य मुद्दे इस प्रकार थे - (i) अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं के अनुरूप विवेकपूर्ण मानदंडों को सुदृढ़ बनाना तथा साथ ही यह सुनिश्चित करना कि जोखिम से विरुचि की प्रवृत्ति गंभीर न होने पाए (ii) कृषि और एमएमई को ऋण का प्रवाह बढ़ाना, (iii) बहिष्कृत आबादी के बड़े खंड को बैंकिंग क्षेत्र की परिधि के भीतर लाना; (iv) कारपोरेट अभिशासन प्रथाओं को सुदृढ़ करना, (v) शहरी सहकारी बैंकों को सुदृढ़ करना तथा द्वैध नियंत्रण के मुद्दे के सुलझाना; तथा (vi) ग्राहक सेवा में सुधार लाना। सभी क्षेत्र में, उल्लेखनीय सुधार हुआ। यद्यपि बैंकिंग क्षेत्र को सुदृढ़ बनाने के प्रयास 1990 के दशक के आरंभ में शुरू किए गए, तथापि लागू किए गए मानदंड अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं के अनुरूप नहीं थे। साथ ही, विवेकपूर्ण मानदंड लागू किए जाने के साथ, बैंकों में जोखिम से विरुचि की प्रवृत्ति पैदा हो गई। अतः विवेकपूर्ण मानदंड सुदृढ़ करते हुए संस्थागत व्यवस्थाएं की गईं ताकि बैंक अपनी देय राशियों की वसूली शीघ्रता से कर सकें। शुरू किए गए विभिन्न उपायों का सकारात्मक प्रभाव पड़ा क्योंकि इससे बैंकों के एनपीएल में अवरुद्ध बड़ी राशियां वसूलने में मदद मिली। अतः बैंकों ने धीरे-धीरे जोखिम से विरुचि की प्रवृत्ति को छोड़ दिया तथा 2004-05 से ऋण में तीव्र वृद्धि शुरू हो गई। बैंकों के एनपीएल का स्तर धीरे-धीरे कम होकर विश्व स्तर पर आ गया; उनका सकल एनपीए मार्च 1997 के अंत के 15.4 प्रतिशत से कम होकर मार्च 2007 के अंत में 2.5 प्रतिशत रह गया। यह इस चरण की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की आस्तियों पर औसत प्रतिलाभ में यथापरिलक्षित उनकी लाभप्रदता में और सुधार हुआ, यद्यपि यह थोड़ा था और यह 1997-98 के 0.8 प्रतिशत से बढ़कर 2006-07 में 0.9 प्रतिशत हो गया। यह उल्लेखनीय था क्योंकि इस चरण में प्रतिस्पर्धा तेज हो गई जो विलय एवं अधिग्रहण संबंधी कार्यकलापों में

सारणी 3.47 : कागज़ आधारित बनाम इलेक्ट्रॉनिक लेनदेन

(मात्रा हजार में तथा मूल्य करोड़ रुपये में)

वर्ष	मात्रा				मूल्य			
	कागज़ आधारित	इलेक्ट्रॉनिक	कुल	इलेक्ट्रॉनिक का हिस्सा (%)	कागज़ आधारित	इलेक्ट्रॉनिक	कुल	इलेक्ट्रॉनिक का हिस्सा (%)
1	2	3	4	5	6	7	8	9
2003-04	10,22,800	1,67,554	11,90,354	14.1	1,15,95,960	49,67,811	1,65,63,771	30.0
2004-05	11,66,848	2,30,045	13,96,893	16.5	1,04,58,895	1,18,86,254	2,23,45,149	53.2
2005-06	12,86,758	2,87,489	15,74,247	18.3	1,13,29,134	2,24,39,287	3,37,68,420	66.5
2006-07	13,67,280	3,83,443	17,50,723	21.9	1,20,42,426	3,50,50,234	4,70,92,660	74.4

बॉक्स III.3

बैंकिंग क्षेत्र के प्रमुख सुधार - 1991-92 तथा उसके बाद

नीतिगत सुधार

- आय निर्धारण, अस्ति वर्गीकरण, प्रावधानीकरण और पूंजी पर्याप्तता संबंधी विवेकपूर्ण मानदंड अप्रैल 1992 में चरणबद्ध तरीके से लागू किए गए।
- जनवरी 1993 में निजी क्षेत्र के बैंकों के प्रवेश के बारे में दिशानिर्देश जारी किए गए।
- बीएफएस ने 'शीघ्र चेतावनी प्रणाली' (ईडब्ल्यूएस) के लिए संकट प्रबंधन ढांचे के भाग के रूप में तथा सुभेद्य संस्थाओं के प्रत्यक्ष निरीक्षण के लिए उत्प्रेरक के रूप में नवंबर 1995 में बैंकों के लिए एक कंप्यूटरीकृत अप्रत्यक्ष निगरानी और चौकसी (ऑसमॉस) प्रणाली शुरू की।
- जनवरी 1993 से एसएलआर में चरणबद्ध कटौती शुरू की गई। एसएलआर को फरवरी 1992 के 38.5 प्रतिशत की सर्वोच्च दर से क्रमिक रूप से कम कर अक्टूबर 1997 तक 25.0 प्रतिशत के सांविधिक न्यूनतम स्तर तक लाया गया।
- सीआरआर को अप्रैल 1993 के 15 प्रतिशत के सर्वोच्च स्तर से क्रमिक रूप से घटाकर जून 2003 तक 4.5 प्रतिशत के स्तर तक लाया गया। बाद में चरणों में बढ़ाकर 30 अगस्त 2008 से सीआरआर को 9.0 प्रतिशत कर दिया गया।
- अनन्य रूप से पर्यवेक्षणात्मक कार्य देखने तथा बैंकिंग प्रणाली, वित्तीय संस्थाओं, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों और अन्य परा-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों पर समन्वित तरीके से कारगर पर्यवेक्षण लागू करने के लिए रिजर्व बैंक के भीतर जुलाई 1994 में वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड (बीएफएस) की स्थापना की गई।
- आरंभ में ब्याज दर संबंधी विनिर्देशों और स्लैबों की संख्या को सरल बनाकर तथा बाद में ब्याज दरों को अविनियमित कर अप्रैल 1993 से उधार ब्याज दरों को युक्तियुक्त बनाने का कार्य शुरू किया गया। बचत जमाराशियों तथा एफसीएनआर (बी) से इतर जमा ब्याज दरों को पूर्णतः अविनियमित कर दिया गया (ब्यौरों के लिए बॉक्स III.2 देखें)।
- जून 1995 में बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 के उपबंधों के तहत बैंकिंग लोकपाल योजना लागू की गई।
- अधिकतम अनुमेय बैंक वित्त (एमपीबीएफ) को अप्रैल 1997 से समाप्त कर दिया गया।
- बैंकों के पूंजी आधार को सुदृढ़ करने के लिए, बैंकों के लिए जोखिम भारित आस्तियों के प्रति पूंजी अनुपात को 31 मार्च 2000 को समाप्त वर्ष से 8 प्रतिशत से बढ़ाकर 9 प्रतिशत कर दिया गया।
- बैंकिंग क्षेत्र में विदेशी निवेश को उदार बनाने की दृष्टि से, सरकार ने रिजर्व बैंक द्वारा जारी दिशानिर्देशों के अधीन निजी क्षेत्र के बैंकों में एफडीआइ की सीमा, एफआइआइ द्वारा किए जानेवाले निवेश सहित, स्वचालित मार्ग के तहत बढ़ाकर 2001 में 49 प्रतिशत तथा मार्च 2004 में और बढ़ाकर 74 प्रतिशत कर दी।
- भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सहमत मानकों और कूटों के अनुसार ग्राहक सेवाएं प्रदान करने के लिए वचनबद्ध बैंकों के ऐच्छिक पंजीकरण हेतु स्वनियामक संगठन के दृष्टिकोण को अपनाते हुए भारतीय बैंकिंग कोड और मानक बोर्ड (बीसीएसबीआइ) नामक एक स्वायत्त और स्वतंत्र निकाय की स्थापना की गई।
- निजी क्षेत्र के बैंकों में नियंत्रण के लिए फरवरी 2005 में एक व्यापक नीतिगत ढांचा तैयार किया गया ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि (i) अंतिम स्वामित्व और नियंत्रण अच्छी तरह विशाखीकृत है; (ii) महत्वपूर्ण शेयरधारक

'उपयुक्त और उचित' हैं; (iii) निदेशक तथा सीईओ 'उपयुक्त और उचित' हैं तथा सुदृढ़ कंपनी नियंत्रण सिद्धांतों का अनुपालन करते हैं; (iv) निजी क्षेत्र के बैंक इष्टतम परिचालनों तथा प्रणालीगत स्थिरता के लिए न्यूनतम पूंजी रखते हैं; तथा (v) नीति और प्रक्रियाएं पारदर्शी तथा उचित हैं।

- भारत में विदेशी बैंकों की उपस्थिति के लिए फरवरी 2005 में रोडमैप तैयार किया गया।
- शहरी सहकारी बैंकों पर द्वैध नियंत्रण की समस्या को दूर करने के लिए मार्च 2005 में शहरी सहकारी बैंकों के लिए राज्यस्तरीय कार्यबल (टीएफसीयूबी) की प्रक्रिया तैयार की गई जिसमें रिजर्व बैंक, राज्य सरकार तथा शहरी सहकारी बैंकों के फेडरेशन/संघ के प्रतिनिधि शामिल किए गए।
- अप्रैल 2004 में जोखिम आधारित पर्यवेक्षण (आरबीएस) नामक दृष्टिकोण का आरंभ सहयोगी आधार पर किया गया जिसके तहत प्रत्येक संस्था के जोखिम प्रोफाइल के अनुसार उस पर निगरानी की जाती है।
- नवंबर 2005 में बैंकों को सूचित किया गया कि वे शून्य अथवा कम न्यूनतम शेष राशि सहित 'नो फ्रिल्स' खाते की सुविधा आरंभ करें।
- जनवरी 2006 में, बैंकों को अनुमति दी गई कि वे व्यवसाय सुसाध्यकर्ता (बीएफ) तथा व्यवसाय संपर्की (बीसी) मॉडल का उपयोग कर वित्तीय और बैंकिंग सेवाएं प्रदान करने में मध्यस्थों के रूप में गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ/एसएचजी), व्यक्ति वित्त संस्थाओं और अन्य सिविल सोसाइटी संगठनों की सेवाओं का उपयोग कर सकते हैं।

विधिक सुधार

- बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को देय ऋणों की वसूली अधिनियम 1993 में बनाया गया जिसके तहत अनर्जक ऋणों की वसूली तथा त्वरित अधिनिर्णयन के लिए न्यायाधिकरणों की स्थापना के लिए प्रावधान किया गया। उक्त अधिनियम बनाए जाने पर कई स्थानों पर ऋण वसूली न्यायाधिकरणों (डीआरटी) की स्थापना की गई।
- जनता से निधियां जुटाने के लिए सीधे पूंजी बाजार में पहुंचने की अनुमति सरकारी क्षेत्र के बैंकों को देने के लिए, अक्टूबर 1993 में एक अध्यादेश जारी कर भारतीय स्टेट बैंक अधिनियम, 1955 को संशोधित किया गया ताकि भारतीय स्टेट बैंक आंशिक निजी शेयरधारिता के प्रावधान की व्याप्ति को बढ़ा सके।
- बैंककारी कंपनी (उपक्रमों का अभिग्रहण और अंतरण) अधिनियम, 1970/80 में संशोधन किए गए ताकि राष्ट्रीयकृत बैंकों को पूंजी बाजार में पहुंचने की अनुमति मिल सके, जो इस शर्त के अधीन होगा कि सरकारी स्वामित्व राष्ट्रीयकृत बैंक की इक्विटी का कम से कम 51 प्रतिशत पर बना रहेगा।
- वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन (सरफेसी) अधिनियम, 2002 मार्च 2002 में अधिनियमित किया गया।
- जून 2006 में भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 42 में संशोधन कर सीआरआर पर अधिकतम सीमा (20 प्रतिशत) और न्यूनतम सीमा (3 प्रतिशत) को समाप्त कर दिया गया।
- जनवरी 2007 में बैंककारी विनियमन अधिनियम की धारा 24 में संशोधन कर बैंकों द्वारा सांविधिक रूप से धारित किए जानेवाले एसएलआर पर 25 प्रतिशत की न्यूनतम सीमा समाप्त कर दी गई।

हुई वृद्धि तथा निवल ब्याज मार्जिन में आई कमी में दिखाई देता है। प्रतिस्पर्धा में वृद्धि के बावजूद अन्य बातों के साथ-साथ (क) एनपीए में तीव्र गिरावट (ख) ऋण की मात्रा में वृद्धि के कारण लाभप्रदता में सुधार हुआ। एक प्रतिस्पर्धी वातावरण में अपनी लाभप्रदता में सुधार लाने के लिए बैंकों ने अपने कार्यकलापों को अधिकाधिक विशाखीकृत भी किया। इससे, बदले में, बैंकों की अगुवाई वाले समूहों - वित्तीय संगुटों का उदय हुआ। बैंकों का पूंजी-पर्याप्तता अनुपात भी मार्च 1997 के अंत के 8.7 से बढ़कर मार्च 2007 के अंत में 12.9 प्रतिशत हो गया। अलग-अलग बैंकों के स्तर पर, अधिकांश बैंकों का सीआरएआर 10 प्रतिशत, अर्थात्, निर्धारित लक्ष्य से अधिक था, जो अपने आप में अंतरराष्ट्रीय मानदंड से उच्चतर था। इस प्रकार 1990 के दशक के आरंभ में शुरू किए गए सुधारों का प्रभाव इस चरण में स्पष्ट दिखाई देने लगा जब भारतीय बैंकिंग क्षेत्र प्रतिस्पर्धी, लाभप्रद और सुदृढ़ हो गया।

3.223 इस चरण में, भारत में बैंकों में कंपनी अभिशासन प्रथाओं संबंधी दो प्रमुख चिंताएं उत्पन्न हुईं। ये स्वामित्व के संकेंद्रण तथा बैंक को नियंत्रित करने वाले प्रबंधन की गुणवत्ता से संबंधित थीं। अतः उपयुक्त मानदंड बनाए गए ताकि स्वामित्व का विशाखीकरण और स्वामियों एवं निदेशकों द्वारा 'उपयुक्त और उचित' मानदंड पूरा किया जाना सुनिश्चित किया जा सके।

3.224 1990 के दशक में तथा वर्तमान दशक के आरंभिक वर्षों में एसएमई और कृषि क्षेत्र को ऋण में कमी आयी। दोनों क्षेत्रों के महत्व को देखते हुए, सरकार तथा रिजर्व बैंक ने इन क्षेत्रों को ऋण का प्रवाह बढ़ाने के लिए समंजित प्रयास किए। फलस्वरूप, बैंकों द्वारा कृषि एवं एसएमई को उधार देने में गिरावट की प्रवृत्ति बदल गई। कृषि को ऋण में हुई तीव्र वृद्धि ने कृषि की ऋण गहनता में तीव्र वृद्धि की। आरआरबी का विलय राज्य स्तर पर प्रायोजक बैंकवार करके उनका पुनर्विन्यास करने से वे ग्रामीण ऋण सुपुर्दगी के बेहतर साधन के रूप में कार्य करने के लिए अधिक व्यापक और अधिक सुदृढ़ हो गए। हाल के वर्षों में एसएमई को ऋण वृद्धि भी तेज हो गई, यद्यपि 2007 में कुल बैंक ऋण में एसएमई क्षेत्र को दिए गए ऋण का हिस्सा तथा एसएमई क्षेत्र की ऋण गहनता 1991 की तुलना में काफी कम थी।

3.225 कुछ वर्षों में बैंकिंग क्षेत्र द्वारा की गई तीव्र प्रगति के बावजूद, कम आय वाली आबादी का एक बड़ा भाग बैंकिंग प्रणाली के बाहर बना रहा। अतः बैंकों से अनुरोध किया गया कि वे शून्य या न्यूनतम शेष के साथ 'नो फ्रिल्स' खाते खोलें। इसका उल्लेखनीय सकारात्मक असर पड़ा क्योंकि बैंकों ने 2 वर्ष की अल्प अवधि में वित्तीय रूप से निष्कासित काफी अधिक जनता को (लगभग 13 मिलियन) अपने दायरे में लिया। यूसीबी क्षेत्र में विश्वास समाप्त होना इस उप-चरण का एक और मुद्दा

था। इस प्रकार यूसीबी के बारे में मुख्य चुनौती थी - यूसीबी क्षेत्र में विश्वास को बहाल करना तथा द्वैध नियंत्रण की समस्या को दूर करना। रिजर्व बैंक, राज्य सरकार तथा यूसीबी के संघ के प्रतिनिधियों को शामिल कर शहरी सहकारी बैंकों के संबंध में कार्यबल (टैफकब) की प्रक्रिया अपनायी गई ताकि संबंधित राज्य में संभाव्य रूप से अर्थक्षम और गैर अर्थक्षम यूसीबी की पहचान की जा सके और पहले के लिए पुनर्जीवन का मार्ग तय किया जा सके और यूसीबी के दूसरे सेट के लिए अविघटनात्मक रूप से समाप्ति का उपाय किया जा सके। अब तक टैफकब का गठन करते हुए 19 राज्य सरकारों के साथ समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किया जा चुका है। यूसीबी क्षेत्र में विश्वास को बहाल किया गया जो 2004-05 की ऋणात्मक वृद्धि की प्रवृत्ति को पलटते हुए हाल के वर्षों में जमा दरों की सकारात्मक वृद्धि में दिखाई देता है। यूसीबी क्षेत्र की समग्र गुणवत्ता में भी सुधार हुआ, जो कुल यूसीबी में से ग्रेड III तथा IV यूसीबी (जो कमजोरी/रुग्णता का सूचक है) की संख्या में आई कमी से स्पष्ट है।

3.226 इस चरण में प्रौद्योगिकी के उपयोग में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। सरकारी क्षेत्र के बैंकों की अनेक शाखाओं (कुल शाखाओं के 86 प्रतिशत) को कंप्यूटरीकृत किया गया, जिसमें से लगभग आधी मूल बैंकिंग समाधान के तहत लाई गईं। संस्थापित एटीएम की संख्या में भी वृद्धि हुई। इससे बैंकों को ग्राहक सेवा सुधारने में मदद मिली। इलेक्ट्रॉनिक भुगतान संबंधी लेनदेनों के उपयोग में भी तीव्र वृद्धि हुई। एक विशिष्ट प्रक्रिया भी बनाई गई ताकि ग्राहक सेवा के लिए अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम कूट और मानक के प्रति बेंचमार्क तैयार किया जा सके। कुल मिलाकर इस चरण के अंत तक बैंकिंग क्षेत्र में व्यापक रूपांतरण हुआ तथा वह कम लाभप्रदता, कमजोर पूंजी आधार, खराब आस्ति गुणवत्ता से बदल कर लाभप्रद, सुदृढ़ पूंजीयुक्त और उच्च आस्ति गुणवत्ता की श्रेणी में आ गया।

VI. सारांश

3.227 भारतीय बैंकिंग क्षेत्र का निरंतर विकास हो रहा है। आरंभिक चरण (1947 तक) बैंकिंग क्षेत्र के लिए कठिन अवधि रहा है। बड़ी संख्या में बैंक आ गए क्योंकि उनके लिए प्रवेश संबंधी कोई मानदंड नहीं थे। इस चरण में स्वदेशी आंदोलन के कारण कई भारतीय बैंकों की स्थापना हुई, जिनमें से अधिकांश अभी भी कार्य कर रहे हैं। इस चरण में, जिसके दौरान दो विश्व युद्ध हुए तथा महान मंदी आई, कई बैंक विफल हुए। अधिकांश छोटे बैंक स्थानीय स्वरूप के थे तथा उनका पूंजी आधार कम था। फलस्वरूप, उनमें पर्याप्त लचीलापन नहीं था। छोटे बैंकों की विफलता के वैश्विक कारणों के अलावा एक प्रमुख कारण यह भी था कि निदेशकों और प्रबंधकों द्वारा धोखाधड़ी की जाती

थी तथा अंतर-संबद्ध उधार दिए जाते थे। साथ ही, विफल हुए कई बैंकों ने बैंकिंग कार्यों के साथ ट्रेडिंग संबंधी कार्यों को जोड़ रखा था। अंशतः, बैंक विफलता की समस्या का समाधान करने के लिए 1935 में रिजर्व बैंक की स्थापना की गई। वस्तुतः, अमरीका सहित कई अन्य देशों में बैंक विफलता की समस्या का समाधान करने के लिए भी केंद्रीय बैंकों की स्थापना की गई। तथापि, बैंकों पर रिजर्व बैंक का सीमित नियंत्रण था और उपयुक्त विनियामक ढांचे के अभाव ने छोटे बैंकों के कारगर विनियमन की समस्या उत्पन्न की। इस चरण के अंत तक, देश की वित्तीय अपेक्षाएं बड़ी मात्रा में अभी भी असंगठित क्षेत्र द्वारा पूरी की जा रही थीं। बैंकिंग क्षेत्र का ध्यान शहरी क्षेत्र की ओर था तथा कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र की जरूरतों की उपेक्षा की जा रही थी। यद्यपि सहकारी ऋण आंदोलन की शुरुआत काफी उत्साहजनक थी, सरकार के संरक्षण के बावजूद इसमें प्रत्याशित प्रगति नहीं हुई थी।

3.228 आजादी के बाद की अवधि को मोटे तौर पर तीन चरणों में वर्गीकृत किया जा सकता है: (i) 1947 से 1967 तक; (ii) 1967 से 1991-92 तक; तथा (iii) 1991-92 और उसके बाद। आजादी के आरंभ के चरण में मौजूद बैंकिंग परिदृश्य के सामने तीन मुख्य मुद्दे थे। पहला, बैंकों की विफलता ने बैंकिंग प्रणाली की सुदृढ़ता और स्थिरता के बारे में चिंताएं पैदा कर दीं। दूसरा, जमा संग्रहण से प्राप्त संसाधनों का कुछ व्यावसायिक परिवारों या समूहों में व्यापक संकेंद्रण हुआ। बैंकों ने निधियां जुटाईं तथा उनको मोटे तौर पर अपनी नियंत्रक संस्थाओं को उधार के रूप में दिया। तीसरा, जहां तक बैंक ऋण का संबंध था, कृषि की अब तक उपेक्षा हुई थी। बैंक विफलता के मुद्दे का समाधान करने के लिए, 1949 में बैंकिंग कंपनी अधिनियम (जिसे मार्च 1966 में बैंककारी विनियमन अधिनियम का नाम दिया गया) बनाकर बैंकिंग क्षेत्र के विनियमन और पर्यवेक्षण का अधिकार रिजर्व बैंक को दिया गया। आजादी तथा बैंकिंग कंपनी अधिनियम बनाए जाने के बाद भी बैंकों का विफल होना जारी रहा, यद्यपि विफल होनेवाले बैंकों की संख्या में गिरावट आ गई। अतः यह महसूस किया गया कि दिवालिया बैंकों का समापन बेहतर उपाय होगा। अतः 1960 के दशक के आरंभ में रिजर्व बैंक को छोटे बैंकों के समेकन, अनिवार्य समामेलन और परिसमापन की शक्तियां प्रदान की गईं। यद्यपि कुछ बैंकों का समामेलन 1960 के दशक के पहले हो गया था, तथापि 1960 और 1966 के बीच समामेलित होनेवाले बैंकों की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई। कई अन्य छोटे बैंकों ने भी अन्यथा कार्य करना बंद कर दिया। रिजर्व बैंक बैंकिंग क्षेत्र की सुरक्षा और सुदृढ़ता में सुधार लाने में काफी सफल रहा क्योंकि कई कमजोर बैंकों (जिनमें से अधिकांश गैर अनुसूचित थे) की छंटनी समामेलन/परिसमापन के जरिए कर दी गई। जमा बीमा की शुरुआत भी की गई, जिसने जमाकर्ताओं का विश्वास बैंकिंग प्रणाली में बढ़ा दिया और जमा संग्रहण को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार, भारत में बैंकिंग के आरंभिक

वर्षों में ऐसी कई घटनाएं हुईं जो यह सुझाती हैं कि छोटे और कमजोर बैंकों ने अस्तित्व में बने रहने के लिए संघर्ष किया। हाल के वर्षों में भी कई छोटे बैंकों का विलय बड़े बैंकों के साथ किया गया है। इस चरण के अंत तक बैंकिंग के विकास की एक और विशेषता यह है कि छोटे बैंकों की मौजूदगी के बावजूद, आबादी का एक बड़ा भाग बैंकिंग प्रणाली से बाहर बना रहा। दूसरे शब्दों में छोटे बैंकों की मौजूदगी ने आवश्यक तौर पर वित्तीय समावेशन का संवर्धन नहीं किया।

3.229 आजादी की पूर्व संध्या पर बैंकिंग प्रणाली प्राथमिक तौर पर शहरी और महानगरीय क्षेत्रों में संकेंद्रित थी। अतः विशेष रूप से भारतीय स्टेट बैंक और शाखा लाइसेंसिंग नीति के माध्यम से ग्रामीण और बैंक सुविधारहित क्षेत्रों में बैंकिंग का विस्तार करने के प्रयास किए गए। 1951 तथा 1967 के बीच बैंक शाखाओं की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जिसके फलस्वरूप प्रति शाखा औसत आबादी 1951 के 1,36,000 से कम होकर 1969 में 65,000 रह गई। तथापि, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में बैंक शाखाओं का स्वरूप मोटे तौर पर वैसा ही बना रहा।

3.230 यद्यपि भारतीय बैंकिंग प्रणाली में 1950 और 1960 के दशक में काफी प्रगति की थी, इसके लाभ ऋण तक पहुंच के रूप में आम जनता को नहीं मिल सके। इसका प्राथमिक कारण बैंकों और औद्योगिक घरानों के बीच मौजूद अंतर-संबंध था जिसकी वजह से उन्होंने बैंक ऋण का बड़ा भाग लेकर कृषि और लघु उद्योगों के लिए बहुत कम राशि छोड़ी। अतः कृषि को ऋण का प्रवाह बढ़ाने के लिए प्रयास किए गए। तथापि, कुल बैंक ऋण में कृषि का हिस्सा मोटे तौर पर 1951 और 1967 के बीच के स्तर पर बना रहा। इस अवधि में जमा दरों में वृद्धि तथा साथ ही उत्पादक कार्यकलापों के लिए ऋण की लागत को उचित रूप से कम रखने जैसे विभिन्न उद्देश्यों के कारण ब्याज दरों की संरचना तथा अन्य व्यष्टि नियंत्रण जटिल हो गए।

3.231 आजादी के बाद के दूसरे चरण (1967 से 1991-92) की विशेषता यह थी कि उस समय बैंकिंग क्षेत्र पर कई सामाजिक नियंत्रण थे। बैंक और उद्योग के बीच गहरा अंतर-संबंध इस चरण की शुरुआत का प्रमुख मुद्दा था, जिसके फलस्वरूप कृषि की उपेक्षा की गई। अतः इस चरण में इस बात पर ध्यान केंद्रित किया गया कि उक्त अंतर-संबंध को तोड़कर कृषि के प्रति ऋण के प्रवाह में सुधार लाया जाए। देश में प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण तथा प्राथमिकताप्राप्त उधार इस प्रयोजन के लिए उपयोग में लाए गए प्रमुख साधन थे। इन पहलों का पूरे देश में बैंक-शाखा नेटवर्क फैलाने में सकारात्मक प्रभाव पड़ा, जिससे बदले में संसाधन संग्रहण की प्रक्रिया में तेजी आई। 1969 से देखे गए तीव्र शाखा विस्तार के फलस्वरूप प्रति बैंक कार्यालय औसत आबादी, जो राष्ट्रीयकरण के समय 65,000 थी, दिसंबर 1990 के

अंत तक घटकर 14,000 रह गई। व्यापक शाखा विस्तार के फलस्वरूप बैंकिंग प्रणाली की जमाराशियों और ऋण में, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, भी वृद्धि हुई। कुल बैंक ऋण में कृषि के प्रति ऋण का हिस्सा 1967 के 2.2 प्रतिशत से बढ़कर जून 1989 में 15.8 प्रतिशत हो गया। तथापि, इन उपलब्धियों के लिए बैंकिंग संस्थाओं के स्वास्थ्य के रूप में कीमत चुकानी पड़ी। बैंकों ने उनकी लाभप्रदता, आस्ति गुणवत्ता तथा सुदृढ़ता की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र को ऋण में हुई वृद्धि से अन्य क्षेत्रों को ऋण में कटौती करनी पड़ी। अतः कंपनी क्षेत्र को दिए जानेवाले ऋण के बारे में कुछ वित्तीय अनुशासन लाने का प्रयास किया गया। तथापि, इस प्रयोजन के लिए निर्धारित मानदंड अत्यधिक सख्त पाए गए। दूसरी ओर प्राथमिकताप्राप्त क्षेत्र के लक्ष्य को पूरा करने के लिए ऋण मूल्यांकन मानकों को कम करना पड़ा। उच्च सांविधिक पूर्वक्रयों ने बैंकिंग क्षेत्र की लाभप्रदता पर खराब असर डाला। पर्याप्त प्रतिस्पर्धा की कमी के फलस्वरूप उत्पादकता तथा प्रणाली की दक्षता में गिरावट आई। इस चरण के अंत में, बैंकों के पास बड़ी मात्रा में अनर्जक आस्तियां थीं। बैंकों की पूंजी की स्थिति कमजोर हो गई तथा उनमें लाभ के प्रयोजन की कमी दिखने लगी। इस अवधि के दौरान, जमा और उधार दर संरचना बहुत जटिल हो गई। 1980 के दशक के आरंभ तक, बैंकिंग क्षेत्र व्यापक रूप से निजी स्वामित्ववाली प्रणाली से रूपांतरित होकर सरकारी क्षेत्र की प्रधानतावाली प्रणाली बन गया। 1980 के दशक के मध्य में बैंकिंग क्षेत्र की लाभप्रदता, स्वास्थ्य और सुदृढ़ता में उदारता और सुधार लाने के कुछ प्रयास किए गए। इस चरण में बैंकिंग कार्यकलापों में कुछ विशाखीकरण भी देखा गया।

3.232 बैंकिंग के विकास का सबसे महत्वपूर्ण चरण वित्तीय क्षेत्र सुधार का चरण था, जो 1991-92 में शुरू हुआ तथा जिसके दो उप-चरण (1991-92 से 1997-98 तक; तथा 1998-99 और उसके बाद) थे। बैंकिंग क्षेत्र की खराब स्थिति, कम लाभप्रदता, कमजोर पूंजी आधार और पर्याप्त प्रतिस्पर्धा की कमी पहले उप-चरण (1991-92 से 1997-98 तक) की मुख्य समस्याएं थीं। इस प्रकार आरंभिक चरण के सुधारों में विवेकपूर्ण मानदंड लागू करके, परिचालनार्थ लचीलापन प्रदान करके तथा कार्यपरक स्वायत्तता देकर और पर्यवेक्षणात्मक प्रथाओं को सुदृढ़ करके वाणिज्यिक बैंकिंग क्षेत्र को मजबूत बनाने पर ध्यान केंद्रित किया गया। बैंकिंग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा लाने के लिए, प्रणाली के तहत निजी क्षेत्र के बैंकों के प्रवेश की अनुमति देने जैसे कई उपाय किए गए। बैंकिंग क्षेत्र की लाभप्रदता में उल्लेखनीय सुधार इस चरण की प्रमुख उपलब्धि थी। आस्ति गुणवत्ता, पूंजी की स्थिति और प्रतिस्पर्धी स्थितियों में भी कुछ सुधार देखा गया, फिर भी और सुधार की काफी

गुंजाइश थी। तथापि, इस चरण में बैंकों में जोखिम से बचने की प्रवृत्ति विकसित हो गई, जिसके फलस्वरूप आम तौर पर ऋण विस्तार में तथा विशेष तौर पर कृषि में मंदी आ गई।

3.233 दूसरे उप-चरण (1998-99 और उसके बाद) में अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं के अनुरूप विवेकपूर्ण मानदंडों को और सुदृढ़ करने, ऋण सुपुर्दगी में सुधार लाने, कंपनी अभिशासन प्रथाओं को मजबूत बनाने, वित्तीय समावेशन के संवर्धन, शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र को सुदृढ़ करने तथा ग्राहक सेवा को सुधारने पर ध्यान केंद्रित किया गया। विवेकपूर्ण मानदंडों को सुदृढ़ बनाते समय, यह सुनिश्चित करना आवश्यक था कि जोखिम से बचाव की प्रवृत्ति, जो पिछले उप-चरण में आई थी, गंभीर न होने पाए। अतः उपयुक्त संस्थागत उपाय करने पर ध्यान केंद्रित किया गया ताकि बैंक अपने एनपीएल की वसूली कर सकें। इन उपायों का उत्साहजनक असर पड़ा क्योंकि बैंक अपनी अनर्जक आस्तियां तेजी से घटाने में समर्थ हुए। यह इस चरण की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। आस्ति की गुणवत्ता में सुधार शुरू होने के साथ बैंकों ने अपने ऋण संविभाग का विस्तार करना भी शुरू कर दिया। बैंकों की पूंजी स्थिति में भी उल्लेखनीय सुधार हुआ। इस चरण में प्रतिस्पर्धा तेज हो गई जैसाकि मार्जिन में आई कमी में दिखाई दिया। तथापि, इसके बावजूद बैंकों ने बड़ी हुई मात्रा तथा आस्ति गुणवत्ता में सुधार के कारण अन्य संस्थाओं के बीच अपनी लाभप्रदता में थोड़ा सुधार दिखाया। बैंकों द्वारा अनुसरण की जा रही कंपनी अभिशासन प्रथाओं में दो चिंताएं उत्पन्न हुईं, जो बैंकों को नियंत्रित करनेवाले संकेंद्रित स्वामित्व तथा प्रबंधन की गुणवत्ता से संबंधित थीं। अतः कंपनी अभिशासन प्रथाओं को सुदृढ़ किया गया। कृषि और एसएमई क्षेत्रों को ऋण प्रवाह में तीव्र वृद्धि इस चरण की एक और प्रमुख उपलब्धि थी। निष्कासित जनसंख्या से बड़े भाग को बैंकिंग क्षेत्र के भीतर लाने की दृष्टि से बैंकों को सूचित किया गया कि वे 'नो फ्रिल्स' खातों की सुविधा शुरू करें। दो साल की अल्प अवधि में लगभग 13 मिलियन 'नो फ्रिल्स' खाते खोले गए। एक बहुराज्यीय सहकारी बैंक पर हुई भगदड़ के कारण 2000 दशक के आरंभ में शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र में विश्वास में कमी आई। विश्वास को बहाल करने तथा शहरी सहकारी बैंकों पर द्वैध नियंत्रण की समस्या दूर करने के लिए टैफकब की प्रक्रिया शुरू की गई, जिससे शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र में विश्वास को बहाल करने में मदद मिली। इस चरण में बैंकों द्वारा प्रौद्योगिकी के उपयोग में कुछ उल्लेखनीय बदलाव भी देखे गए। कुछ अन्य विशिष्ट पहलों के साथ प्रौद्योगिकी के बढ़े हुए उपयोग से बैंकों द्वारा ग्राहक सेवा में सुधार लाने में मदद मिली।

अनुबंध III.1 : भारत में बैंक विफलताएं, उनका परिसमापन और समामेलन : 1913 -2007

पैनल अ : विफल बैंकों की संख्या : 1913 से 1955

वर्ष (जन.- दिसंबर)	बैंकों की संख्या	वर्ष (जन.- दिसंबर)	बैंकों की संख्या	वर्ष (जन.- दिसंबर)	बैंकों की संख्या	वर्ष (जन.- दिसंबर)	बैंकों की संख्या
1	2	3	4	5	6	7	8
1913	12	1924	18	1935	51	1946	27
1914	42	1925	17	1936	88	1947	38
1915	11	1926	14	1937	65	1948	45
1916	13	1927	16	1938	73	1949	55
1917	9	1928	13	1939	117	1950	45
1918	7	1929	11	1940	107	1951	60
1919	4	1930	12	1941	94	1952	31
1920	3	1931	18	1942	50	1953	31
1921	7	1932	24	1943	59	1954	27
1922	15	1933	26	1944	28	1955	29
1923	20	1934	30	1945	27		

पैनल आ : समामेलित और परिसमाप्त बैंकों की संख्या : 1956-1979

वर्ष (जनवरी- दिसंबर)	अनिवार्यतः समामेलित बैंक*	ऐच्छिक रूप से समामेलित बैंक**	बैंक, जिन्होंने अन्यथा कार्य करना बंद कर दिया / जिन्होंने अपनी देयताएं और आस्तियां अंतरित कर दीं	बैंक, जिनका ऐच्छिक परिसमापन शुरू किया गया	बैंक, जिनका अनिवार्य परिसमापन शुरू किया गया	कुल (स्तंभ 2 से स्तंभ 6)
1	2	3	4	5	6	7
1956	-	-	6	16	6	28
1957	-	1	10	16	3	30
1958	-	4	10	9	5	28
1959	-	4	20	7	7	38
1960	-	2	15	4	5	26
1961	30	-	9	5	3	47
1962	1	3	22	4	3	33
1963	1	2	15	1	1	20
1964	9	7	63	3	-	82
1965	4	5	24	6	3	42
1966	-	-	7	7	3	17
1967	-	-	9	4	2	15
1968	1	-	2	3	1	7
1969	2	-	1	2	1	6
1970	1	-	1	1	2	5
1971	-	-	-	2	1	3
1972	-	-	-	1	-	1
1973	-	-	1	2	-	3
1974	-	-	1	1	-	2
1975	-	1	1	-	-	2
1976	-	-	1	-	-	1
1977	-	-	-	-	-	-
1978	-	-	-	1	-	1
1979	-	-	-	1	-	1

(क्रमशः)

अनुबंध III.1 : भारत में बैंक विफलताएं, उनका परिसमापन और समामेलन : 1913 -2007 (समाप्त)

पैनल इ: समामेलित बैंक 1980-2007

वर्ष (अप्रैल-मार्च)	समामेलित बैंकों की संख्या	वर्ष (अप्रैल-मार्च)	समामेलित बैंकों की संख्या
1980@	—	1993-94	—
1981@	—	1994-95	—
1982@	—	1995-96	1
1983@	—	1996-97	1
1984@	—	1997-98	—
1985@	3	1998-99	2
1986@	1	1999-2000	1
1987@	—	2000-01	1
1988@	1	2001-02	1
1988-89	1	2002-03	1
1989-90	4	2003-04	2
1990-91	—	2004-05	2
1991-92	—	2005-06	2
1992-93	1	2006-07	2

'—' : शून्य, नगण्य

@ : जनवरी - दिसंबर आधार पर

* : बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 45 के तहत

** : बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 की धारा 44क के तहत

स्रोत : 1. भारत स्थित बैंकों संबंधी सांख्यिकीय सारणियां, विभिन्न अंक।

2. भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति की रिपोर्ट, 2004-05, 2005-06 तथा 2006-07

अनुबंध III.2 : बैंकों की संख्या

पैनल अ					
दिसंबर के अंत में	प्रेसीडेंसी / इंपीरियल बैंक	विनिमय बैंक	श्रेणी क	श्रेणी ब	सूचना देनेवाले कुल बैंक
1870	3	3	2	—	8
1880	3	4	3	—	10
1886	3	4	5	—	12
1887	3	4	5	—	12
1890	3	5	5	—	13
1900	3	8	9	—	20
1910	3	11	16	—	30
1913	3	12	18	23	56
1920	3	15	25	33	76
1930	1*	18	31	57	107
1934	1	17	36	69	123
1935	1	17	38	62	118

पैनल आ										
दिसंबर के अंत में	अनुसूचित बैंक				गैर-अनुसूचित बैंक					कुल बैंक
	प्रेसीडेंसी/ इंपीरियल बैंक	विनिमय बैंक	श्रेणी क 1	कुल	श्रेणी क 2	श्रेणी ख	श्रेणी ग	श्रेणी घ	कुल	
1936	1	19	27	47	9	71	—	—	80	127
1940	1	20	41	62	17	122	121	332	592	654
1945	1	15	75	91	67	188	137	254	646	737
1947	1	15	80	96	68	185	119	188	560	656
1950	1	16	74	91	73	189	123	124	509	600
1951	1	16	75	92	70	186	117	96	469	561
1952	1	15	75	91	70	194	114	60	438	529
1960	**	—	—	93 [#]	38	143	69	1	251	344
1967	—	—	—	71 [#]	—	—	—	—	20	91
1969	—	—	—	71 [#]	—	—	—	—	14 [£]	85
1980 [§]	—	—	—	81 [#]	—	—	—	—	3	84
1990 [§]	—	—	—	74 [#]	—	—	—	—	3	77
2000 [§]	—	—	—	101 [#]	—	—	—	—	0	101
2007 [§]	—	—	—	83 [#]	—	—	—	—	0	83

: भारतीय स्टेट बैंक, विदेशी बैंकों तथा अन्य अनुसूचित बैंकों सहित।

* : 1921 में तीन प्रेसीडेंसी बैंकों का समामेलन करके इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया बनाया गया।

** : 1955 में इंपीरियल बैंक ऑफ इंडिया का राष्ट्रीयकरण किया गया और उसका नाम भारतीय स्टेट बैंक कर दिया गया।

§ : मार्च के अंत में।

£ : 1964 से, प्रदत्त पूंजी और आरक्षित निधियों के आधार पर गैर अनुसूचित बैंकों को क 2, ख, ग तथा घ बैंकों के रूप में वर्गीकृत किया जाना बंद कर दिया गया तथा सभी गैर-अनुसूचित वाणिज्य बैंकों को एक समूह के रूप में माना गया।

टिप्पणी : 1. मई 1997 से कोई गैर अनुसूचित बैंक नहीं है।

2. श्रेणी क में ऐसे बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 5 लाख रुपये से अधिक हों।

3. श्रेणी क1 में ऐसे बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 5 लाख रुपये से अधिक हों और जो भा.रि.बैंक अधिनियम, 1934 की दूसरी अनुसूची में शामिल हों।

4. श्रेणी क2 में गैर अनुसूचित बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 5 लाख रुपये से अधिक हों।

5. श्रेणी ख में गैर अनुसूचित बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 1 लाख रुपये से अधिक परंतु 5 लाख रुपये से कम हों।

6. श्रेणी ग में गैर अनुसूचित बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 50,000 रुपये से अधिक परंतु 1 लाख रुपये तक हों।

7. श्रेणी घ में ऐसे बैंक आते हैं, जिनकी पूंजी और आरक्षित निधियां 50,000 रुपये से कम हों।

स्रोत : भारत में बैंकिंग और मौद्रिक सांख्यिकी, भारिबैं, 1954।

भारत में बैंकों संबंधी सांख्यिकीय सारणियां, विभिन्न अंक।